भारतीय संस्कृति की प्रागैतिहासिक पृष्ठभूमि

PRE-HISTORIC BACKGROUND OF INDIAN CULTURE
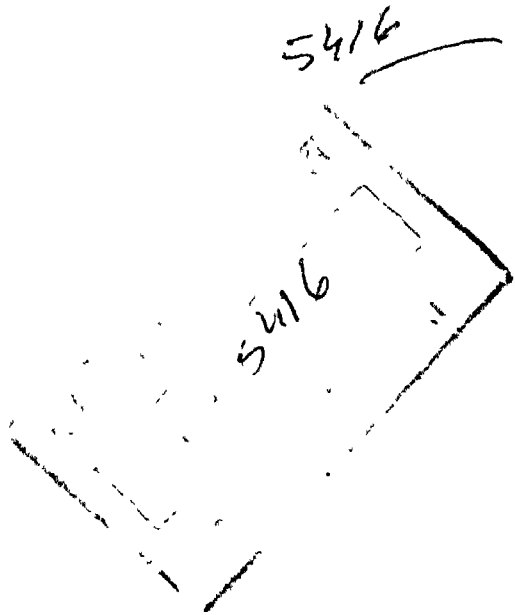
भारतीय संस्कृति की प्रागैतिहासिक पृष्ठभूमि

लेखक
डी० एच० गॉर्डन

अनुवादक
डॉ० वीरेन्द्र कुमार सिन्हा
एम० ए०, बी० एल०, पी-एच० डी०, ए० आई० सी० एस० (लंदन)
(रीडर, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय)

पुनरीक्षक
डॉ० विष्णु अनुग्रह नारायण
एम० ए०, पी-एच० डी० (लंदन)
(रीडर, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय)

प्रकाशक
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी

भारत सरकार की विश्वविद्यालयस्तरीय ग्रंथ-निर्माण योजना के अन्तर्गत पटना विश्वविद्यालय के तत्त्वावधान मे अनूदित और बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी द्वारा प्रकाशित यह ग्रंथ श्री भोला भाई मेमोरियल इन्स्टीच्यूट, बम्बई द्वारा प्रकाशित डी० एच० गार्डन की अंग्रेजी पुस्तक Pre-historic Background of Indian Culture का हिंदी अनुवाद है, जो भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय के शतप्रतिशत अनुदान से प्रकाशित है।

प्रथम संस्करण १९७०

मूल्य नौ रुपये पचास पैसे

प्रकाशक

बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, सम्मेलन भवन, पटना-३

—मुद्रक—

रचना प्रेस, पटना-६

प्रस्तावना

शिक्षा-संबंधी राष्ट्रीय नीति-संकल्प के अनुपालन के रूप मे विश्वविद्यालयों मे उच्चतम स्तरो तक भारतीय भाषाओ के माध्यम से शिक्षा के लिए पाठ्य सामग्री सुलभ करने के उद्देश्य से भारत सरकार ने इन भाषाओं मे विभिन्न विषयो के मानक ग्रन्थो के निर्माण, अनुवाद और प्रकाशन की योजना परिचालित की है। इस योजना के अन्तर्गत अंग्रेजी और अन्य भाषाओ के प्रामाणिक ग्रंथो का अनुवाद किया जा रहा है तथा मौलिक ग्रंथ भी लिखाए जा रहे है। यह कार्य भारत सरकार, विभिन्न राज्य सरकारो के माध्यम से शतप्रतिशत अनुदान देकर तथा अंशत: केंद्रीय अभिकरण द्वारा करा रही है। प्रत्येक हिंदीभाषी राज्य मे इस योजना के परिचालन के लिए भारत सरकार के शतप्रतिशत अनुदान से राज्य सरकार द्वारा स्वायतशासी निकाय की स्थापना हुई है। बिहार मे इस योजना का कार्यान्वयन बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी के तत्त्वावधान मे हो रहा है।

योजना के अन्तर्गत प्रकाश्य ग्रंथो मे यथासम्भव भारत सरकार द्वारा स्वीकृत मानक पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया जाता है, ताकि भारत की सभी शैक्षणिक संस्थाओ मे समान पारिभाषिक शब्दावली के आधार पर शिक्षा का आयोजन किया जा सके।

'भारतीय संस्कृति की प्रागैतिहासिक पृष्ठभूमि' नामक प्रस्तुत ग्रंथ D. H Gordon द्वारा लिखित Pre-historic Background of Indian Culture का हिंदी अनुवाद है। यह अनुवाद पटना विश्वविद्यालय मे काम करने वाले वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के अनुवाद-अभिकरण के तत्त्वावधान मे डा० वीरेन्द्र कुमार सिन्हा द्वारा किया गया है। इसका पुनरीक्षण डा० विष्णु अनुग्रह नारायण ने किया है।

आशा है, अकादमी द्वारा मानक ग्रंथों के प्रकाशनसंबंधी इस प्रयास का सभी क्षेत्रो मे स्वागत किया जायगा।

—लक्ष्मीनारायण सुधांशु
अध्यक्ष
बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी।

पटना,
दिनांक २३ दिसंबर, १९७०

विषय-सूची

—o—

परिच्छेद १

प्रारंभिक प्रस्तर उद्योग

इसमे सदेह नही कि जब पुरातत्त्व का छात्र, जिसका ऐतिहासिक युग के निकटतम काल से सबध रहता है, प्रस्तरयुग के सम्पर्क मे नही आना चाहता है, तो फिर इसमे दिलचस्पी रखनेवाला कोई साधारण व्यक्ति इसके निकट आ ही नही सकता है। यह समझना आसान है, क्योकि पहले शोध का दायरा पाँच हजार वर्ष तक का था और अब वह बढकर मिलैनकाव की गणना के अनुसार पाँच लाख वर्षों तक का हो गया है। इस अवधि के तीन-चौथाई भाग मे हमारे प्राचीन पूर्वजो के द्वारा व्यवहार किए गए पत्थर के क्रोड तथा शल्कल हथियारो के आकार मे लाए गए तकनीकी परिवर्तन लगभग नगण्य-से है। मिलैनकाव के नक्षत्रविज्ञान द्वारा निश्चित की गई तिथि के अनुसार आज से लगभग १२०००० वर्ष पहले से जब कि आज के जैसे मनुष्य पाए जाने लगे, इस दिशा मे सर्वतोमुखी प्रगति देखने को मिलती है, जिसके लिए 'तकनीक' अथवा 'उद्योग' के स्थान पर 'सस्कृति' शब्द का व्यवहार किया जा सकता है। यह सच है कि मस्टेरियो की शवाधान-प्रथा से यह पता चलता है कि उनलोगो का यह विश्वास था कि पशुओ की अपेक्षा मनुष्यो की उच्चतम नियति है। यद्यपि ये शवाधान मस्टेरी सस्कृति के सबूत मालूम पड़ते हैं, किन्तु ये होमोसैपियनो के प्रादुर्भावकाल के भी हो सकते है।

यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि सुविधा के लिए हम 'क्लैक्टनी' अथवा 'लेवेशी' शब्दो का व्यवहार करेगे, यद्यपि उन क्षेत्रो मे भी, जहाँ से ये शब्द लिए गए है, क्लैक्टनी अथवा लेवेशी-सस्कृति का कोई नामोनिशान नही है। जहाँ तक भारतीय प्रस्तर-उद्योगो का सबध है, नूतनतम काल पहुंचने तक 'सस्कृति' शब्द का प्रयोग करना उचित नही मालूम होता। भूविज्ञान की दृष्टि से नूतनतमकाल वर्तमानयुग का द्योतक है, जिसमे हमलोग रहते है, किन्तु इसके सबध म भी 'सस्कृति' शब्द का व्यवहार सावधानी एव सयम के साथ करना पडेगा। हमलोग तबतक 'सस्कृति' शब्द का समुचित रूप से व्यवहार नही कर सकते है, जबतक कि चित्रकारी, सजावट अथवा नक्काशियो के सदृश उन शिल्पतथ्यो, शवाधानो एव विचारधारा की अभिव्यक्तियो के सकलन की ओर सकेत न करे, जिनसे लोगो की प्रथाओ अथवा रहन-सहन के ढग का पता चलता हो। भारत मे प्राचीनतम मनुष्य की कहानी मे

नीरसता का यह कारण है कि इसमे अबतक अधिकतम आकर्षक तत्वो का अभाव रहा है।

भारत मे प्राचीन प्रस्तरयुग का पूर्ण एवं सविस्तर सर्वेक्षण करना इस पुस्तक का उद्देश्य नहीं है। अत: हम क्रमश. वर्षावाले तथा शुष्क आवर्तकाल से सबधित प्रमाणो का पुनरावलोकन करते हुए यह पुस्तक आरम्भ कर सकते है, क्योकि यह देश की वर्तमान जलवायु की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है तथा यह क्रम अधिकाश युग मे उपस्थित रहा है। जो लोग भूविज्ञान की दृष्टि मे नही सोचते है, वे इस क्रम को साकेतिक तथा वास्तविक रूप मे नक्षत्रविज्ञान से सबधित मानते है। प्रारभिक प्रस्तर-उद्योगो पर सरसरी तौर पर विचार किया जाएगा और उन्ही पर अधिक ध्यान दिया जाएगा जो प्राचीनतम एव अभिनवयुगो को जोडनेवाली कडी की तरह है।

गुडविन ने 'मेथड् इन प्रीहिस्ट्री' नामक अपनी पुस्तक मे वर्षा एव हिमनदी के आवर्तकाल से सबधित विषय पर कुछ बहुत ही महत्त्वपूर्ण बातें लिखी है। इन बातो से यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्षा, हिमनदी तथा अन्तर्ग्लेश्यरीय शुष्क आवर्त-काल के सबध मे समजन एव फेर-बदल करने की बहुत सभावना है, विशेषरूप से उस समय जब कि एक वर्ग के लोगो का यह मत है कि दूसरे क्षेत्रो मे हिमनदी का वर्षा से सबध था। दूसरे वर्ग के लोगो के मतानुसार इसका सपतन शुष्क आवर्तकाल से था।[1] भारत के सबध में प्रचलित मत यह है कि यहाँ वर्षा एव शुष्क मौसम का दोहरा चक्र दृष्टिगोचर होता है और अन्त मे जलवायु की लगभग वर्तमान अवस्था मे पहुँचने के पहले वर्षा की स्थिति आई। लेकिन यह परिस्थिति विस्तृत रूप मे किंतु सीमित क्षेत्रो के साथ लागू हो सकती है। पडताल की प्रत्येक क्षेत्र मे इसको लागू करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। एक ओर इस दोहरे चक्र की तुलना पूर्वी अफ्रीका के दोहरे चक्र से की जाती है और दूसरी ओर इसकी तुलना डी टेरा एव पटेरसन द्वारा कश्मीर एव पजाब मे निर्धारित ग्लेश्यरीय एव अन्तर्ग्लेश्यरीय आवर्तकाल से भी की जाती है। यह हम अच्छी तरह से समझ सकते है कि यदि इतनी विस्तृत भूतत्वीय समय-सारणी की सक्रमिकता पर सिद्ध वाक्य की तरह भरोसा किया जा सकता तो कितना लाभ होता।

अद्यतन अध्ययन के द्वारा जो परिस्थिति सामने आई है उसकी चर्चा करने के पूर्व गुडविन के द्वारा चर्चा की गई एक दो बातो पर विचार कर लेना उत्तम

१. गुडविन, मेथड् इन प्रीहिस्ट्री, पृ० १२२

होगा। उन्होने बाढ़ के महत्त्वपूर्ण स्थानीय प्रभाव पर अधिक ज़ोर दिया है।[1] जिन्होने बड़ी बाढ़ें देखी है वे ही तीव्र गति से एकत्र होनेवाले पानी के विशाल आयतन का कुछ अन्दाज़ लगा सकते हैं। यही बात पानी की उस दीवार के द्वारा की गई बर्बादी के साथ भी लागू है जो बीस फुट या उससे अधिक ऊँचाई पर ले जाया जाता है और फिर कीप की तरह प्रवाहित किया जाता है जिसकी जलधारा एक फुट से अधिक गहरी नही होती। उदाहरण के तौर पर यह कहा जा सकता है कि झेलम नदी का वह दृश्य जहाँ कि झेलम शहर के बाहर रेलवे और सड़क के पुल इस नदी पर होकर गुजरते हैं और एक मील से अधिक चौड़ी नदी गर्जन करती रहती है और जिसके तीन स्कन्ध माचिस की काठियों की तरह घूमते रहते हैं, देखकर यह प्रश्न उठता है कि क्या ऐसी दृश्य घटना उत्पन्न करने के लिए दीर्घकालवाले वर्षा का मौसम वास्तव मे आवश्यक है।

जबलपुर से नौ मील पश्चिम नर्मदा नदी के मध्य मे भेड़ाघाट के आसपास बाढ़ के जो निशान बने है, साधारण मौसम मे नदी से वे इतनी ऊँचाई तथा दूरी पर रहते है कि देखने म अविश्वसनीय मालूम होता है। इस स्थान पर एक बाढ़ के बाद अठारह फुट मिट्टी की खुदाई करके सडक निकालते हुए देखकर मिट्टी के संगृहीत होने अथवा अपरदन के प्रमाण पर निरूपित किए गए सभी निष्कर्षों को स्वीकार करने की इच्छा नही होती है। बार-बार सगृहीत अथवा वितरित होने के कारण कुछ हजार अथवा सैकडो वर्षों के अन्दर मिट्टी एव ककड सघटित हो जाते है और तब उसके अपरदन होने पर काफी गढा एव प्राचीन अव्याप्त स्तर दिखलाई पडने लगता है।

भारत के अधिकाश क्षेत्रो मे भीगी एव शुष्क आवर्तकालीन योजना मूल रूप में बुर्किट्ट ने तैयार की थी और ज्यूनर ने इसका पुष्टिकरण किया।[2] कैमिएड के द्वारा दी गई सामग्रियो एव सूचनाओ के आधार पर बुर्किट्ट ने भूतत्त्वीय दृष्टिकोण से भारतीय प्रस्तर-उद्योगो के अनुक्रमण का पहला महत्त्वपूर्ण अध्ययन तैयार किया था। उन निष्कर्षों मे यह पता चलता है कि पहले लम्बे अरसे तक भीगा मौसम रहा जो लैटराइट (ककडी) के निर्माण के अनुकूल रहा। उसके बाद शुष्क मौसम आया जिससे ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई जिसमे आरभ के व्यक्तियो ने कुठारो की प्रारंभिक श्रेणी

१. गुडविन, वही, पृ० ४०

२ कैमिएड एण्ड बुर्किट्ट, स्टोन एजेज इन एस० ई० इण्डिया, पृ० ३२९-३०; रिचर्ड्स, कैमिएड एण्ड बर्किट्ट, क्लाइमेटिक चेन्जेज इन एस० ई० इण्डिया ड्यूरिंग अर्ली पेलिओलिथक टाइम्स, जियोलौजिकल मैग०, वौल० LXIX, १९३२। ज्यूनर, स्टोन एज एण्ड प्लाइस्टोसीन क्रोनोलौजी इन गुजरात, पृ० ४२

चक्र	साबरमती एवं माही	ऊपरी गोदावरी	नर्मदा होशंगाबाद	भवणासी	तालपल्ले	सिंगरौली बेसीन रीहण्ड नदी
वर्त्तमान स्थिति भींगा	हाल की मिट्टी हवा द्वारा उड़ाई गई बालू की राशि एवं नीचे की कटाई	हाल की मिट्टी नीचे की कटाई	नव जलोढक नीचे की कटाई	वर्त्तमान स्थिति चिपकने वाली भूरी मिट्टी	आधुनिक बाढ़ दूमट नीचे की कटाई	हाल की मिट्टी नीचे की कटाई
बहुत सूखा भूमि-वृद्धि	बढ़ी हुई भूमि की चौरस सतह जल के द्वारा संक्षित किया हवा द्वारा उड़ाई गई बालूका राशि	अलग्न कंकड़ बालू और कंकड़ के साथ (एग्लॉमरेट)	अत्यधिक मल वाली गुलाबी मिट्टी एवं कंकड़ तिर्यक संस्तरण वाली बालू की सतहें	सूखी स्थिति के कारण यहाँ बेमेल पड़ता है	?	लाल दिखने वाला मल कंकड़ युक्त सतहें
भींगा	लाल कृत्वीय क्षितिज	नीचे की कटाई	नीचे की कटाई होने पर बेमेल दिखाई पड़ना	पथरीली सतह: पुन संचित अकेली लैटराईट सतह	कंकड़ संचित लाल दिखने वाली मिट्टी नीचे की कटाई	नीचे की कटाई ?
सूखा भूमि-वृद्धि कम	साबरमती: मल एवं कंकड़ युक्त मिट्टी सीमेंट वाला कंकड़ माही: मल कंकड़	नदी कूल मल वाला बालू ऊपरी एवं निचला सीमेंट वाला कंकड़	पट्टीदार एवं लाल मल वाली मिट्टी सीमेंट वाला विषम मिश्रपिंडाश्म	सूखी लैटराइट सतह बतलाने वाली स्थिति	सीमेंट वाला कंकड़ युक्त सतह	लाल दिखने वाला मल कंकड़ युक्त सतह
भींगा बहुत भींगा (फ्लूवियल)	चित्तीदार मिट्टी अल्लीटिक कृत्वीय एवं लैटराईट बनावट	चित्तीदार मिट्टी		लैटराइट बनावट		
		ट्राप पत्थर	क्वोर्टजाईट	स्लेटी पत्थर	शशल स्लेटी पत्थर	स्लेटी पत्थर एवं बालुका (पत्थर)

चित्र १. भींगे और सूखे भौमिकीय कालों का संबंध

तैयार की। इसके बाद भयानक वर्षा की अवस्था आई जिसके कारण प्राचीन पुरुषों के अवशेष कुछ तो नदियो के कंकडो के साथ बह गए और कुछ नदियों के मलवे-वाली छिछली तह मे जमा हो गए। इसके बाद आनेवाले शुष्ककाल में उजडे क्षेत्र फिर से बस गए। अन्त में फिर भीगा मौसम आया जिसके फलस्वरूप जलोढक जमा हो गया और उसने विगत शुष्ककाल के निवासियों के अवशेषो को ढक लिया। इसमे तथा इसके बाद के युगों मे वर्षा कम होकर आज की तरह होने लगी। तब अधिक उन्नत प्रस्तर-उद्योग आरभ हुआ। वर्तमान पुस्तक मे हम मुख्यत इन्ही का अध्ययन करेगे। (चित्र १)

सामान्य तौर पर यह कहा जा सकता है कि शुष्ककाल मे भूमि-वृद्धि अथवा नदी की घाटियाँ ऊँची हुई और भीगे मौसम मे सतह का क्षरण हुआ अथवा नदियो के प्रवाह के कारण सकीर्णतम जलमार्ग बने। भवणासी के खड को देखकर आध्र राज्य के उस भाग के किसी भी खड का सम्पूर्ण चित्र मिल जाता है। उसे देखने मे ऐसा मालूम पडता है कि पहले के भीगे मौसम मे पर्याप्त नमी रहने के कारण आरभ में लैटराइट का निर्माण हुआ होगा। इसके बाद आनेवाला शुष्ककाल, जिसमे मध्य-अभिनूतनकाल का प्रस्तरयुगीन मनुष्य सूखी लैटराइट-सतह पर रहा करता था, यह अधिकतर अनुमान पर आधारित है। किन्तु इस परिवर्तन का यह अर्थ होता है कि देश मनुष्यों के निवास-योग्य बन गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि इसके बाद भयानक वर्षाकाल आया होगा जिसमे शिल्पतथ्य बहकर पथरीली तह मे जमा हो गए। इन शिल्पतथ्यो पर बहुत काल तक लैटराइट जमा रहने अथवा इनके पठार की मिट्टी मे गडे रहने के कारण लैटराइट के चिह्न पड गए है। जैसे-जैसे वर्षा की भया-नकता कम होती गई, यद्यपि अभी भी काफी थी, लाल मिट्टी जमा हो गई। इसके ऊपर चिपचिपी भूरी मिट्टी है जिसका अर्थ यह होता है कि भीगा मौसम था। किन्तु इन मिट्टियो के बीच अपसम विन्यास है। स्पष्टत काफी लम्बे अरसे तक सूखा मौसम रहने के कारण ही ऐसा हुआ होगा। इसलिए ऐसा दोहरा चक्र पाते है जिसमे भीगा के बाद सूखा और फिर अन्त मे भीगा मौसम रहा होगा।

ज्यूनर के द्वारा गुजरात मे किए गए पडताल-कार्यों के परिणाम पर विचार करने पर हम इसी प्रकार के दोहरे चक्र का प्रमाण पाते है। साबरमती तथा माही नदियो की भी लगभग ऐसी ही कहानी है और वहाँ दिखलाई पडनेवाला क्रम भी सारत नर्मदा नदी के निचले भागो की तरह ही है। इसमे नर्मदा की शाखा ओरसग भी शामिल है जो कि सामान्यत: उसी क्षेत्र मे है तथा वहाँ अवश्य उसी प्रकार की जलवायु रही होगी। टूँप के ऊपर के आधार-शैल की प्रारंभिक स्थिति देखकर तथा

मिट्टी का विश्लेषण करने पर अपक्षयण एव रासायनिक परिवर्तन तथा लैटराइट का निर्माण दिखलाई पडता है जो अधिक भीगे मौसम के कारण ही हुआ होगा। ज्यूनर का यह विश्वास है कि इस क्षेत्र मे अबतक इसी एक मौसम का पता लगाया जा सका है जिसे वास्तव मे वर्षा-सबधी वर्ग मे रखा जा सकता है। कम वर्षावाली स्थिति में चित्तीदार मिट्टी जमा हो गई। इसके बाद सश्लिष्ट ककड बने उसमे और उसके बादवाली मिट्टी मे ककड गुटिकाएँ तथा प्रस्तरीय शल्कल देखने को मिलते हैं। यह मिट्टी उस सूखे मौसम का द्योतक है जब कि नदियाँ दलदलवाली जमीन के रूप मे भूमि-वृद्धि कर रही थी। इस समय इनकी धाराए शिथिल थी तथा ये मोटी तथा समतल सतह का भल जमा कर रही थी।

लाल रग का अपक्षयणवाला क्षितिज बहुत अधिक भीगा मौसम के आगमन का द्योतक है, जिस समय नदियाँ नीचे की ओर बही और कुछ नदियाँ नए रास्ते से बह निकली। फिर स्थिति बदली और बहुत ही सूखा मौसम आया जिसमे नदियो द्वारा लाई गई तथा हवा मे उडकर आई हुई बालुकाराशि जमा होकर समतल एव चौरस भूमि बन गई। फिर कुछ अधिक भीगा मौसम आया और बाढ के अधिकतम आयतन मे बहते हुए पानी ने नए जलमार्गों का अपरदन किया। शायद ये आज भी मौजूद है। अब लगभग आज की जैसी स्थिति आ चुकी थी और क्रमश सूखा के बाद भीगा मौसम आने के स्थानीय प्रमाण मौजूद है। किन्तु इस क्षेत्र मे लोग लगातार रहते आ रहे है और उनकी सख्या बढती जा रही है।

जैसा कि पृष्ठ सख्या ४ मे दिए गए आरेख से मालूम पडता है, सूखे तथा भीगे मौसमवाली योजना के अन्तर्गत काफी विस्तृत क्षेत्र रखे जा सकते हैं यद्यपि प्रमाण अथवा बिना प्रमाण के ही क्षेत्रो को एक दूसरे के सदृश दिखलाए जाने की प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दिखलाई पडती है। उदाहरण के तौर पर हम यह कह सकते है कि आध्रराज्य के गिड्डलूर नामक स्थान पर हमलोगो को ऐसी जलवायु की रूपरेखा मिली जो समरूपता से सूखी है और कुछ मौसम अधिक सूखे है जब कि यह दावा किया जाता है कि वहाँ सूखा तथा भीगा मौसम का दोहरा चक्र वर्तमान है।[१] आरेख मे तालापल्ले के नीचे जो रिक्त स्थान अथवा प्रश्नसूचक चिह्न है उनसे उस क्षेत्र की उन कठिनाइयो का पता चलता है जो अबतक सुलझाई नही जा सकी है। यह सभव है कि उस क्षेत्र मे भूमि-वृद्धि की दो स्थितियाँ रही हो, पर इस बात को सिद्ध करने के लिए जो छिछले तथा अस्पष्ट खड चुने गए है उनका चुनाव उपयुक्त नही हुआ है।

१ सौन्दर राजन, के० वी०, स्टोन एज इन्डस्ट्रीज नीयर गिड्डलूर, डिस्ट० कर्नूल, पृ० ६८, एनसिएण्ट इण्डिया, न० ८, १९५२

बुर्किट्ट ने यह कहा था कि भारत मे सूखा एव भीगा मौसम का चक्र ठीक उसी प्रकार का मालूम पडता है जैसा कि लीके तथा सोलोमन ने केन्या के लिए निर्धारित किया था। इसके अतिरिक्त, दोनों के औजार भी एक-जैसे हैं। अत: बुर्किट्ट का सिद्धान्त रोचक सिद्ध हो सकता है। किन्तु अभी तर्क की दृष्टि से केन्या के कैमेशियाई वर्षाऋतु की भारत के लैटराइट-निर्माण-काल का प्रारंभिक भीगा मौसम और फिर बाद के भीगा तथा सूखा मौसम के साथ तुलना करने का प्रयत्न युक्तिसगत मालूम नही पडता है। केवल यही कहा जा सकता है कि भारत मे वैसा दोहरा चक्र नहीं रहा होगा, जैसा कि आरेख मे दिखलाया गया है। इसे हिमालय की तराई के ग्लेश्यरीय एव अन्तर्ग्लेश्यरीय स्थिति के समरूप बतलाया जा सकता है यद्यपि इन दोनो के बीच निश्चित सबध स्थापित करने के लिए अभी भी कोई पूर्ण प्रमाण नहीं मिलता है।

प्राचीन विश्व की तरह भारत में भी तथाकथित 'महान कुठार-सस्कृति' का अच्छा दृष्टान्त मिलता है। किन्तु इसमे सदेह है कि प्रस्तर-शल्कलन-तकनीक के विकास से सबधित कोई या किसी भी आकार की चीज मिली हो, जो मध्यअभिनूतन-काल से अधिक पुराना हो। पत्थरो के औजार के आकारवाले प्राक्-सोअन-शिल्प-तथ्य तथा सोअन नदी के इलाको मे पाई जानेवाली पत्थरो की गोल सगुटिकाओं के क्लैक्टनी शल्कलो को उस युग के पूर्वार्द्ध और नर्मदा के सश्लिष्ट ककडो के अधिक विकसित औजारो को उत्तरार्ध मे पाया गया मानकर यह अनुमान लगाया जाता है।[1] हम यह मानते है कि इस उपमहादेश के सभी भागो मे कुछ ऐसे स्थान है जहाँ ऐसी सामग्री मौजूद है जो स्पष्ट रूप से यह बतलाती है कि अब्बेवीलियन से लेकर अच्यूलियनयुग तक कुठारो की तकनीक मे काफी प्रगति हुई है यहाँ पर लेवेलायशी शल्कल-उद्योगो तथा उनके सजातो पर मुख्य रूप से विचार किया जाएगा। इसका उद्देश्य लघुपाषाणिक अथवा पत्थर के छोटे आकार के औजारो के अपनाए जाने की दशा की जिसपर अगले परिच्छेद मे विस्तारपूर्वक विचार किया जाएगा, पृष्ठभूमि स्थापित करनी है।

उत्तर-पश्चिम मे पत्थर के असली औजार पाये जाते है। उस इलाके मे इसका इतिहास पुराना है जो कि ठोक पठान-उद्योग तक चला आया है। पेटरसन के विचार मे यह उत्तरी सोअन का समकालीन अथवा सभवत. उसके बाद का है।[2] पत्थर के औजार तथाकथित प्रस्तरीय हत्थावाले हथियारो से स्पष्टत भिन्न है। ये प्रस्तरीय

---

१. पेटरसन, वर्ल्ड कोरिलेशन ऑव द प्लीस्टोसीन, पृ० ३९५

२. डीटेरा एण्ड पेटरसन, स्टडीज ऑव दि आइस ऐज इन इण्डिया, पृ० ३१०-११

हत्थावाले औजार वास्तव मे अच्यूलियन कुठारो की तरह हैं और इनके हत्थो पर गोल प्रस्तरीय कॉर्टेक्स बने है। ये प्राचीनकाल के पत्थर काटनेवाले हथियारो से बिल्कुल भिन्न है। इनके शल्कल एक ही ओर होते है और इनका मुख एक ही ओर होता है। बहुत बडी संख्या मे ऐसे अच्यूलियन कुठार सतह पर पाये गये है जो बाढ मे बह गए थे और फिर अपने स्तर-क्रम से दूर ककडो के साथ मिले है। यहाँ ये द्वितीय नमआवर्तकाल की बाढ के बाद से बहुत लम्बे अरसे तक पडे रहे।

इसमे सन्देह नही कि भारत तथा पूर्वी एव दक्षिणी अफ्रीका के औजार आपस मे एक दूसरे मे बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। मद्रास-सग्रहालय के प्रस्तरयुगीन औजारो के मैनले संग्रह पर अपने सस्मरण मे अयप्पन ने वान रियत लो का यह कथन उद्धृत किया है कि "मद्रास मे प्राचीन प्रस्तरयुग के सपूर्ण शिल्पतथ्य वास्तव मे स्टैलेनबॉश मे बिल्कुल भिन्न है।"[1] इसी सादृश्य के आधार पर लोग दोनो क्षेत्रो की नम एव शुष्क स्थितियो के बीच सबध स्थापित करते है। इन दोनो क्षेत्रो के सबध मे एक विशेष दिलचस्प बात पर जोर देते हुए वान रियत लो ने कहा है कि "दक्षिण अफ्रीका मे आरम्भ मे ही लेवेलायश महान् कुठार सस्कृति का अग रहा है तथा आज भी वैसा ही है और उसके साथ ही द्विमुखी औजारो का विकास हो रहा है।"[2] यह निस्सदेह भारत के अधिकाश क्षेत्रो के सबध मे लागू है। गूडविन का भी बहुत कुछ यही मत है, क्योंकि लेवेलायश के सबध मे उसने लिखा है कि "वहाँ (यूरोप मे) इसका जो कुछ भी उद्‌गम रहा हो, किंतु अफ्रीका मे इस सबध मे निस्सदेह कोई भी गु जायश नही है। यहाँ लेवेलायश द्विमुखी श्रेणी के स्वाभाविक परिणाम के रूप मे है और इसकी जड मजबूती से चेलेस-अच्यूल की कुछ क्षेत्रीय स्थितियो मे गडा हुआ है।"[3]

विक्टोरिया वेस्ट-तकनीक लेवेलायश की प्रथम स्थितियो का द्योतक है। इस तकनीक के द्वारा बडे आकार का लूनपार्श्व कुठार बनाया गया था जो मुख्य भाग को कुठार से एक चोट मे अलग किया जा सकता था। अलग होने पर उस भाग की ऊपरी सतह एक बडे शल्कल के आकार का बन जाती थी। तब उसकी पट्टी को छाँटा जाता था। यह वास्तव मे लेवेलायशी तकनीक की प्रारभिक अवस्था है। लीकी ने इसके सबध मे कहा है कि "मेरे खयाल मे यह सभव है कि कारीगर

१ अयप्पन, ए०, दि मैनले कलेक्शन ऑव स्टोन एज टूल्स, मेम० आर्क० सर्वे ऑव इण्डिया, न० ६८, पृ० १४, एन० १, १९४२

२ वान रियत लो, दि एवल्यूशन ऑव द लेवेल्वाएश, पृ० ५०

३. गूडविन, मेथड्‌ इन प्रीहिस्ट्री पृ० ५८

ने बड़ा वेलियन कुठार बनाते समय गलती से चोट मार दी होगी जिससे इस अपूर्ण औजार का एक बड़ा टुकड़ा टूट गया होगा जो एक बड़े शल्कल के आकार का होगा और उस बड़े शल्कल से उसने छोटा और पहले से अधिक उत्तम कुठार बनाया होगा और इसी से विक्टोरिया वेस्ट-तकनीक का विकास हुआ होगा।"[1] विक्टोरिया वेस्ट तथा लेवेलायश—दोनों तकनीक भारत में मौजूद थे और अच्यूलिएन कुठारों के साथ ही इनका विकास हुआ।

लेवेलायशी तकनीक के संबंध में यही एकमात्र विचार नहीं है। वह लेवेलायश को क्लैक्टनी परिवार का जीनस मानता है और उसने संस्कृति के दृष्टिकोण से प्राक्-ऊपरीप्रस्तरीय शल्कल औजारों को तीन भागों में बाँटा है—निम्नतर, मध्यम तथा ऊपरी क्लैक्टनी। उसने इस बात का खयाल नहीं किया कि 'क्लैक्टन' शब्द का व्यवहार केवल तकनीक के लिए किया जाना चाहिए क्योंकि आखिर क्लैक्टनी संस्कृति क्या है? इसके अतिरिक्त, इस तकनीक में खंड पर खंड रखा जाता है जिसके द्वारा आरम्भ में पत्थर की एक निहाई पर एक बड़े आकार का क्रोड-पत्थर रखकर ऊपर से नीचे की ओर चोट मारी गई जिसके फलस्वरूप शल्कल टूट गया। विक्टोरिया वेस्ट-तकनीक में भी शल्कलन पर इससे और अधिक नियंत्रण रखा जा सकता था और जैसे-जैसे समय बीतता गया लेवेलायशी प्रक्रिया में भी बहुत सुधार लाये गये। यूरोप में इसकी सात अवस्थाएँ थीं जिनका मुख्य उद्देश्य उपयुक्त प्रस्तर क्रोड चुनकर तथा सावधानी के साथ काम करके शल्कलों के स्वरूप और आकार पर अधिक नियंत्रण रखना था। आगे चलकर अधिकांश देशों में लम्बे ब्लेडवाले शल्कल बनाये जाने लगे जिनके किनारे प्रायः समानांतर होते थे। (प्लेट-संख्या I)

संक्षेप में, लेवेलायशी तकनीक का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है—कुठार की तरह का एक बहुत ही उभरा हुआ अंडाकार पत्थर को चिकना बनाया गया। यही कछुआ का क्रोड है और हत्थे पर के कत्तर शल्कलों को छीलकर क्रोड के उभरे हुए भाग के निकटतम समकोण पर चिकनी सतह बनायी गयी। सम्भवतः नियंत्रित छिद्रण-तकनीक के द्वारा चौरस भाग पर से शल्कलों या शल्कल-श्रेणी को मिटाया जा सकता था, किन्तु ऐसा करने पर कत्तरों के हटाए जाने की प्रक्रिया में हत्थे पर चोट देने के चिह्न मौजूद हो जाते थे। इसे पृष्ठक हत्था कहा जाता है। कुठार का शल्कल बनाने के लिए एक बड़ा उभार बनाया जाता था और एक चौड़ा तथा मोटा शल्कल निकाल लिया जाता था और दूसरी ओर ब्लेड के लिए एक लम्बा तथा

१. लीकी, स्टोन एज अफ्रिका, पृ० ८७

संकीर्ण किंतु गहरा क्रोड चुना जाता था, जिससे दो या तीन अच्छे शल्कल-ब्लेड निकाले जा सकते थे। वान रियत लो ने ऐसे ब्लेडो की चर्चा की है जिनकी लम्बाई १ फुट हुआ करतो थी तथा शल्कल की समतल सतह के समकोण पर चोट देने के लिए समतल स्थान भी हुआ करता था।[१]

अब प्रश्न यह उठता है—लेवेलायश से सबधित अफ्रीका के लेवेलायश-संबधी इन बातो का भारत मे क्या सबध है? पहली बात तो यह है कि भारत मे भी लेवेलायश 'महान कुठार-सस्कृति' का एक अभिन्न अग है और विक्टोरिया वेस्ट-तकनीक की प्रोटोलेवेलायश स्थिति के द्वारा इसका पता चलता है। यह सम्भव है कि भारत मे भी लेवेलायश की लम्बी अवधि रही होगी। जितने भी शल्कल-ब्लेड दिखलाए अथवा वर्णित किए गए है, जो ऊपरी-प्रस्तरयुग मे पाये जाते हैं, उनका आकार ऐसा है जिससे यह मालूम पडता है कि वे लेवेलायशी तकनीक के द्वारा बनाए गए थे। हमारे पास जितने भी प्रमाण है उनसे यह स्पष्ट रूप से पता चलता है कि औजार बनाने का यह तरीका कुछ सुधारों के साथ तबतक चलता रहा जबतक कि आगे चलकर ब्लेड और बूरिन (तक्षणी)-उद्योगो का प्रादुर्भाव नही हुआ। इस स्थिति को प्रोटो-लघुपाषाणिक स्थिति कहा जा सकता है।

अब हम पुन: अफ्रीका की ओर मुडे और यह देखे कि क्या वहाँ भी ऐसी स्थिति पायी जाती है जो पहले लेवेलायशी रही हो, पर आगे चलकर वह प्रोटो-लघुपाषाणिक मे निमज्जित हो गई। इसके लिए दक्षिणी मिस्र मे उत्तर अफ्रीकी सेबीलियन-उद्योग का सक्षिप्त अध्ययन आवश्यक है। इस उद्योग के आविष्कारक एम० विगनार्ड ने इसकी तीन स्थितियाँ बतलाई है, किंतु इसकी ओर लोगो का पर्याप्त ध्यान आकृष्ट नही हुआ। लीकी ने यह कहा है कि "निम्नतम सेबीलियन के प्रारभिक शल्कल बनाने के क्रोड तथा तरीको को देखकर लेवेलायशी तकनीक की याद आती है।"[२] उनके द्वारा उत्तरकालीन ऊपरी प्रस्तरयुग और मध्य तथा उत्तरकालीन सेबीलियनयुग मे इस स्थिति का निर्धारण भूवैज्ञानिक दृष्टि से हाल की है। वर्तमान प्रमाणो के अनुसार यह सही मालूम पडता है। जिस प्रकार ऊपरी सेबीलियन-लघुपाषाणिक युग अन्तत मध्य और निम्न एपी-लेवेलायशी सेबीलियन से निकला है,

१ वान रियत लो, दि एवोल्यूशन ऑव द लेवेल्वाएश, पृ० ५२

२. लीकी, स्टोन एज अफ्रीका, पृ० ११६, और देखिए कैटन टौम्पसन जी०, द लेवेल्वाशियन इंडस्ट्रीज ऑव ईजिप्ट, पृ० ११७ जहाँ कि माइक्रोलिथ तथा एपी-लेवेल्वाशियन II के बीच सबध पर जोर दिया गया है, प्रोसीडिंग्स ऑव प्री-हिस्टोरिक सोसायटी, XLL, १९४६

इसी प्रकार भारत मे भी लघुपाषाणिक उद्योग तत्सम लेवेलायशी परपरा से उत्पन्न हुए हैं। सैंडफोर्ड तथा आर्केल ने ऊपरी सेबीलियन लघुपाषाणिक के बारे मे लिखा है कि यद्यपि विमनार्ड की पुस्तक से पता चलता है कि मध्य सेबीलियन-प्रणाली विकसित होकर ऊपरी सेबीलियन में लगभग मिल गई, किंतु भारत के लघुपाषाणिक उद्योग मे कुछ बाहरी तत्त्व (शायद कैस्पियन) प्रवेश कर गये और उसमे कुछ परिवर्तन ला दिया।[1] इस प्रकार भी भारतीय हथियारों पर पश्चिमएशिया से आनेवाले सूक्ष्म मध्यपाषाण-सस्कृति का प्रभाव अधिक प्रत्यक्ष रूप से पडा होगा। किंतु भारत मे पाए गए लेवेलायशी औजारो के सबंध में इन सबके लिए हमारे पास क्या प्रमाण है ? सिन्धु नदी की एक शाखा की घाटी से प्राप्त सोअन-क्रम में लेवेलायशी विकास स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। उस युग की अतिम स्थिति—प्रारभिक सोअन-सी मे लेवेलायशी तकनीक दिखलाई पडती है और चोट देने के लिए बनाए गई समतल सतह को देखकर इसका पता चलता है क्योंकि इस तरह की सतह पूर्वगामी युगो के क्लैक्टनी प्रणाली मे नही पायी जाती है। आगे चलकर उत्तर-कालीन सोअन-ए की स्थिति मे असली लेवेलायशी शल्कल तथा ब्लेड दिखलाई पडते हैं जिनमे अधिकाश के स्पष्ट पृष्ठक हत्थे है। उत्तरकालीन सोअन-बी मे लगभग आधे शल्कलो के पृष्ठक हत्थे है और इस युग के अधिकांश शल्कल लम्बे अथवा ब्लेड की तरह के हैं। (चित्र-सख्या २, १२ और १४)। आगे चलकर कश्मीर के पम्पूर मे पाये गये लेवेलायशी शल्कल को देखकर तथा अतिम सोअन एव ढोक-पठान-उद्योग के चतुर्थ ग्लेश्वरीय युग के बाद होने के कारण भी यह पता चलता है कि इन भागो मे इस प्रकार के शल्कल पाए जाते थे।[2]

किंतु विशेष रूप से बम्बई के निकट खाडीवली तथा आंध्रराज्य मे कुछ स्थानों पर हम कुछ ऐसे प्रमाण पाते है जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रोटो-लघुपाषाणिक ब्लेड एव बूरीन (तक्षणी)-उद्योगों के प्रादुर्भाव के पहले तक लेवेलायशी तकनीक प्रचलित रहा। खाडीवली मे टॉड को एक ऐसा खुला हुआ खड मिला जिसमे ककड़ियों की दो पट्टियाँ 'मध्यकालीन मिट्टी' के द्वारा अलग की गई हैं और उनके ऊपर तथा नीचे ऊपरी एव निम्नतम मिट्टियाँ है—नीचेवाला शैल-सस्तर पर आधारित है तथा ऊपरवाला हाल की ऊपरी मिट्टी का भाग है।[3] इस स्थान पर से प्राप्त

---

१. सैंडफोर्ड, ऐंड आर्केल, पेलियोलिथिक मैन ऐंड द नाइल वेली इन न्यूबिया ऐंड अपर ईजिप्ट, पृ० ८०, यूनिवर्सिटी ऑव शिकागो ओरियण्टल इस्टीच्यूट पब्लिकेशन्स, वौल्यूम XVII

२. डी टेरा एण्ड पैटरसन, स्टडीज ऑन दि आइस एज इन इंडिया, पृ० २३० एवं ३१०-११

३ टॉड, पेलियोलिथिक इन्डस्ट्रीज ऑव बाम्बे, पृ० २५८

चित्र २. लेवेलायशी श्रेणी के शल्कल
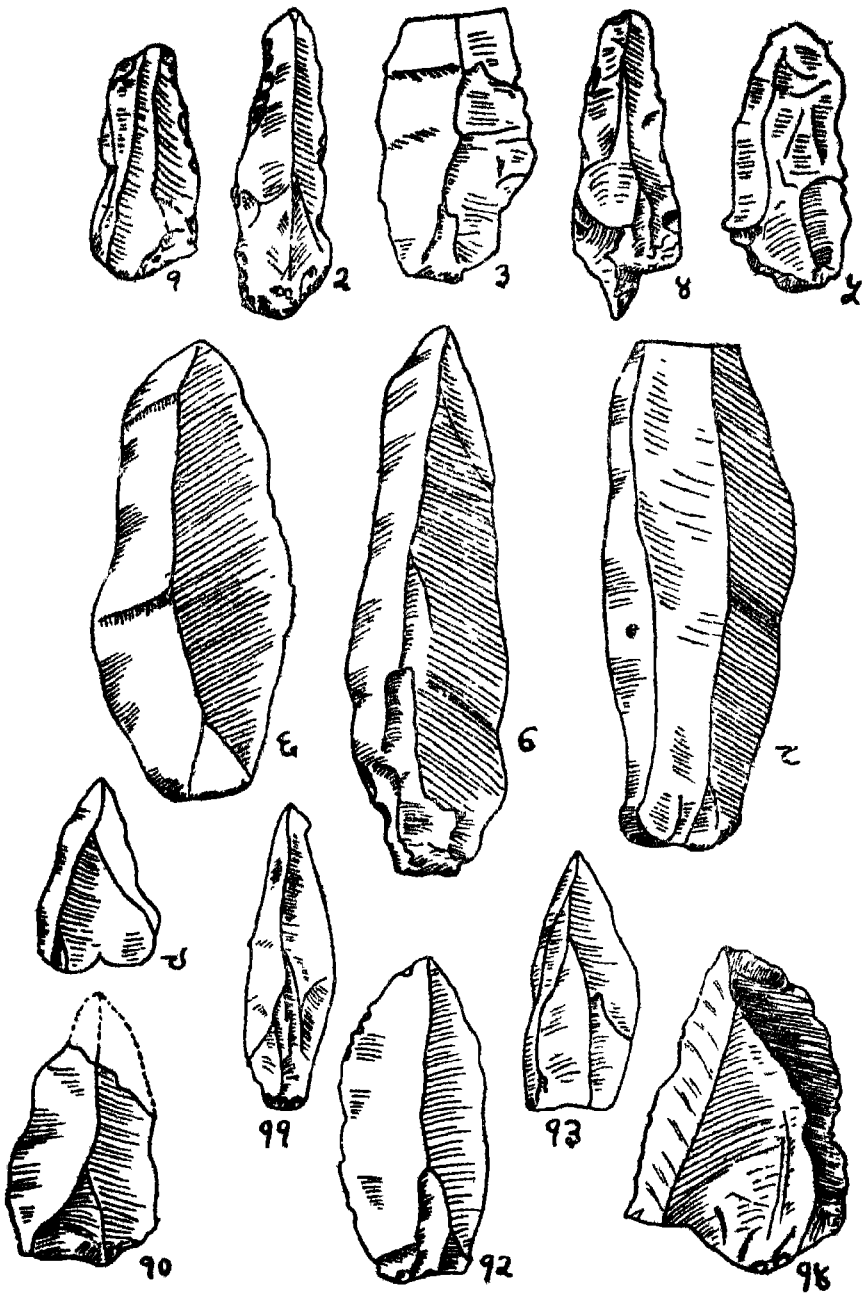
हुए लेवैलायशी किस्म के बहुत-से बड़े शल्कल ब्रिटिश-म्यूजियम में रखे गए हैं। किंतु उनमें बहुत थोड़े के हत्थों पर पृष्ठक के चिह्न बने हैं। इनमें से अधिकाश का संबंध मध्यकालीन मिट्टी के ऊपरी भाग से सबधित है यद्यपि कुछ ऊपरी ककड़ों के भी हैं। सभवत: ऊपरी ककड़ी के ऊपर के शल्कल अधिकांशत: भिन्न-भिन्न पत्थरों के बचे हुए टुकड़े हैं जिनमे अधिकतर चर्ट है। ऊपरी कंकड के आधार के निकट दो सूक्ष्म बिन्दु दिखलाई पडते हैं। ये चर्ट के बने हैं--एक का हत्था सभवत. पृष्ठक है और यदि इनका शाफ्ट बनाया जाता तो दोनो ही बडे उत्तम हथियार सिद्ध होते (चित्र-सख्या २, ११ और १३)। ऊपरी मिट्टी की सामग्रियाँ देखने में लघुपाषाणिक अथवा प्रोटो-लघुपाषाणिक उद्योगो के अच्छे नमूने नही मालूम पड़ते है।

आन्ध्रराज्य के गुंडलाब्रह्मेश्वरम तथा नदीकाणम-घाटी मे पाई गई केमिएड-श्रेणियाँ अत्यन्त ही दिलचस्प है। उनका स्तरविन्यास एवं प्रकार देखकर ऐसा मालूम पडता है कि ये मूल विवर्तन से भिन्न है।[१] ये सभी स्थान कर्नूल जिले मे है। नदीकाणम-घाटी गिड्डलूर तथा नदयाल के बीच हैं। भवणासी नामक स्थान भवणासी नदी के निकट है। यह आत्मकूर से आठ मील पूरब और नदी-काणम से ३० मील उत्तर मे है। गुंडलाब्रह्मेश्वर की स्थिति ठीक तौर पर नही बतलाई गई है, किंतु शायद यह भवणासी से उत्तर कही पर उन पहाडियों मे स्थित है जो आत्मकूर-दोराणाला सड़क तथा कृष्णा नदी के बीच है। (प्लेट १)

कैमिएड तथा बुर्किट्ट के द्वारा प्रस्तावित चारो श्रेणियो मे भवणासी की द्वितीय श्रेणी शुष्ककाल से सबधित मालूम होती है। शुष्क मौसम के कारण ही चिपचिपी भूरी मिट्टी की सबसे ऊपरी सतह के आधार पर अपसम विन्यास हो गया। गुंडलाब्रह्मेश्वरम मे यह जगल की ऊपरी मिट्टी के ठीक नीचे राखवाले आधार पर दिखलाई पडती है। इसलिए इस श्रेणी की स्थिति को खाडीवली के शल्कल ब्लेड-उद्योग से (जिसकी चर्चा अभी की गई है) मिलाया जा सकता है और दोनो ही मे ऐसी वस्तुएँ है जिन्हे बूरिन अथवा छेनी कहा गया है। जब हम नदीकाणम की तृतीय श्रेणी की वस्तुओ को देखते है तो ऐसा मालूम पडता है कि इसकी कुछ सामग्रियाँ द्वितीय श्रेणी के लेवैलायशी ब्लेडो और कुछ चतुर्थ श्रेणी के लघुपाषाणिक से मिलती-जुलती हैं। बादवाली ये सारी वस्तुएँ बिल्कुल भिन्न क्षेत्रो की बताई जाती है।

नन्दीकाणम की भूमि-स्थिति को देखने से यह मालूम पड़ता है कि हाल की जमी हुई लाल मिट्टी के ऊपर लाल बालूवाली मिट्टी बिछी हुई है। सभवत:

---

१. कैमिएड ऐंड बुर्किट्ट, स्टोन एजेज इन एस० ई० इंडिया, पृ० ३३४-३८

द्वितीय श्रेणी के लेवेल्वायशी किस्म के औजार असल में लाल मिट्टी की सतह पर थे जैसा कि भवणासी मे भी है। किंतु तृतीय श्रेणी के लघुपाषाणिक लाल बालू-वाली मिट्टी के ऊपरी भाग के है जैसा कि गोल पत्थर को देखने से मालूम होता है। शायद यह गोल पत्थर घर्षण करके बनाया गया था, किंतु छेद करते समय अचानक टूट गया (प्लेट १)। इस गोल पत्थर पर मिट्टी के लाल चिह्न हैं, परन्तु इस स्थान पर से प्राप्त सभी सामग्रियो पर कुछ-न-कुछ लाल चिह्न वर्तमान है। यह ठीक उसी प्रकार का है जैसा कि टॉड के येरगल लघुपाषाणिक सग्रह है जिनमे दोनो तरफ से रेत-घड़ी के आकार का सुराख बनाया गया है। नन्दीकाणम की तृतीय श्रेणी की बनावट साधारण मध्यपाषाणिक-लघुपाषाणिक है। इसमे अर्द्धचन्द्राकार चाप, पके हुए ब्लेड एव लम्बी धारीवाले क्रोड हैं। अत यदि हम यह नही दिखला सके कि चतुर्थ श्रेणी मे अधिक विकसित उद्योग थे और अधिक ज्यामितीय प्रकार प्रचलित थे तो चतुर्थ श्रेणी की कोई आवश्यकता ही नही रह जाती है (चित्र २, ६ से लेकर ९ तक)।

वास्तव मे नन्दीकाणम मे ऊपरवाले तथा निचले दो उद्योग,[१] जैसा कि पहले लोगो का विश्वास था, नही रहे होगे। किंतु निचले का स्थान द्वितीय श्रेणी और ऊपरवाले का चतुर्थ श्रेणी के लघुपाषाणिक के साथ सबध होना चाहिए। यह स्पष्ट है तथा अन्य स्थानो पर भी दिखलाया जा सकता है कि अभिलिखित पाषाण-उद्योगो का मुख्याश प्रारभिक कुठार-सस्कृति है। इसमे नीचे की ओर ककड-वाले स्तर पर क्लैक्टनी शल्कल के नमूने के शल्कल-ब्लेड-उद्योग का प्रमाण मिलता है जो कि कभी-कभी बाद के अच्यूलियन अथवा लेवेलायशी कुठार के साथ मिट्टी की ऊपरी सतह पर पाया जाता है।

यह अनुक्रम ऊपरी गोदावरी की एक शाखा प्रवरा के किनारे नेवासा मे भी दिखलाई पडता है जहाँ सकलिया को लेवेलायशी शल्कल मिले है। इससे ऊपरी तथा मध्य ककडियों मे एक ऐसे उद्योग का पता चलता है जो निचले ककड के कुठार से बिल्कुल भिन्न है। ऊपरी गोदावरी के गगावाडी नामक स्थान पर (जो नासिक से अधिक दूर नही है) ऊपरी सतह के १५ फुट नीचे मध्य ककडी मे एक पृष्ठक हत्थेवाला लेवेलायशी शल्कल पाया गया है। यह सतह निचली ककडी से १५ फुट ऊपर है और इसमे बहुत-से प्रारभिक प्रस्तरकालीन औजार मिले है।[२] पूना से २० मील पूरब-उत्तर-पूरब की दिशा मे तलेगाँव के निकट इन्द्रयाणी नदी के किनारे

१ गॉर्डन, स्टोन इडस्ट्रीज ऑव द होलोसीन, पृ० ६५

२ सकलिया, एच० डी०, द गोदावरी पेलियोलिथिक इन्डस्ट्री, पृ० १५ एँड फिग० ५, डेकन कालेज मोनोग्राफ सीरीज १०, १९५२

इ दूरी नामक स्थान से खुरचनी, जैस्पर, एगेट तथा कारनेलियन के साँचे, अंश और लम्बे आकार के क्रोडों का एक छोटा-सा सग्रह प्राप्त हुआ है। इसी तरह का एक सग्रह मालप्रभा नदी के ऊपरी भाग के निकट बादामी पहाड़ियों में आस-पास भी प्राप्त हुआ है जिसमे बडे एवं परिष्कृत ब्लेड-खुरचनी तथा एक या दो तक्षणी भी हैं।

जबलपुर से ९ मील पश्चिम भेडाघाट-नाला के इलाके मे खोज करने पर कुछ बड़े परिष्कृत शल्कल मिले है जिनमे मोर्चा लगा है तथा पानी के प्रवाह के कारण वे कुछ गोलाकार हो गये हैं। ये देखने मे इंदूरी-सग्रह के समान हैं तथा संकलिया ने इनका उसी प्रकार वर्णन किया है। हैदराबाद के अदिलाबाद जिले मे हैमेडॉर्फ के द्वारा सग्रहित शल्कलो के साथ इनकी तुलना करने पर दोनों लगभग एक-जैसे मालूम होते है। (चित्र २, १ से लेकर ५ तक)। इससे यह पता चलता है कि कडे पत्थर पर बनाया हुआ यह उत्तम नमूना काफी दूर के इलाके मे फैला हुआ था। इसके अतिरिक्त, यदि हम उन पचास या अधिक ब्लेड के समान शल्कलो (जो नेलौर जिले से प्राप्त हुए हैं तथा अभी मद्रास-सग्रहालय मे रखे हैं) और गिड्डलूर II (गुडलाब्रह्मेश्वरम एव नन्दीकाणम के निकट) मे अभिलिखित प्रोटो-लेवेलायशी तथा लेवेलायशी किस्म के ब्लेड तथा तक्षणी औजारो पर विचार करें तो यह पाएँगे कि दक्षिणभारत मे लेवेलायशी तकनीक के विकास के प्रमाण बहुत मजबूत हैं। उत्तरकालीन सोअन-उद्योग से सबधित शल्कलो को छोड़कर उत्तरभारत मे प्राप्त हुए प्रोटोलेवेलायशी एव लेवेलायशी शल्कल केवल वे ही हैं जो उत्तरप्रदेश के मिर्जापुर जिले मे सोन की शाखा रिहंद नदी के आसपास पाये गये है।[1]

क्वार्टजाइट के काम चर्ट तथा उस प्रकार के पत्थरो के बने उत्तम औजारों की अपेक्षा अधिक पुराने तथा भद्दे मालूम पडते है। धुले हुए नमूने की अपेक्षा यथावत सामग्रियो से पर्याप्त मात्रा में प्रमाण प्राप्त करना अधिक कठिन है, क्योंकि सग्रहो मे अधिकाशत धुले नमूने पाये जाते है। इससे इसके सम्बन्ध मे वर्तमान अनुमान का पुष्टिकरण हो जाता है। अनुक्रमण प्रोटो तथा प्रारभिक लेवेलायशी क्वार्टजाइट औजारों का है। इसके बाद लेवेलायशी ब्लेड, अश तथा चर्ट और लीडियन पत्थर के तक्षणी औजार बने। ये ब्लेडवाले शल्कल ताम्रपाषाणिक युग के लम्बे, समानान्तर पट्टीवाले शल्कलीय ब्लेडों से बिल्कुल भिन्न थे। इनमें बाहरी प्रभावों के द्वारा परिवर्तन आया और ये असली पूर्णज्यामितीय किस्म के सूक्ष्म पाषाणिक बन गये।

१. कृष्णस्वामी, वी० डी० ऐंड सौंदर राजन, के० वी०, 'द लिथिक टूल-इंडस्ट्रीज ऑव द सिंग्रौली बेसीन, डिस्ट्रिक्ट मिर्जापुर', एंसिएण्ट इंडिया न० ७, १९५१

ऊपर वर्णित निष्कर्षों मे केवल यही परिवर्त्तन संभव है कि मुख्य प्रकार के औजार तीन के बदले चार बार संचित हुए होगे, किंतु इसके पुष्टीकरण के लिए बहुत अधिक प्रमाणो की आवश्यकता है । इस बात के स्पष्ट लक्षण दिखलाई पड़ते हैं कि वलैवटनी शल्कल तथा अब्बेविलो अच्यूलियन कुठारो के समान प्रारभिक औजारो की सामान्य ढग से पेटरसन की वेदी न० १ और २ के साथ समता दिखलाई जा सकती है । और, पहले की या प्रोटो-लेवेलायशी औजारो की वेदी न० ३, बाद के लेवेलायशी औजारों की वेदी न० ४ तथा सूक्ष्म पाषाणिक की वेदी न० ५ के साथ तुलना की जा सकती है। ये नदी की वैसी वेदियाँ है जो ससारभर मे पाई जाती है । ये नदी-घाटियो के भरने और कटने के कारण बनी है तथा बाद मे वेदियो का अनुक्रमण बच गया जिसमे सबसे ऊँची वेदियाँ सबसे अधिक पुरानी है । यह वेदी न० ३ और ४ के सभी स्तरीय खडो मे निश्चित करने पर निर्भर करता है जहाँ प्रारंभिक अथवा बाद की लेवेलायशी किस्मे पाई जाती है । इसके अतिरिक्त, यह इस बात पर भी निर्भर करेगा कि हम मौसम-परिवर्तन के दो चक्रवाले क्रम मे इन्हे निर्धारित कर सकते है या नही । वर्तमान स्थिति मे तो खाडीवली का अन्य स्थानो के साथ सादृश्य दिखलाने का प्रयत्न कठिन प्रतीत होता है। किंतु यदि नर्मदा एव मद्रास-क्रम[1] के सबध मे पेटरसन की विवृति मान ली जाय तब खाडीवली की मध्य-वाली मिट्टी के ऊपरी भाग को वेदी न० ३ और ऊपरी ककडी के ऊपरी भाग को वेदी न० ४ माना जा सकता है यद्यपि अभी तक इस प्रकार का परस्पर सबध स्थापित करने के पक्ष मे कोई प्रमाण नही मिला है । वास्तव मे भारत मे ऊपरी प्रस्तरयुग के बारे मे हमारा ज्ञान केवल उसी बिन्दु तक पहुँचा है जिससे हम यह निश्चित रूप से कह सकते है कि यह विस्तृत रूप से फैला हुआ था । [2]

औजारो की किस्मो के क्रमिक स्तर-क्षितिजो के साथ समरूपता दिखलाने के प्रश्न पर गूडविन का वह तरीका अपनाने का लालच होता है जिसमे उन्होने यह कहा है कि "शायद जैसा कि डा० ए० एल० ड्यू टॉयत ने परामर्श दिया है कि हमलोगो को अपने शिल्पतथ्यो को अपरिवर्तनशील मानकर वर्षा एव शुष्ककाल की अवधि स्थानीय दशा के आधार पर निर्धारित करना चाहिए । और, अत मे इन सबोको मिलाकर जलवायु की पूर्ण रूपरेखा तैयार करनी चाहिए ।"[3] किन्तु भारत के

१. पेटरसन, वर्ल्ड कोरिलेशन ऑव द प्लाइस्टोसीन, पृ० ३६५

२. यद्यपि भारत में यूरोप के ऊपरी प्रस्तरोय तकनीक का कोई दृष्टान्त प्राप्त नहीं है, फिर भी उत्तरकालीन लेवेलायशी किस्म भारत के लिए ऊपरी प्रस्तरीय मालूम पड़ेगा ।

३. गूडवीन, मेथड् इन प्राहिस्ट्री, पृ० ४०

संबंध में ऐसा प्रयत्न करके हम बहुत दूर नहीं जा सकते हैं। अतः अच्छा यह होगा कि हम वर्षा एवं शुष्ककालों के परिणामस्वरूप उत्पन्न विसंगति सुलझाने का भार भूवैज्ञानिकों के जिम्मे छोड़ दें।

किंतु एक बात निश्चित करने की आवश्यकता है। यदि मनुष्य को जलवायु की कुछ खास स्थितियों के कारण कोई इलाका छोडना पड़ा तो वह कहाँ गया ? उदाहरण के तौर पर हम यह कह सकते हैं कि साधारणतः नर्मदा नदी तथा इसकी शाखाओ के इलाके में ऐसा मालूम पड़ता है कि नदी को इन घाटियों मे शुष्क-काल मे लोग निवास करते थे और वर्षाकाल मे वे वहाँ से चले जाते थे। क्या किसी कारण शुष्क मौसम दीर्घकालीन था और वर्षावाला मौसम अल्पकालीन ? यदि उन-लोगो के उस इलाके को छोडकर चले जाने की अवधि हजारों के स्थान पर सैकडों वर्षों की रही होगी तो हम अन्त मे यह पता लगा सकते हैं कि वे लोग उस इलाके को छोडकर आस-पास की ऊँची जगहो पर चले गए अथवा अधिक दूर जा बसे। किंतु यह निश्चित है कि वे लोग कही जा बसे और पहले-जैसा जीवन व्यतीत करने लगे। इसका कारण यह है कि अत्यन्त भीगे तथा शुष्क मौसम के दोहरे चक्र के समय भी लोग औजार बनाने के मामले मे प्रगति करते रहे जिससे कि आगे चलकर वे प्रारभिक एव भद्दी किस्म के पत्थरो के औजार बनाने लगे। इसके बाद उनलोगो ने कार्टजाइट के कुठार, खुरचनी तथा गडासा बनाये। इसके बाद वे और भी सरल पत्थरो के छोटे तथा धारवाले औजार बनाने लगे। पत्थरों का आकार बनाने मे लोगो ने दक्षता प्राप्त कर ली। इसके अतिरिक्त, वे अपना शरीर ढकने के लिए कुछ चीजे बनाने लगे। किन्तु इसको छोडकर उन्होंने और कुछ नही बनाया था। वे प्रकृति-प्रदत्त वस्तुओ के सहारे रहते थे।

जब हम पवनोढक भल के उन विशाल ढेरो को देखते हैं जो हवा और पानी के द्वारा सचित किए गए थे और ककडो पर फैले हैं और जो प्राय. इतने वध्य है कि जिनमे शिल्प तथ्य की कौन कहे एक पत्थर का टुकडा भी नही मिलता है, तब हमारे सामने सबसे बड़ा प्रश्न उठता है—मनुष्य वहाँ कैसे जिन्दा रहा ? यदि इस निक्षेप से हजारो वर्ष के बीत जाने का पता चलता है तो फिर दुबारा वापस आने के पहले मनुष्य कहाँ बसे थे ? इस बार वापस आने के बाद के सूक्ष्म पाषाणिक औजार ह्यूमस-सतह मे पाए जाते हैं। किन्तु यह हमेशा याद रखना चाहिए कि बहुत-से भूतत्त्वीय निक्षेप स्तरीय स्थानो की तरह जटिल हैं। लेकिन जहाँ कुछ शिल्पतथ्य पुरानी मिट्टी मे पाए जाते हैं, जिसपर इनके निर्माता रहते थे, वे ककड़ियाँ (जहाँ से हमारे नमूने प्राप्त हुए है) स्वय बाढ़ के द्वारा लाए गए निक्षेप के रूप मे हैं। इसलिए हमें इन शिल्पतथ्यों के मूल स्थान का पता लगाना है।

एक बात जिसपर बार-बार जोर दिया जायेगा वह यह है कि भारत में अन्य देशों की तरह तकनीको में सुधार उन्ही स्थानों पर हुआ जहाँ अनुकूल वातावरण मिला; पर जगलों मे लोग पुरानी वस्तुओ का ही व्यवहार करते रहे। यह संभव है कि पिछड़े हुए शिकारी तथा किसान अच्यूलियन-कुठारों तथा लेवेलाग्रशी शल्कलों का व्यवहार करते रहे जब कि मध्यपाषाणकाल के लोग धनुष का प्रयोग करने लगे थे और साथ ही लकड़ियो के द्वारा मिट्टी खोदकर की जानेवाला प्रारंभिक कृषि-कार्य कर रहे थे। आज भी हम बहुत-से स्थानों पर ऐसा पाते हैं जहाँ अनुकूल परिस्थितियों के कारण समुन्नत तकनीक का प्रयोग किया जाता है तथा प्रतिकूल परिस्थितिवाले इलाको मे अप्रगतिशील तकनीक पाए जाते हैं।

●

परिच्छेद २

अभिनव प्रस्तर-संस्कृतियाँ

'मध्यपाषाणिक' तथा 'नवपाषाणिक' शब्दो का प्रयोग मध्यकालीन तथा नवीन प्रस्तरयुगो को बतलाने की सुविधा के लिए किया जाता है; किन्तु भारत-जैसे विशाल देश के सबध मे इसका कोई कालक्रमिक महत्त्व नही है। आजकल सामान्यत: इन शब्दों का प्रयोग औजार बनानेवाले तरीकों की अपेक्षा रहन-सहन का ढंग बतलाने के लिए किया जाता है। अत: दो बातों का हमे ध्यान रखना चाहिए। पहली बात यह है कि एक स्थिति से दूसरी स्थिति के बीच स्पष्ट विभाजन नही किया जा सकता है। खाद्यान्न उपजाने तथा पशुपालन की पुरानी अवस्था की उपान्त स्थिति अवश्य ही कुछ धुँधली रही होगी। दूसरी बात यह है कि रहन-सहन के विभिन्न तरीके तथा विकास की विभिन्न स्थितियाँ कुछ खास दशाओ में एक साथ मौजूद रही होगी। भारत मे मनुष्यों का विकास सीढ़ी की तरह बढ़ता गया, किंतु कुछ समुदायो मे विकास बहुत धीरे-धीरे अथवा नहीं के बराबर हुआ।

सास्कृतिक स्थितियो के अनुक्रमण की दृष्टि से उस युग को 'मध्यपाषाणिक' नाम दिया गया है जो प्राचीन एव नवीनपाषाणयुगों को जोड़नेवाली कड़ी के रूप मे है। इस युग के औजार लघुपाषाणिक किस्म के थे अर्थात् शल्कल-ब्लेड से पत्थर का छोटा शिल्पतथ्य बनाया जाता था। यह कभी-कभी छोटा तथा प्राय: ज्यामितीय आकार का हुआ करता था। यह स्पष्ट है कि लघुपाषाणिक औजार तथा रहन-सहन का मध्यपाषाणिक तरीका ऊपरी प्रस्तरकालीन युग से ही निकला था। नव-पाषाणिक युग के किसान लघुपाषाणिक औजारो का व्यवहार किया करते थे और कांसायुग मे तथा दूरस्थ अथवा पिछड़े हुए इलाकों मे ईसाकाल के आगमन तक इनका बड़े पैमाने पर उपयोग होता रहा।

इन प्रारंभिक सस्कृतियो तथा तकनीकों के कायम रहने के सबंध मे कैमिएड ने लिखा है कि "मैं यह विचार व्यक्त करने का साहस करता हूँ कि गोदावरी नदी के आस-पास दिखलायी पड़नेवाली बौनी सस्कृति की बड़ी लबी अवधि थी—यह प्रारंभिक नवपाषाणिक युग से आरम्भ होकर लगभग हाल तक कायम रही।"[१]

१. कैमिएड, दि माइक्रोलिथिक इमप्लीमेंट्स ऑव लोअर गोदावरी, पृ० १०२

इस मत का समर्थन करते हुए हाईमेडर्फ ने लिखा था कि "पुराने तथा नये प्रस्तरयुगो के रहन-सहन का ढग तथा आर्थिक व्यवस्था भारत के आदिवासियों में कायम हैं।"[1] प्राप्त प्रमाणों से यह पता चलता है कि भारत मे जंगलो में रहनेवाले लोगों का सुसभ्य व्यक्तियो से सम्पर्क स्थापित होने पर कठिनाई उत्पन्न हो गई। सभ्य व्यक्तियो से सम्पर्क स्थापित होने के बाद जगली लोगो पर कर लगाये गये, उनसे बेगारी कराई गई तथा उनपर कुछ कष्टदायी प्रतिबन्ध लगाए गए। ये सारे कार्य 'केवल इन लोगो की भलाई के लिए' किये गये थे। किंतु यह आश्चर्य और दु.ख का विषय है कि उन कृतघ्न लोगो ने इन सबका विरोध किया।

प्रथम परिच्छेद मे हमलोगो ने ब्लेड-उद्योग के बारे मे अध्ययन किया, जिनका विकास शायद लेवेलायशी तकनीक के आधार पर हुआ था। कई स्थानों पर इनके चिह्न भी मिले है। आगे चलकर कुछ बाहरी प्रभावो के कारण इनके स्थान पर छोटे तथा ज्यामितीय औजारो का व्यवहार होने लगा। वास्तव मे कैमिएड ने तीन ऐसे दृष्टात दिये है, जिनमे उन्हे वर्तमान आध्रराज्य मे गोदावरी डिवीजन के कुछ स्थानो पर लघुपाषाणिक युग के औजारो के साथ प्राचीनप्रस्तरयुग के औजार भी मिले है। कन्वापुरम मे लघुपाषाणिक औजार प्रस्तरयुगीन औजारो की ऊपरी सतह पर मिले है। ये प्रस्तरयुगीन औजार अधिक गहराई मे नही थे। ये लघु-पाषाणिक औजार प्रस्तरयुगीन औजारो के ठीक ऊपर लाल मिट्टी मे पाए गए है। ये दोनो प्रकार के औजार एक साथ पाए गए हैं। इन हथियारो के क्रम और मिट्टी के वर्णन का नन्दीकाणम-घाटी मे पाए गए औजारो तथा मिट्टी मे बहुत साम्य है।[2]

शल्कल-औजारो के उत्पादन की किसी स्थिति मे जब प्राचीन भारतीयो को यह पता चला कि लम्बे तथा पतले ब्लेड, जिनका प्रयोग शायद विस्तृत हो चुका था केवल उत्तम दानेदार पत्थर से ही किया जा सकता है। तब वे क्वार्टजाइट की अपेक्षा अधिक उत्तम पदार्थ की खोज करने लगे। अत जहाँ कही भी चर्ट एव कल्सीडोनी पाए जाते अथवा आसानी से मँगाये जा सकते थे वहाँ उनका प्रयोग आरम्भ हो गया। हमलोग यह पाते है कि नन्दीकाणम-घाटी के आस-पास रहने-वाले लोग काले रग का सुन्दर एव दानेदार लीडियन पत्थर का व्यवहार करते थे। इन औजारो का आकार अधिकतर प्राप्त सामग्रियो के आकार पर निर्भर करता था। इसलिए हम यह पाते हैं कि चर्ट और कल्सीडोनी गुटिकाएँ बड़े आकार की

---

१. हाईमेंडॉर्फ, 'नोटस ऑन द स्टोन एज इन इंडिया', मैन इन इंडिया, XXVIII न० ४, १९८४, पृ० २०८

२. कैमिएड, पिग्मी इम्प्लीमेंट्स, पृ० १०३-५

नहीं हुआ करती थीं और भारत मे ब्लेड-उद्योग अधिकांशत: लघुपाषाणिक थे।

सभी प्राप्त प्रमाणो से यह पता चलता है कि भारत के लघुपाषाणिक उद्योग भूवैज्ञानिक दृष्टि से हाल के है। भारत के दक्षिणी छोर पर तूतिकोरिन के बालुका-स्तूप में और उसके नीचे पाये गये औजार, जिनमें से कुछ नीचे की सख्त पपडी मे भी गड़े पाए गए हैं, वे काफी पुराने हो सकते हैं यद्यपि उन शिल्पतथ्यो का केवल सख्त पपड़ियो मे पाया जाना ही बहुत महत्त्व नही रखता है। किंतु यह सभव है कि वे औजार तथा नदीकाणम की ऊपरी श्रेणी मे पाए गए औजार और खाडवली की ऊपरी मिट्टी मे पाए गए औजार आरम्भिक लघुपाषाणिक अथवा प्रोटो-लघुपाषाणिक युग के हो और इनका काल ई० पू० आठ हजार से लेकर छह हजार वर्ष तक हो। बहुत कम लघुपाषाणिक औजार स्तरीय स्थिति में पाये गये है। बगलोर से १० मील उत्तर-पश्चिम जलाहल्ली नामक स्थान पर लघुपाषाणिक हथियार ग्रेनाइट के शैल-सस्तर अथवा काली मिट्टी के नीचे ग्रेनाइट के पार्श्वीय रोडे पर पाए गए हैं। काली मिट्टी की गहराई ४ फुट से लेकर १३½ फुट तक है। जहाँ लघुपाषाणिक औजार ५ फुट पर मिले है वहाँ सतह से ४ फुट नीचे कुम्हारी मिट्टी की सतह मिली है।[1] मालूम पडता है कि यह बहुत हाल की जमा की हुई दुमट है। गुजरात के लघनाज और हिरपुरा की खुदाई मे सतह के ८ फुट नीचे तक हाल के तथा जीवाश्म-बालू मे लघुपाषाणिक औजार मिले है, किंतु अधिकतर औजार ४ फुट के अदर ही मिले हैं। इनमे भी अधिकाशत सतह के २ फुट से लेकर ६ इ च नीचे तक मिले है। सबसे प्रारभिक और सबसे बाद के हथियारो के तकनीक मे कोई परिवर्त्तन नही हुआ। हथियारो की किस्म मे भी कम ही अतर था।[2] मध्यप्रदेश मे पचमढ़ी के निकट डोरोथी डीप केव की खुदाई मे लगभग उसी तरह की सामग्रियाँ प्राप्त हुई है। अधिकतर लघुपाषाणिक औजार सतह के नीचे १८ से लेकर ३१ इ च तक में पाए गए हैं। बघेलखड की आरभिक खुदाइयो मे भी बहुत कुछ इसी तरह की सामग्रियाँ प्राप्त हुई हैं।[3]

उत्तरी मद्रास मे बेलारी से तीन मील उत्तर-पूर्व सगनकल्लू नामक स्थान पर डा० सुब्बाराव ने सन्नारसम्मा-पहाडी पर खुदाई की है जिसमे अवस्थापन-क्रम के प्रमाण मिले है। शैलसस्तर के ठीक ऊपर स्थिति न० १ मे ट्रैप तथा बलुआपत्थर के बहुत

१. टॉड, अ माइक्रोलिथिक इंडस्ट्री ऑव ई० माईसोर, पृ० २८-३०

२. सकलिया, इन्वेस्टीगेशन्स इन प्रीहिस्टोरिक आर्क्योलॉजी ऑव गुजरात, पृ० ६५-१००, फिग० ८ एंड अप० II

३. हटर, इंटेरिम एंड फाइनल रिपोर्ट्स ऑन एक्सकैवेशन्स इन द महादेव हिल्स

मोर्चा लंबे शल्कल पाए गए थे। इसका तात्पर्य यह हुआ कि इस स्थिति मे क्वार्ट्ज तथा चर्ट के भद्दी किस्म के लघुपाषाणिक उद्योग प्रचलित थे। इसके बावजूद कि इस सग्रह पर तीन से लेकर छह इंच मोटी तथा अनुर्वर परत थी (जिसका मतलब यह होता है कि यह इलाका बहुत लम्बे अरसे तक परित्यक्त था), फिर भी इस बात की संभावना नहीं है कि यह बाद के शल्कल-ब्लेड-उद्योग के अतिरिक्त कुछ भी रहा होगा; क्योकि इसके बाद परिष्कृत प्रस्तर-कुठार-संस्कृति आई जिसमे उपयोगी सामानातर किनारेवाले पट्टीदार शल्कल-ब्लेडो का व्यवहार होने लगा जिसके बारे मे इसमें तथा अगले परिच्छेदो मे और अधिक लिखा जायेगा।[1]

ऊपर वर्णित के अतिरिक्त बहुत-से स्थानो मे लघुपाषाणिक औजार ऊपरी सतह पर पाए गए हैं और ऐसा मालूम पडता है कि ये छिछले संग्रहों से बहकर पत्थरों पर चले गए है, किंतु कही भी इस बात का कोई सबूत नही मिला है कि ये शल्कल अथवा औजार एक फुट या अठारह इंच से अधिक गहराई मे पाए जाएँगे। क्रोडों की सख्या को देखकर यह मालूम पडता है कि बहुत-से क्षेत्र जहाँ ये शल्कल अधिक मात्रा मे पाए गए है, इनके कारखाने रहे होंगे। छोटे पथरीले उत्सेधों पर, जो अब प्राय बंजर रहे हों तथा जो चारो ओर से अच्छी तरह दिखलाई पड़ते हो, मध्य-पाषाणिक काल के शिकारियो ने झोपडियाँ बनाई होगी। लगभग सभी गुफाओ अथवा चट्टानो के आस-पास शल्कलो का सग्रह मिलेगा। इन पथरीले स्थानो के अग्रिम ढलानो पर निस्सदेह लघुपाषाणिक औजार मिलेंगे तथा गुफाओ और पथरीले स्थानो पर बहकर जानेवाले स्थानो पर खोज करने से बहुत कुछ मिलने की सभावना है।

यह बात ध्यान मे रखकर कि भारतभर मे लघुपाषाणिक औजारो के क्षेत्र बहुत बडे भाग मे फैले है, दिल मे यह विचार उत्पन्न होता है कि जहाँ अबतक लघुपाषाणिक औजार प्राप्त नही हुए है वहाँ और अधिक खोज करने से रिक्त स्थानो की पूर्ति हो जाएगी और यह विचार सही निकल सकता है। इसलिए हमे उन स्थानों के बारे मे ज्ञान प्राप्त करना बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा। इसके लिए हम नक्शे पर भारतीय उपमहादेश को तीन क्षेत्रो मे बाँट दें—नर्मदा तथा महानदी के उत्तर, इन दोनो नदियो तथा कृष्णा नदी के बीच तथा कृष्णा नदी के दक्षिण के क्षेत्र (चित्र ३)।

सबसे उत्तर-पश्चिम मे पाकिस्तान के उत्तर-पश्चिम सीमाप्रात के मर्दान जिले मे जमालगढी गुफा नामक स्थान है। यह मर्दन-कतलांग सडक के ३०० गज पश्चिम मे है। यहाँ से जमालगढी के प्रसिद्ध बौद्धस्थान के निकट से एक संकड़ा ढालू

1. सुब्बाराव, स्टोन एज कल्चर्स ऑव बेलारी, पृ० १० एवं ११ और २० एवं २१
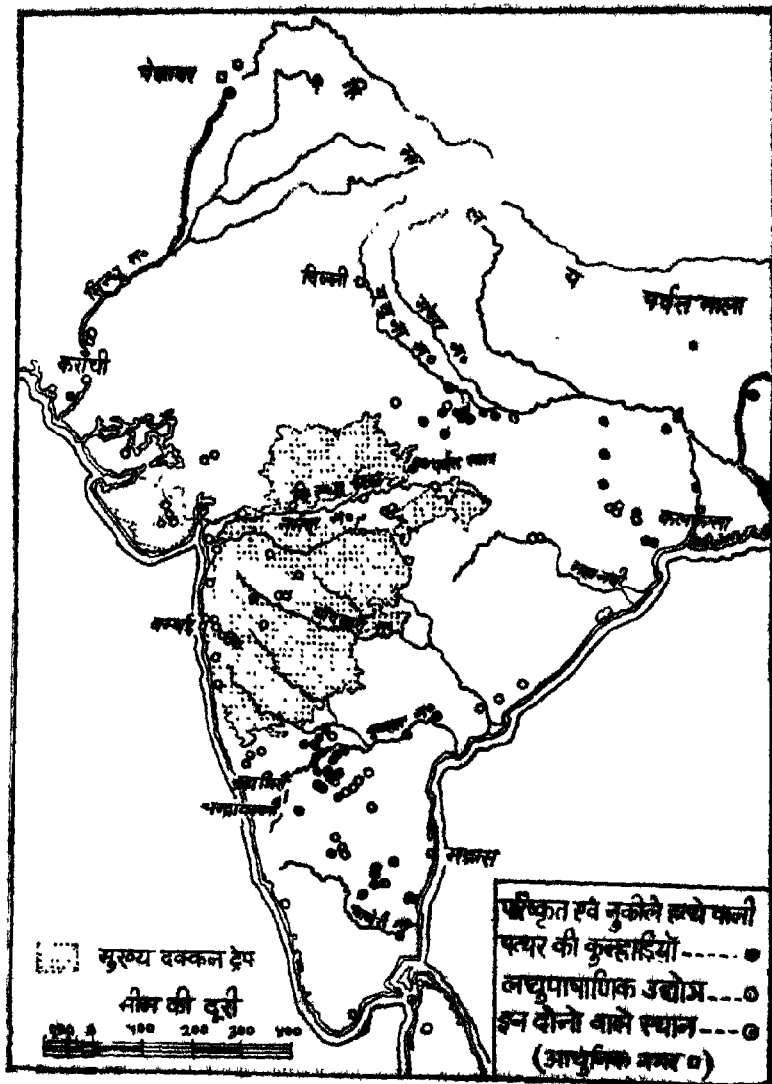
चित्र ३. लघुपाषाणिक उद्योगों एवं पत्थर की कुल्हाड़ियों का वितरण-क्षेत्र

रास्ता जाता है। गुफा के नजदीक के ढाल पर पाए गए शल्कल उजले अपारदर्शी तथा पट्टीदार अर्धपारभासी क्वार्ट्ज हैं तथा इनके शेल काले एव दृढ़ीभूत हैं। शल्कल बुरी किस्म के हैं। इसकी अधिकाश सामग्री रुखडी है और औजार भी रुखड़े बने हैं। अब-तक बहुत दूर तक दूसरा कोई स्थान नही मिला है जिससे कोई अन्य सन्निकट लघु-पाषाणिक उद्योग का पता चलता हो। इसके आस-पास की और तीन गुफाओं मे एक भी शल्कल प्राप्त नही हुआ है। वास्तव में अबतक उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त मे जमालगढ़ी-गुफा ही लघुपाषाणिक शल्कलो का एकमात्र स्थान है।[१] बलूचिस्तान मे अधिकतर लघुपाषाणिक शल्कल किसानो के नवपाषाणिक तथा अर्धताम्रपाषाणिक अवस्थापनो के साथ मिले हैं जिनकी चर्चा हमलोग अगले परिच्छेद मे करेगे। 'ताम्र-पाषाणिक' शब्द का तात्पर्य यह है कि ताँबे तथा काँसे की वस्तुएँ पत्थरो की वस्तुओ के साथ व्यवहार की जा रही थी।

सिंध मे पाए गए प्रमाण कुछ दुर्बोध है। कराची जिले के कुछ स्थानों मे तथा हैदराबाद शहर के आसपास पाई गई सामग्रियाँ कुछ निम्नकोटि की हैं। इनसे यह पता चलता है कि उस प्रात मे मध्यपाषाणकाल मे शिकार करने तथा खाद्यान्न इकट्ठा करनेवाली जातियाँ थी।[२] इस सबध मे सबसे निश्चित प्रमाण कराची से भी आठ मील उत्तर और उत्तर-पूर्व दिशा मे ल्यारी नदी के निकट लघुपाषाणकाल के एक स्थान मे टॉड के द्वारा पाई गई सामग्री से मिलता है। उन शिल्पतथ्यो का, जो अब ब्रिटिश-म्यूजियम मे रखे है, पदार्थ निस्सदेह रोहड़ी के चकमक चर्ट है। साधारण हड़प्पा-डिजाइन के उपयोगी पट्टीदार ब्लेडो की सख्या काफी है। उसी प्रकार क्रोड भी बडे तथा लम्बी धारीवाले हैं और ये मोहेंजोदडो मे पाए गए क्रोडो से बहुत मिलते-जुलते है। ३४० मे से लगभग ४० औजार अथवा शल्कल हड़प्पा मे सग्रहित किए गए शल्कलों से भिन्न माने जा सकते हैं। इनमे अर्धचद्राभ, समलब, खुरचनी तथा बरमे भी शामिल है। इसके अतिरिक्त, दो दिलचस्प अश हैं जो कुछ अश मे बडे पैमाने पर फैली हुई लेवेलायशी परपरा के अवशेष माने जा सकते है। (प्लेट III, क)

उस स्थान पर पाई गई वस्तुओ में कुछ काम किए हुए संकीर्ण अश भी हैं जिनका वर्णन आगे दिया जाएगा। इसके अतिरिक्त, एक किरीटी नियामक शल्कल भी पाया गया है। इनसे तथा पट्टीदार शल्कल-ब्लेडो एव बडे आकार के लम्बीधारी-

---

१. गॉर्डन, डी० एच०, एण्ड एम० ई०, असर्वे ऑव एनसिएंट गांधार, पृ० १६, जर्न० इंडियन एंथ्रोपो० इन्स० (न्यू सीरीज) I, १९४५

२. मजुमदार, एक्सप्लोरेशन्स इन सिंध, पृ० २०-१

वाले कोडों के द्वारा हड़प्पा-संस्कृति के साथ संबंध निश्चित हो जाता है। इसका महत्त्व यह है कि इससे हमे लघुपाषाणिक औजारों की किसी एक स्थिति का संबंध किसी निश्चित सास्कृतिक काल के साथ स्थापित करने में सहायता मिलती है जो स्थिति बड़ी लम्बी थी। किंतु इस खास क्षेत्र में पाए गए लघुपाषाणिक उद्योग की तिथि हम लगभग २५०० से लेकर २००० ई० पू० तक रख सकते हैं। ऐसा मालूम पडता है कि कोई शिकार करनेवाला और मछली मारनेवाला जनसमुदाय, जो कि ज्यामितीय औजार बनाने की कला से परिचित था, हडप्पा की सामग्रियो तथा तकनीक से अवगत कराया गया। इसमे सदेह नहीं है कि उन्हे कुछ विशेष अवस्था मे अर्धचद्राभ समलब तथा खुरचनी बनाने की आवश्यकता थी और ये चर्ट के चकमक शल्कल-ब्लेडों से आसानी से तराशे गए। किंतु इस स्थान पर किसी भी प्रकार का बर्त्तन प्राप्त नही हुआ है।

लघुपाषाणिक उद्योगो से सबधित प्रमाणो के मामले मे पजाब मे बडी निराशा हुई है। यदि पचनदो के किनारे पर मध्यपाषाणिक युग के लोग रहते थे तो यह सभव है कि उनकी स्थिति के सारे प्रमाण या तो बाढ मे बह गए अथवा जलोढक के नीचे गड गए। जो प्रमाण मौजूद हैं वे बहुत ही कम है। यद्यपि डी टेरा तथा पेटरसन ने उत्तर-पश्चिमी पजाब के एक बडे भाग मे खुदाई की, किंतु उन्हें लघुपाषाणिक काल की बहुत छिटपुट सामग्रियाँ प्राप्त हुई हैं। नमक के पहाडो मे नौशहरा के पश्चिम मे उचाली नामक स्थान पर पाए गए औजारो के, जिनका हस्तनिर्मित मिट्टी के बर्तनो के ढेर के साथ संबध स्थापित किया जा सकता है अथवा नही भी किया जा सकता है, न तो वर्णन और न दृष्टात ही मिले है। यह ठीक है कि तक्षशिला तथा रावलपिंडी के आसपास इनके अतिरिक्त भी लघुपाषाणिक औजार कुछ छिटफुट रूप मे मिले हैं, पर पजाब मे अबतक ये ही मिले हैं।

कश्मीर मे भी डी टेरा को सोम्बूर, पम्पूर तथा झेलम नदी के किनारे सचित जलोढक मे शल्कल-ब्लेड मिले हैं, किंतु पम्पूर मे प्राप्त किया गया लेवेलायशी आकृति-वाले शल्कलो के अतिरिक्त (जिनकी चर्चा पिछले परिच्छेद मे की जा चुकी है) किसी का भी कोई वर्णन अथवा दृष्टात नही मिला है। ऐसा जान पड़ता है कि इन सभी शल्कलो का मिट्टी के बर्तनो के साथ भौतिक संबध था और यह सभव है कि ये दोनों समकालीन थे। किंतु यह उत्तर-पश्चिम के मध्यपाषाणिक युग के निवासियो के सबध मे बहुत ही कम प्रमाण है। सपूर्ण राजपूताना एव ऊपरी गगा-यमुना-दोआब की यही कहानी है। यह सभव है कि नदीवाले तथा अत्यन्त कृषिवाले इलाकों में ये प्रमाण बाढ़ अथवा हल चलाने के कारण मिट गए हों, किंतु ऐसे विस्तृत अनगवेषित

क्षेत्र अवश्य मौजूद होंगे जहाँ पहले लघुपाषाणिक उद्योग थे तथा उन स्थानों में उन उद्योगों के चिह्न आज भी वर्तमान होंगे। काठियावाड एवं गुजरात तथा बुंदेलखंड एवं बघेलखंड के प्राचीन इलाकों में और बिहार मे ढालभूम-ताम्र-कटिबंध में पहुँचने पर ही हम उत्तरी क्षेत्रों में लघुपाषाणिक उद्योगों के स्थान बहुतायत मे पाते हैं।

काठियावाड मे लघुपाषाणिक उद्योगों के सत्रह स्थान पाए गए हैं, किंतु इनमें से अधिकाश क्षेत्रों में समुन्नत किस्म के मृद्भांड से सबधित शल्कल-ब्लेडों के उद्योगों के सबूत मिले हैं। ये अधिक सुव्यवस्थित रहन-सहन का ढग बतलाते हैं और इनका मध्यपाषाणिक युग के शिकारी लोगों के साथ कोई संबध नही है। गुजरात मे साबरमती तथा माही नदियो की घाटियों मे बहुत-से स्थान पाए गए है तथा राजपूताना और बडोदा मे और अधिक पाए गए हैं—कुल मिलाकर ७० या उनसे अधिक स्थान मिले हैं तथा इस बात का प्रमाण मिला है कि मध्यपाषाणिक काल मे परिभ्रामी शिकारियो का झुंड नर्मदा नदी तथा उसकी शाखाओ के किनारे रहा करता था।[1]

यह विश्वास करना कठिन है कि इदौर, सागर और शिवपुरी नामक शहरो के मिलाने से जो त्रिभुजाकार क्षेत्र तैयार होता है उसमे प्रागैतिहासिक काल के सबध मे कुछ रिक्त काल नजर आते है। प्राचीनकाल मे भारत का एक बडा राज-पथ इस क्षेत्र मे उस स्थान से होकर गुजरता था जहाँ नर्मदा माहिष्मती से मिलती है और फिर यह राजपथ विदिशा एव सुक्तिमती होकर कौसाबी जाता था। यह सभव नही है कि देश के इस भाग मे जिसके चारो ओर लघुपाषाणिक उद्योगवाले मुख्य इलाके फैले है, इस संस्कृति के स्थान न हों। इसमे सदेह है कि अबतक किसी ने इन स्थानो की खोज की है। इसके अतिरिक्त, कई वर्ष पहले कार्लेल एव कॉकबर्न को भारी सख्या में लघुपाषाणिक सामग्रियाँ प्राप्त हुई थी। किंतु ये चीजें किस दशा मे प्राप्त हुई, इसके सबध मे कोई अभिलेख नही मिला है। किंतु यह स्पष्ट है कि मध्यपाषाणिक काल मे शिकारियो के गिरोह कैमूरपर्वतो की गुफाओ मे तथा पथरीले पनाहों पर और सोन नदी के दक्षिण विध्यप्रदेश मे रेवाराज्य के पहाड़ी प्रदेशों मे रहा करते थे। (प्लेट II)

उत्तरी क्षेत्र के सबसे पूर्वी भाग मे लघुपाषाणिक उद्योगवाले दो प्रदेशो की

---

१. फूट, इंडियन प्रीहिस्टोरिक एण्ड प्रोटो-हिस्टोरिक ऐंटीक्विटीज, पृ० १३७-१५०; संकलिया, इनवेस्टीगेशन्स इन प्रीहिस्टोरिक आवर्योलॉजी ऑव गुजरात; ६ सुब्बाराव, आर्क्यो-लॉजिकल एक्सप्लोरेशन्स इन द माही वैली, पृ० ४०

चर्चा की गई है। एक दक्षिणबिहार में है जिसका संबंध ढालभूम के ताम्र-कटिबन्ध से है जो चक्रधरपुर के ठीक उत्तर से आरंभ होकर पूर्व में दाखा-खानों से होता हुआ सुवर्णरेखा नदी के किनारे घाटशिला तक चला जाता है। इस क्षेत्र के स्थानों में काले हॉर्नस्टोन और हरे रंग के चर्ट के सिके हुए ब्लेड पाए गए हैं। ताम्र-धातुमल और नुकिले हत्थेवाले पत्थर के कुठारों के साथ इनका घनिष्ठ भौतिक संबंध था।[1] इस क्षेत्र से पश्चिम बंगाल के बर्दवान जिले में बीरभानपुर मे एक दूसरा स्थान पाया गया। यहाँ छोटे ब्लेड, अर्धचन्द्राभ, आरे तथा मंडलक खुरचनी पाए गए हैं; किंतु इनके असली स्थान का स्पष्ट रूप से पता नही चलता है। यह कहा जाता है कि "ये औजार मलवानिर्मित लैटराइट की पाँच फुट मोटी सतह पर पड़े थे।" किंतु यदि यह कहा जाए कि ये औजार पाँच फुट मोटी सतह पर थे तो इसका कालक्रम ठीक नही बैठता है। लाल छीजी हुई मिट्टी के साथ संबंध रहने के कारण इन्हें उन औजारो के वर्ग मे रखा जा सकता है जो कैमिएड को नदीकाणम तथा बुद्धगुडेम मे प्राप्त हुए थे। इसमे संदेह नही है कि आगे चलकर अधिक विस्तृत विवरण मिलने पर यह बात स्पष्ट हो जाएगी और लोग इस बात पर निर्णय करेंगे कि इन औजारों का काल १०००० वर्ष पूर्व निर्धारित करना उचित होगा या नही।[2]

मध्यवर्ती क्षेत्र मे बहुत से स्थान मिले हैं। दस स्थान तो बम्बई के ठीक उत्तर सालसेट द्वीप मे पाए गए है। इसके अतिरिक्त, बम्बई के दक्षिण १२० मील तक मे कासूशोअल, जजीरा, डभोलगो तथा जयगढ़ मे अन्य स्थान मिले हैं। पूना के आस-पास भीतरी इलाको मे तथा अहमदनगर, औरगाबाद और एलोरा के चारो ओर भारी संख्या मे लघुपाषाणिक औजार मिले हैं। मध्यवर्ती इलाके मे ऐसे बहुत-से स्थान मध्यप्रदेश मे एक साथ मिले हैं जिनमे कुछ नर्मदा और महानदी के ठीक उत्तर—आदमगढ खदान, होशगाबाद —मे हैं। इनके अतिरिक्त, महादेव-पहाडियो मे पचमढ़ी के चारो ओर, जबलपुर एव नागपुर और रायगढ़राज्य में सिंघनपुर एवं कबरापहाड मे ऐसे बहुत-से स्थान मिले हैं। इन स्थानो में प्राप्त चर्ट एव कैल्सीडोनी के हथियारों की बहुत सारी किस्मे देखने को मिलती हैं।

दक्षिणी इलाके के उत्तरी भाग मे कृष्णा तथा तुंगभद्रा नदियों के बीच तथा इसके एक सौ मील के अन्दर ऐसे प्रमाण मिले हैं जिनसे यह मालूम पड़ता है कि उस समय नागरी किस्म के शल्कल-ब्लेडों के साथ असली लघुपाषाणिक औजार भी मौजूद

१. मरें, ई० एफ० ओ०, द एनसिएण्ट वर्कर्स ऑव वेस्टर्न ढालभूम, जर्न० रोयाल एशियाटिक सोस० ऑव बंगाल, VI, १९४०

२. इंडियन आर्कयोलॉजी १९५३-५४—ए रिव्यू, पृ० ५

थे। किंतु सांस्कृतिक अथवा कालक्रमिकता की दृष्टि से इनके आपसी संबंध स्पष्ट रूप से निर्धारित नही किए जा सके हैं। असली लघुपाषाणिक औजार अधिक औद्योगीकरणवाले शल्कल-ब्लेडो की अपेक्षा अधिक पुराने रहे होंगे, यद्यपि यह भी सभव है कि दोनो समकालीन रहे हो। बेलगाँव के निकट पीरनवाडी, तालेवाडी ग्राम के नजदीक गोआ-सीमा के निकट आरापेडी-गुफा, तथा बेलगाँव-कालाड्गी सड़क के किनारे चदरगी मे असली लघुपाषाणिक उद्योगवाले स्थान पाए गए है। इनके अतिरिक्त, तमिनहाल एव ब्याड के आस-पास बलुआपत्थरवाली बादामीपहाड़ियो की तलहटी मे भी बहुत सारे लघुपाषाणिक औजार मिले है।[1]

उत्तर के इलाके इसकी तुलना मे रिक्त है। केवल पूर्वी घाटियों की तलहटियों मे बहुत-से स्थान मिले है। इनके अतिरिक्त, पूरा पूर्वी किनारा तथा कृष्णा एव महानदी के बीच का ४०० मील मे फैले हुए विस्तृत इलाके मे एक भी स्थान नही मिला है। इसका कारण यह है कि क्योंझर और बस्तर के बीचवाले प्रदेशो मे खोज-पडताल नही की गई है, क्योंकि इन इलाको के बारे मे लोग बहुत कम जानते हैं और भारत मे ये सबसे पिछड़े इलाके है।

ब्रूजफूट को बेल्लारी शहर के आसपास बहुत-से स्थान मिले थे तथा कर्नूल मे पटपाद नामक स्थान पर उसने केश (Cache) नामक वस्तु तथा एक निवासस्थान का पता लगाया था। यह सभव है कि इन सबका आपस मे कोई सबंध रहा हो, क्योंकि 'केश' के लाल और काली मिट्टी के बर्त्तनो मे चार कटीले तथा चूलदार बाणाग्रो के अतिरिक्त बहुत-से चर्ट के क्रोड थे और निवासस्थान पर कुछ काम किए हुए और कुछ बिना काम किए हुए शल्कल, चर्ट, कैल्सीडोनी, एगेट तथा लिडियन पत्थर की खुरचनियाँ और क्रोड पाये गये थे। इसमे सदेह नही है कि कुछ बर्त्तन लाल-काले महापाषाणिक तथा कुछ ब्रह्मगिरि-B दो किस्म के नवपाषाणिक-बर्त्तन थे। और जगहो की तरह इस स्थान पर भी इस बात के चिह्न मौजूद है कि नवपाषाणिक तथा लौह-युगीन सस्कृतियाँ परस्पर व्याप्त थी। सानागुण्डला द्रुग, पटीकौण्डा तथा कर्नूल मे भी फूट को भूरी मिट्टी का एक नौललयुक्त बर्तन मिला है जिसकी रेशादार गोठ और छेदवाली उत्कीर्ण रेखादार सजावट को देखकर यह अन्दाज मिलता है कि यह दक्षिण-भारत के परिष्कृत प्रस्तर-कुठार-संस्कृति की कृति है। इसके साथ प्राप्त किए गए शल्कलो तथा एगेट, चर्ट और कैल्सीडोनी के क्रोडो को देखकर यह वर्गीकरण निश्चित

---

१. गॉर्डन, डी० एच०, मोर माइक्रोलिथिक साइट्स इन इंडिया, मैन, ६२, १९३८; सकलिया, सुब्बाराव, जोशी, स्टडीज इन द प्रीहिस्ट्री ऑव कर्नाटक पृ० ६६

हो जाता है।[14] और अधिक दक्षिण जाने से वे स्थान इस प्रकार हैं—बैंगलोर के आसपास कुछ स्थान, कालीकट और कोचीन के निकट एक-एक तथा तूतीकोरिन के निकट टीन्नीवेली के सावेरपुरम। इन स्थानों को छोड़कर मानचित्र रिक्त है।

यद्यपि बहुत-से इलाको की जाँच-पड़ताल की गई तथा बहुत-सी सामग्रियाँ प्राप्त की गई, किंतु इनसे कोई स्पष्ट निष्कर्ष नही निकाला जा सकता है। इस पड़ताल मे, जैसा कि आगे बतलाया जाएगा, लघुपाषाणिक औजारों का बहुत दिनों तक व्यवहार किया जाता था। यह निश्चित है कि प्रारंभिक ऐतिहासिक काल तक इनका प्रयोग होना रहा। अबतक हम यह सिद्ध नही कर पाए है कि इनकी तकनीक मे कोई सुधार अथवा किस्म मे कोई परिवर्तन हुआ हो। केवल एक नई बात हम देखते है। वह यह है कि अधिक प्रगतिशील और अवस्थापित जातियाँ सरल ब्लेड के औजारों का व्यवहार करने लगी थी। भारत मे लघुपाषाणिक शिल्पतथ्यों के जाने हुए दायरे और किस्मो के विभाजन आदि विषयो के सबंध मे अभी भी प्रमाण इतने कम मिले है कि इनकी जानकारी अच्छी तरह से नही की जा सकती है। यह संभव है कि अत्यत ही महत्त्वपूर्ण तथा विस्तृत क्षेत्रों का अभी तक पता नही लगाया जा सका है और कुछ जाने हुए इलाको मे गवेषणा अच्छी तरह नहीं की जा सकी है तथा कुछ इलाको को चुनकर काम किया गया है। इसके अतिरिक्त, शल्कल बनाने के पदार्थों पर भी ध्यान देना पडेगा। कुछ भागो मे खासकर दक्षिण में एकमात्र उजले-रुखडे क्वार्ट्ज पत्थर के रूप मे प्राप्त थे, एक अच्छा-सा चन्द्राभ बना लेना भी बडा सफल कार्य समझा जाता था। औजारो के आकार भी अधिकाशत: कच्चे माल के आकार पर निर्भर करते थे। इसमे सदेह नही है कि नवपाषाणिक तथा ताम्र-पाषाणिक युग मे जो लोग उपयोगी शल्कल-ब्लेड बनाना चाहते थे उतना ही लंबा शल्कल तैयार करते थे जितना बडा चर्ट का पिंड रहता था।

इसकी किस्मों मे सबसे प्रचलित किस्म वह थी जिसमे ब्लेड तथा चन्द्राभों का पिछला भाग सीधा अथवा चन्द्राकार था। शहरो मे पाये गये सग्रहो में भी ये किस्में पाई जाती है। त्रिभुज तथा कई प्रकार के काम किए हुए आकारवाले अश और बरमा साधारणत: प्रचलित है। यही बात आरीदार खुरचनियो के साथ भी लागू है। रुखड़े क्वार्ट्ज-उद्योगों के द्वारा मुख्यत: अशो, छोटी खुरचनियों तथा चद्राभो का उत्पादन होता था। पर जहाँ उत्तम चर्ट एवं कैल्सीडोनी पाए जाते हैं वहाँ सम्भवत:

१४. फुट, इंडियन प्रीहिस्टोरिक एंड प्रोटो-हिस्टोरिक एंटीक्विटीज, पृ० ११७-११८

सावधानीके साथ लम्बे अरसे तक खोजने पर काफी संख्या में और सभी आकार-प्रकार के, जिसमे समलब भी शामिल हैं, औजार प्राप्त हो सकते हैं।

ब्यूरिन (तक्षणी) अथवा नक्काशी करनेवाले औजार बनाना कठिन था। माइक्रो-ब्यूरिन नामक औजार शल्कल-ब्लेड के विभाजन का उपजात दिखलाई पडता है। यह उसका बेकार भाग है। ब्यूरिन कही गई अधिकाश वस्तुएँ उसी प्रकार के शल्कलों के नवीन रूप हैं। ये क्रोड के आवश्यक आकार बनाने के लिए काटे गए हैं अथवा ये ऐसे क्रोड या मोटे ब्लेड है जिनके किनारे पर चोट मारने की जगह के नजदीक ब्लेड का चिह्न है। ऐसी वस्तुएँ इसलिए ब्यूरिन कही जाती हैं क्योंकि किसी व्यक्ति ने उन्हे उस वर्ग मे डाल दिया और 'ब्यूरिन की चोट' का संकेत एक छोटा-सा शर-चिह्न के द्वारा किया है।[१] ऊपरी प्रस्तरकालीन कार्यात्मक ब्यूरिनो से भिन्न (जिसमे दो अपसारी ब्यूरिनो की चोट के द्वारा नक्काशी करनेवाली छेनी का बिंदु बनाया गया है) अन्यान्य लघुपाषाणिक ब्यूरिनो का कोई व्यावहारिक उपयोग सभव नहीं है।

समलबो अथवा अभिसारित भुजाओवाले छोटे ब्लेडवाले भागो के सबध मे हमे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उनका किस प्रकार व्यवहार किया जाता था— इसके संबध में हमलोगों को निश्चित जानकारी प्राप्त नही है। यदि ये तीरो के लिए छेनी-सिरा के प्रकार के थे तब बिटूमन अथवा राल मे सेट किया हुआ चद्राभ भी उतना ही अच्छा होता और ये हर जगह बडी सख्या मे वर्त्तमान हैं। इस औजार के बहुत महत्त्वपूर्ण होने मे सदेह है। केवल एक या दो छोटे शल्क हटा देने पर ये त्रिभुजो अथवा चद्राभो के समरूप मालूम पडने लगते हैं जिससे यह समझ मे नही आता कि समलब के आकार जानबूझकर बनाए गए है या औजार बनानेवाले ने यह समझा कि यह उस आकार मे आ चुका है जिससे वह औजार का काम कर सके। वास्तव मे कुछ तो अपूर्ण चद्राभ रहे हो।

मध्यपाषाणिक युग के लोगों के बचे हुए अवशेषों से हम उनके बारे मे क्या जान सकते हैं? प्रत्यक्ष रूप से तो हम केवल इतना ही जान सकते हैं कि रुखडी सामग्रियो के बडे शल्कलो के स्थान पर उत्तम दानेदार पत्थर के छोटे शल्कल बनाते अथवा उनका उपयोग करते थे। इसके अतिरिक्त, कोई ऐसी चित्रकारी अथवा नक्काशी नही है जिसे हम निश्चित रूप से मध्यपाषाणिक काल के शिकारियों की कृति कह सकें। यूरोप मे ऐसे लोगो ने अपने कार्यकलापो के सबध में कुछ चित्र-

१५. टॉड, द माइक्रोलिथिक इंडस्ट्रीज ऑव बौम्बे, फिग० ६, ६६ एवं १०४

कारियाँ छोड़ी हैं और ई० पू० १००० वर्ष के उत्तरार्द्ध में महादेवपहाड़ियों के निवासियों ने भी, जिन्होंने मध्यपाषाणिक काल के औजारों का प्रयोग अवश्य किया होगा, वैसा ही किया था। इन दोनों के साथ तुलना करने पर उन सबके रहन-सहन तथा इतना परिश्रम करके बनाए गए मध्यपाषाणिक हथियारों का वे कैसे व्यवहार करते थे—इनसब के बारे मे कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

इनमें सबसे बड़े आकार के औजार ही सीधे हाथ मे रखकर व्यवहार किए जाते थे। ये छुरा अथवा मूठ की तरह व्यवहार किए जानेवाले हथियारों अथवा औजारो के भाग के रूप मे थे। यूरोप के मध्यपाषाणिक काल के लोगों की कला से धनुष के प्रयोग किए जाने का अनुमान लगाया जा सकता है। स्पेन की एक कलाकीर्ति मे तीरदाजों के एक बड़े झुंड को शिकार करते, पदचिह्न के सहारे पीछा करते, नाचते और लड़ते दिखलाया गया है। बिन्दु तीर की सिरा होंगी, त्रिभुज काँटे होंगे तथा किसी भी छोटे आकार के पीठदार ब्लेड हाथ मे पकडे जाते रहे होंगे और वे छूरी के काम में लाए जाते होंगे। खुरचनियो के कमानीदार छोर पर आस्ट्रेलियन ढंग की मूठें लगी रही होंगी। बरमा से चमड़े तथा समलंबों मे छेद बनाया जाता होगा तथा अर्धचंद्राभ अनुप्रस्थ तीर-सिराओ का बोधक रहा होगा।

महादेवपहाडियो की जगली जातियों की चित्रकारी देखने से यह पता चलता है कि शिकार करना, नृत्य करना, मधु इकट्ठा करना, तथा तेंदुआ, बाघ आदि जगली जानवरो से लडना उनका काम रहा होगा। उनके रहन-सहन का सामान्य तरीका उनके पूर्वजो के समान रहा होगा। यद्यपि उनके तीर की सिराएँ धातु की बनी होती थी, पर अभी भी उनका रहन-सहन मध्यपाषाणयुग के शिकारियों के समान ही था जो पथरीले स्थानों पर तथा शाखाओं की झोपडी मे रहा करते थे। उनका मुख्य भोजन शिकार, मधु तथा खाद्य कन्द-मूल थे।

भारत मे 'प्रोटो-नवपाषाणिक' शब्द का व्यवहार हाल से होने लगा है। इसका प्रयोग सस्कृति की एक ऐसी स्थिति बतलाने के लिए किया जाता है जिसमें लघु-पाषाणिक औजारों का प्रयोग ऐसी जातियों के द्वारा किया जाता था जो मुख्य रूप से भोजन-संग्रह अथवा शिकार करने पर निर्भर नही करती थी बल्कि भ्रमणशील मध्य-पाषाणिक जातियों की अपेक्षा अधिक अवस्थापित थी और एक प्रकार की खेती किया करती थीं। यह आवश्यक नहीं है कि ये जातियाँ बर्तन बनाना जानती थीं। यद्यपि ये लोग पशुचारण तथा कृषि भी करते थे, किंतु असल मे वे बहुत पुरानी किस्म की मिश्रित कृषि-कार्य किया करते थे। किंतु यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह शब्द कहाँ तक हर तरह से सही है। किंतु इसके द्वारा उन स्थानों को बतलाने में

सुविधा होती है जहाँ हमे इसका प्रमाण मिलता है कि ये लोग उन मध्य-पाषाणिक लोगो की अपेक्षा अधिक अविस्थापित किस्म का जीवन बिताने लग गए थे, जो भ्रमणशील शिकारी थे तथा हिरण अथवा मृगो का पीछा किया करते और कन्द-मूल चबाया करते थे।

भारत मे कोई ऐसा परिवर्तनकाल नही दिखलाई पडता है जिससे हम स्पष्ट रूप से कह सकें कि अमुक काल मे मध्यपाषाणिक औजारो का प्रयोग करके शिकार करने तथा भोजन एकत्रित करनेवाली जाति भोजन उत्पन्न करनेवाली जाति बन गई। साथ ही, प्रस्तरयुगीन औजारो का व्यवहार भी करती रही। इसलिए हमलोगो को यह पता लगाना चाहिए कि अधिक विकसित जातियो के सपर्क में आने के बाद इसका क्या रूप हुआ। ये जातियाँ भोजन इकट्ठा करनेवाली अथवा भोजन उत्पादन करनेवाली थी या नही तथा हमे यह याद रखना चाहिए कि भारत में विकास की हर स्थिति के लोग एक साथ पाए जाएँगे—इन बातो को ध्यान मे रखकर कुछ ऐसी तस्वीरें बनानी चाहिए जो कालक्रम से पूर्णरूपेण सबद्ध हो। ई० पू० ३२०० से पहले भारत के सीमा-प्रदेशो मे भी मिट्टी के बर्त्तनो के व्यवहार किए जाने का कोई प्रमाण नही मिला है। किंतु बलूचिस्तान मे क्वेटा के निकट किले गुल-मुहम्मद नामक स्थान पर एक अवस्थापन का पता चला है जहाँ के निवासी मिट्टी की ईंटो के बने मकानों मे रहा करते थे। इन मकानो मे लकडी के कोयले के ढेरो के साथ पशुओ की अस्थियाँ भी बहुतायत मे पाई गई है। यहाँ चकमक-शल्कलो एव क्रोडो तथा काम किए हुए हड्डी के औजार पाए गए है, किंतु मिट्टी का एक भी बर्त्तन नही पाया गया है। इससे यह पता चलता है कि यहाँ मृद्भाड अविष्कार के पहले के कुछ अपेक्षाकृत अवस्थापित लोग रहते थे तथा उनलोगो ने कुछ पशु पाल रखा था जा उनके भोजन के काम में आते थे। वहाँ खेती का कोई प्रमाण मौजूद नही है और यदि सालभर पशुओ के लिए काफी चरागाह की व्यवस्था नही थी तो पालतू जानवरो की उपस्थिति से भी यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता है कि वे मनुष्यो अथवा पशुओ के भोजन के लिए अनाज उपजाने के उद्देश्य से पुरानी-सी-पुरानी किस्म का भी कोई कृषि-कार्य किया करते थे।[१]

ये प्रारंभिक लोग भोजन एकत्रित करने की स्थिति से भोजन उत्पादन करने की स्थिति मे कैसे पहुँचे, इसका चिह्न पाना बहुत कठिन है। कूड़ो के ढेरो मे पाई गई अस्थियों को देखकर यह कहना बहुत कठिन है कि इन पशुओ, विशेष रूप से, सूअर तथा बकरियो का केवल शिकार किया जाता था या इन्हे पाला भी जाता था।

१. फेअरसर्विस, एक्सकेवेशन्स इन द क्वेटा वैली, वेस्ट पाकिस्तान, पृ० ३३४-५

इसके अतिरिक्त, छोटे पैमाने पर लकड़ियों के द्वारा खोदकर की जानेवाली खेती का भी कोई चिह्न पाना संभव नहीं है। यह संभव है कि लघुपाषाणिक औजार व्यवहार करनेवाले बहुत-से लोग इस प्रकार का कृषिकार्य करते रहे हों और लंघनाज मे सकलिया को एक चक्की तथा एक मूसल भी मिले हैं जो स्पष्टतः मिट्टी के बर्त्तनों के पहले के मालूम पड़ते हैं।

उत्तर-पश्चिम सीमाप्रदेशों में उत्तर-पूर्व मे जोब से लेकर दक्षिण-पश्चिम में मकरान तक पहले ही मिट्टी के बर्त्तनों का आविष्कार हो चुका था। इसका काल अस्थायी रूप से ई० पू० ३१०० रखा जा सकता है। मिट्टी के बर्त्तनों के आविष्कार के पहले, जिसका वर्णन ऊपर किया गया है, किले गुलमुहम्मद की द्वितीय स्थिति मे हाथ द्वारा बनाए गए मिट्टी के बर्त्तन साभान्यतः पाए जाते थे। इनमे डोरीदार तथा चटाई की चिह्नवाली ठीकरियाँ भी शामिल थी। इसके अतिरिक्त, एक ऐसा भी हस्तनिर्मित एव चित्रकारी किए हुए बर्त्तन का प्रमाण मिला है जिसकी रुखड़ी सतह पर भद्दी किस्म के ज्यामितीय नमूने बने थे। ऐसे बर्त्तन राणा गुंडाई के जोब नामक स्थान पर लोरालाई I नामक प्रारभिक स्तर मे मिले है। उस क्षेत्र मे लोरालाई I आरभिक ऐतिहासिक युग तक आनेवाले लबे क्रम का सर्वप्रथम था। राणा गुडाई के सभी स्तरो मे चर्ट के शल्कल-ब्लेड मिले है, किंतु इनमे से अधिकाश लोरालाई I मे पाए गए है। केवल शल्कल-ब्लेडो, शल्कल पर एक खुरचनी तथा एक क्रोड का वर्णन किया गया है, किंतु इनमे से किसी भी बालूच अवस्थापन में ज्यामितियों अथवा सर्वव्यापी अर्धचंद्राभो के भी प्रमाण नही मिले हैं।[1] किले गुल-मुहम्मद तथा राणा गुडाई मे हड्डी के और अधिकतर आरे के आकार के पाए गए है। राणा गुडाई मे सबसे निचली सतह मे छेदवाली एक सूई भी पाई गई है। इस प्रकार की सूई ८० मील उत्तर-पूर्व पेरियानो गुंडाई नामक स्थान पर भी पाई गई थी।

इन प्रारभिक किसानो तथा कुम्हारो के चिन्न अभी भी दुर्लभ है। आठ स्थानो पर चटाई के चिह्नवाले मिट्टी के बर्त्तनो के प्रमाण मिले है। इनमे स सात स्टीन को बालूच मकरान मे मिले थे। डोरी तथा चटाई के निशान से यह पता चलता है कि लोग डोरी ऐठना तथा चटाइयों एव टोकरियो पर प्लेट बनाना भी जानते थे। छेदवाली सूई से यह पता चलता है कि वहाँ के लोग कपड़ा बनाना भी

१. रॉस, अ चैलकालिथिक साइट इन एन० बलूचिस्तान, पृ० २९६, २९८ (न० २१ लास्ट-पैरा) एव पृष्ठ २९९
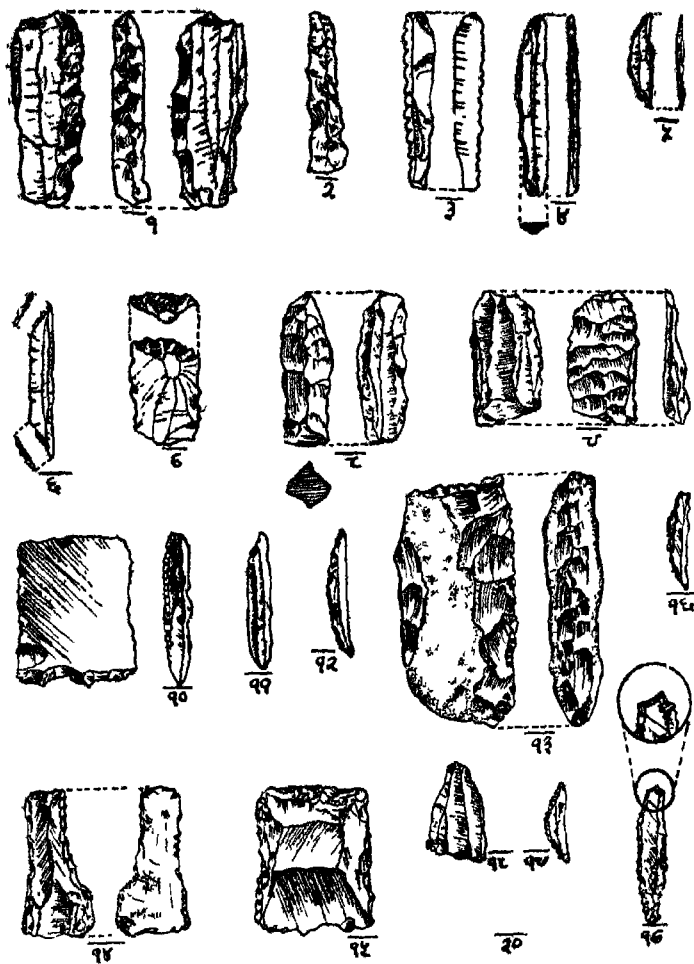
चित्र ४. नगरी संस्कृति किस्म के प्रस्तर-युगीन औजार

जानते थे। किंतु बालूच मकरान के सांस्कृतिक क्रम में हस्तनिर्मित एवं चटाई के चिह्नवाले बर्त्तनों के निर्माताओं का क्या स्थान था, यह हम अभी तक नहीं जान पाए हैं। स्टीन के विचार में यह पहले था और उसका विचार ठीक भी हो सकता है। किंतु इन बड़े स्थानों में स्तरण के बारे में कोई निश्चित प्रमाण नहीं प्राप्त हुआ है। इनका अगले परिच्छेद में वर्णन किया जाएगा।

अतः हमारे समक्ष नवपाषाणिक किस्म के सांस्कृतिक प्रभावों का चित्र मौजूद है जो पश्चिम से लेकर भारत तक फैला था। संभवतः इस क्षेत्र में ऐसे लोग निवास करते थे जो मध्यपाषाणिक अथवा कुछ अंश मे मध्यप्रस्तरयुगीन स्थिति में थे। ये उत्तर-लेवेलायशी किस्म के शल्कल-औजारों का व्यवहार करते थे। आगे चलकर बड़े औजारो के स्थान पर लघुपाषाणिक औजारों का प्रयोग होने लगा। केवल पत्थर के गडासो का प्रयोग हाल-हाल तक होता रहा। दिल्ली से लेकर नर्मदा तक खीची गई रेखा के दक्षिण-पूर्व मे पाए गए लघुपाषाणिक बर्त्तनों का समय ई० पू० २००० वर्ष से पहले रखा जा सकना है या नहीं, इसमे सदेह है। इनमें से अधिकांश बहुत बाद के हैं। हाल मे जो सादे तथा चित्रकारी किए हुए नवपाषाणिक बर्त्तन मिले है उनकी तिथि ई० पू० १००० के किसी भी भाग मे रखी जा सकती है।

चाक पर बनाए गए बर्त्तनों के प्रचार तथा व्यापार के द्वारा कम मात्रा में प्राप्त तांबे के प्रयोग के साथ लघुपाषाणिक किस्मो मे भी परिवर्तन दिखलाई देता है। असल मे अब यह लघुपाषाणिक नही रह गया, क्योंकि इसका मुख्य उद्देश्य छुरी लगाकर ज्यामितीय आकार बनाना था। नए उद्योग का, जिसके दृष्टात हम सिंधु-सभ्यता तथा आगे चलकर भारत के मध्यक्षेत्रो के कई स्थानो पर पाते है, मुख्य उद्देश्य लबा एवं समानातर भुजाओंवाला पट्टीदार शल्कल-ब्लेड का उत्पादन करना था। यह सभी घरो मे छूरी के उपयोग में आता था। इसमे सदेह नही है कि ये ब्लेड उन-लोगों के द्वारा काटने के औजार के रूप मे व्यवहार किए जाते थे जो तांबे का व्यवहार नही कर सकते थे। इसके अतिरिक्त, वे लोग भी इसका व्यवहार करते थे जिनकी पहुँच तांबे के औजारों तक नहीं थी। इस नए प्रकार की प्रस्तरकला इनलोगों को सांस्कृतिक आदान-प्रदान के रूप मे प्राप्त हुई। किंतु इसकी तकनीक ये पहले से ही जानते थे। (चित्र ४)

यह उपयोगी शल्कल-ब्लेड महत्त्वपूर्ण है और इसका प्रभाव अत्यंत ही विस्तृत था। औजारों का दायरा बडा नही है। एक तैयार किए गए क्रोड में से लंबे सकीर्ण एव समानांतर भुजाओंवाले शल्कल काटकर बनाए जाते थे और इन्हें यथावत छूरी के काम में लाया जाता था। किंतु कुछ शल्कलों पर काम

करके हत्थों को चूल के आकार का बनाया जाता था। कुछ अन्य के हत्थों के छोर पर कुछ बाँधने के लिए खाँचा बना दिया जाता था। कुछ शल्कलों के एक किनारे पर आधारवाले लघुपाषाणिक ब्लेडो की तरह के परिष्कृत खाँचे बनाए जाते थे। जहाँ कहीं भी उद्योग पाए जाते है वहाँ कुछ लंबे अंश भी पाए जाते हैं जो ब्लेड के दोनो किनारों को दोनो ओर बराबर छाँटकर बनाए जाते है। गहरा खाँचा बनाया हुआ ब्लेड अधिकाश सग्रहो मे एक या दो की सख्या मे पाया जाता है। यह शायद आरे के बदले हँसुआ के ब्लेडों का भाग है। यद्यपि कुछ ऐसे भी दृष्टात है जिनमे खाँचे एक दूसरे के निकट और छिछले हैं। इनसे कुछ समय तक दाँत घिस अथवा टूट जाने तक आरे का काम लिया जा सकता है।

इन छूरियो, अशो एव दाँतवाले ब्लेडो क साथ ही हम इनका दिलचस्प तकनीकी उपजात किरीटी निर्देशक शल्कल भी पाते है। ये त्रिकोणात्मक खड के लबे शल्कल हुआ करते थे और इसके दोनो अग्रिम भाग पर अनुप्रस्थ कत्तर चिह्न तथा तीसरे मुख पर चौरस शल्कल सतह हुआ करती थी। इस तकनीक का वर्णन इस प्रकार दिया गया है—"वैकल्पिक शल्कलन के द्वारा क्रोड के शल्कलन करनेवाले लबे अग्रिम भाग पर मेड बनाया जाता है और यह पहले ब्लेड के हटाने मे निर्देश देता है। अतः इसका पिछला भाग किरीटी तथा खड त्रिकोणात्मक होता है।"[१] इस प्रकार का शल्कल ब्लेड-उद्योग का, जहाँ तक भारत से सबध है, इतिहास हडप्पा-सस्कृति से आरभ हुआ और इसके चिह्न सम्पूर्ण निकटपूर्व एव मध्यपूर्व मे पाए जा सकते है। हडप्पा-सस्कृति का पूर्ण विवरण चौथे परिच्छेद मे दिया जाएगा। शल्कल-ब्लेड-उद्योग तथा मध्यपाषाणिक उद्योगो के बीच फर्क यह है कि शल्कल-ब्लेड-उद्योग मे ज्यामितीय आकारो का अभाव था तथा अर्धचद्राभ कही-कही पाए गए हैं जबकि मध्यपाषाणिक उद्योगो मे, जैसा कि नतूफियन-उद्योग मे लम्बे ब्लेड बनाए जाते थे जो इनके गोदाम का एक भाग था। यह अधिकाश अभिजात स्थानों मे पाया जाता है। अनातोलिया मे अलीसार हुयुक तथा ईरान मे टेपे हिस्सार नामक स्थान पर किसी भी काल मे शल्कल-ब्लेडो मे कोई खास परिवर्तन नही आया है। वे ठीक इसी प्रकार के है तथा ईरान के सियाल्क I से लेकर IV तक भी इसी तरह के है। अनातोलिया मे चर्ट ब्लेड नवपाषाणिक एव महापाषाणिक मर्सिन मे दाबशल्कलित तीर तथा आग्नेय काँच की नेजा-सिराओ के साथ मिले हैं। शल्कल-ब्लेडो तथा दाबशल्कलित

१. डोनेमेज, ए० ऐण्ड ब्राइस, डब्लू० सी०, अ फ्लिट ब्लेड वर्कशॉप नीयर गाजियॉटेप, एस० टर्की, मैन, १२५, १९५१

अशों के तकनीक एक साथ इराक में भी वर्तमान हैं। किंतु केवल दो द्वावशल्कलित ब्लेड भारत की सीमा पर पाए गए हैं—एक बालूच मकरान में सुतकागेन डोर नामक स्थान पर और दूसरा पेरियानो गुंडाई मे। परंतु भारत में एक भी नहीं पाया गया है।

उत्तरफारस मे कैस्पियन समुद्र के दक्षिण-पूर्वी तटों के निकट गर-इ-कमरबंद अथवा पेटी-गुफा बहुत महत्त्वपूर्ण है; क्योकि हम यहाँ एक ही खड में ज्यामितीय लघुपाषाणिक से लेकर नवपाषाणिक शल्कल-ब्लेडो के प्रयोग का सक्रमण पाते हैं। खुदाई करनेवालो ने इस गुफा को २७ स्तरो मे बाँटा है। १ से लेकर ९ तक के ऊपरी अथवा नवपाषाणिक स्तरो मे हम उसी प्रकार का शल्कल-ब्लेड-उद्योग का अस्तित्व पाते है जिसकी चर्चा हम करते आ रहे हैं। शिल्पतथ्यों में २० हसुआवाले ब्लेड तथा ५८ छुरियाँ हैं। जो कुछ खुरचनी, आरा तथा बरमा मिले हैं वे सब रुखड़े ब्लेड अथवा कर्तन शल्कल मालूम पडते हैं। इन ब्लेडो के साथ दस अपघर्षित एवं परिष्कृत पत्थर की कुल्हाडियाँ और ऐसे मिट्टी के बर्त्तन मिले हैं जो ऊपरी सतहो में अधिक सख्या मे पाए जाते है। लघुपाषाणी स्तरों मे ११ से लेकर २४ स्तरो के बीच आधारवाले ब्लेड लगभग बराबर संख्या मे वितरित है। इसके अतिरिक्त, कुछ त्रिकोण और कुछ अच्छी खुरचनियाँ भी मिली हैं। कम-से-कम ११६ आरो का भी उल्लेख मिलता है, लेकिन उनका वर्णन इससे भिन्न है। ऊपरी स्तरों में हड्डी के बहुत-से औजार मिले हैं तथा आयु निर्धारित करने की कार्बन-१४ प्रणाली से, जो कि इस दृष्टांत मे सतोषपूर्ण नहीं मानी गई है, यह मालूम पडता है कि नवपाषाणिक युग का आरंभ लगभग ई० पू० ६००० वर्ष पहले हुआ था।[1]

पश्चिमअफगानिस्तान के कारा कमार-गुफा मे शल्कल तथा ब्लेड के औजारों के व्यवसाय के अनुक्रमण का अभिलेख मिला है। यद्यपि यह लेवेलायसी शल्कल ब्लेडो से मध्यपाषाणिक किस्मो के विकास का सकेत देता है किंतु पाई गई सामग्रियाँ अभी तक पूरी तरह प्रकाशित नही हुई है। अतः इस धारणा तथा तिथि निर्धारित करने की उच्च कार्बन-१४ प्रणाली के पुष्टिकरण की बहुत अधिक आवश्यकता है।[2] इन स्थानो का भारत मे पाए गए स्थानों के साथ समन्वय करके ही हम इस बात का सही नक्शा तैयार कर सकते हैं कि ये सस्कृतियाँ कैसे फैलीं।

अब हमलोग सामान्यतः स्वीकृत किस्म के नवपाषाणिक औजारों पर विचार करेंगे। उदाहरण के तौर पर हम अपघर्षित एवं परिष्कृत पत्थर की कुल्हाड़ी को

१. कून, केव एक्सप्लोरेशान्स इन ईरान, १९४९
२. कून, सी०, सेवेन केव्ज, पृ० २२५ एफ, १९५७

लेंगे जो कि अभी बहुत सारी समस्याएँ उत्पन्न कर चुकी हैं। भारत में इसका वितरण शायद सही निर्देश नही देता है और इसका कालक्रम बाद का है। इस प्रकार की कुल्हाडी का इतना बाद आना स्वाभाविक घटना है जो पश्चिमएशिया के कई स्थानों पर दिखलाई पडता है। इसके सबध मे सी० सी० मैककाउन ने यह कहा है कि "परिष्कृत पत्थर पैलेस्टाइन मे अपेक्षाकृत कम सख्या मे पाए जाते हैं तथा हमेशा ताँबे अथवा काँसे के सपर्क मे मिलते हैं। ऐसा मालूम पडता है कि निकटपूर्व मे कही अथवा उससे अधिक दूर नहीं पहले ताँबे का फिर बाद मे कांसे के प्रयोग का पता चला। इसके बाद परिष्कृत पत्थर के औजारों का प्रयोग विस्तृत रूप से फैला अथवा उसका पता चला।"[१]

ईरान मे निकटस्थ पश्चिमी घटना के प्रमाण कुछ हद तक परस्परविरोधी है। शिमिड के अनुसार तेपे हिस्सार में प्रत्येक उत्तरगामी युग मे परिष्कृत पत्थर की कुल्हाडियो की सख्या बढती जाती है। किंतु सियाल्क मे द्वितीय युग के बाद इनकी सख्या घटने लगती है और चतुर्थ युग मे इनका कोई चिह्न नही मिलता है। वे गर-इ-कमरबद के नवपाषाणी स्तरो मे पाए जाते है जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं। किंतु अन्य क्षेत्रो की अपेक्षा ये कुल्हाडियाँ पश्चिमपाकिस्तान मे बहुत कम पाई गई हैं। दक्षिणी बलूचिस्तान तथा बालूच मकरान मे एक भी नही पाया गया है। मध्य-बलूचिस्तान मे नाल नामक स्थान पर हारग्रीव्स को ऐसी दो कुल्हाडियाँ मिली थी किंतु इनमे से एक का भी सतोषपूर्ण पुरातत्त्व-सबधी प्रमाण नही मिला है। क्वेटा के निकट डम्ब सदात नामक स्थान पर कुल्हाडियाँ तो नहीं बल्कि कुछ छोटे आकार के अपघर्षित पत्थर की छेनियाँ मध्य स्तरो मे प्राप्त हुई है। उत्तरी बलूचिस्तान मे राणा गु डाई नामक स्थान पर रॉस को एक कुल्हाडी सतह पर मिली थी जिसे वे बहुत आगे का 'स्तर एफ' का बतलाते हैं और उनके अनुसार इसकी तिथि ई० पू० १००० वर्ष होगी।

कराची के निकट ओरांगी नामक स्थान पर घर्षित एव परिष्कृत कुल्हाडी का एक टुकडा प्राप्त हुआ था, किंतु इस प्रकार की कुल्हाडी की यही एक असली कुल्हाड़ी है जो सिंध में पायी गयी है। मोहनजोदडों मे कुल्हाड़ी की तरह की चार चीजें पाई गई हैं उनका पच्चड अथवा हल के फालों के रूप मे व्यवहार किया जाता रहा होगा। किंतु वे इतने बडे आकार के तथा भारी हैं कि उनका कुल्हाड़ी के रूप में व्यवहार किया जाना सभव नही मालूम पड़ता है। अटक से २१ मील दक्षिण-

---

१. मैककाउन, सी० सी०, द लैडर ऑव प्रोग्रेस इन पैलेस्टीन, पृ० ५२, न्यूयार्क, १९४३

पश्चिम शाहीपुर नगर की दूसरी ओर सिंधु नदी के किनारे एक नमूना प्राप्त हुआ है और तीन नमूने तक्षशिला में सिरकाप नामक स्थान पर प्रारंभिक ऐतिहासिक विन्यास में मिले हैं। दक्षिण-पूर्व मे अन्य क्षेत्रों के साथ तुलना करने पर ये उतना प्रभावोत्पादक नहीं मालूम पड़ते हैं।

कश्मीर का बुर्झामा नामक स्थान और भी अधिक समस्यापूर्ण है। यह स्थान शालीमार-उद्यान से डेढ़ मील उत्तर तथा श्रीनगर से दस मील पर एंडरहोम कारेवा पर स्थित है। यहाँ बहुत-सी अपघर्षित एव परिष्कृत कुल्हाड़ियाँ उत्तम पुरातत्त्वीय विन्यास मे पाए गए हैं। बुर्झामा सुदूर उत्तर-पश्चिम के मात्र दो महापाषाणी स्थानो मे एक है। अबतक वहाँ के खड़े पत्थरो की खुदाई नहीं की गई है, इसलिए हम यह नही जान पाए है कि वे पत्थर किस काल में खड़े किए गए थे। किंतु कुछ घटे तक खुदाई करने के बाद हम इस सबंध में निश्चित निष्कर्ष पर पहुँच सकते है। परतु पत्थर की वर्त्तमान ऊँचाई को देखकर इस बात का सकेत नहीं मिलता है कि पत्थर के गाड़े जाने के समय सतह तीन या चार फुट गहरी रही होगी, क्योकि यह मानने पर जमीन के भीतर और बाहर कुल मिलाकर उनकी ऊँचाई अविश्वसनीय अर्थात् २१ फुट से अधिक हो जाएगी। इस स्मारक की मौलिक योजना अनिश्चित है। ये पाँच विशालकाय पत्थर, जो बुरी तरह झुक गए हैं पूरब की तरफ खुले हुए अर्धवृत्त के आकार मे लगभग अपनी मौलिक स्थिति मे मौजूद है। इस अर्धवृत्त के पीछे तीन और अधगढे तथा अपनी मौलिक स्थिति से स्पष्टतः दूर पर है। (प्लेट IV, अ एव ब)

आरंभिक ऐतिहासिक काल की ऊपरी सतहों की तिथियाँ इस प्रकार है—ईस्वी सन् की प्रारंभिक शताब्दियों के नमूने गढे हुए मिट्टी के बर्त्तन, द्वितीय सदी के हरे रग की परिष्कृत पर्चीवाली ठीकरियाँ तथा निश्चित रूप से ई० पू० ४ से लेकर २ शताब्दियों[1] के उत्तर के काले पालिशवाले बर्त्तन। कुछ हस्तनिर्मित मिट्टी के बर्त्तन भी काले पालिशवाली ठीकरियो के साथ मिले हैं। ये १२ फुट नीचे तक प्राप्त हुए है जहाँ खुदाई रोक दी गई। यह हड्डी के औजारो तथा परिष्कृत पत्थर की कुल्हाडियोंवाली नवपाषिणी संस्कृति है। अधिकांश मिट्टी के बर्त्तन गहरे पाडु रग के तथा जली हुई मिट्टी के गुलाबी रग के बर्त्तन थे, जिनपर खडी किनारीवाली चौरस लकड़ी से लकीरें बनाई रहती थी। इनमें से कुछ अनगढ़े बर्त्तन के गुलाबी स्लिप, हल्के पालिश तथा चटाईदार नमूने हैं जो बिकर्ण बुनाई है।

---

१. उत्तर के काले पालिशवाले बर्त्तन साधारणतः जो एन० बी० पी० कहे जाते हैं। ये तिथि-निर्धारण के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

बर्त्तनों के आधार पर विस्तृत वर्गों के आकार चिह्नित हैं। शायद ये बर्त्तन चटाइयों पर सूखने के लिए डाले गए थे। उसी के चिह्न वर्त्तमान हैं। इनका सांस्कृतिक प्रतिरूप प्रस्तरयुगीन सस्कृति का है जिसका प्रारभिक ऐतिहासिक काल की निश्चित तिथि के उत्पादनो के साथ विलयन हो गया। यदि यह विलयन भ्रामक नही है और यह दिखलाया जा सकता है कि प्रस्तरयुग के लोगो तथा एन० बी० पी० के लोगो के निवासकाल के बीच भूमि बहुत लबे अरसे तक परित्यक्त रही तो यह कहना सभव नहीं है कि चटाईदार नमूनेवाले बर्त्तनो के निर्माता बलूचिस्तानवालो के समकालीन थे। सबसे पहली बात तो यह है कि उस स्थान से प्राप्त प्रमाणो से यह मालूम पडता है कि किसी अश तक विलयन अवश्य हुआ था। एन० बी०पी०-वाले स्तर मे पत्थर की कुल्हाडी के टुकडे, एक कूटनेवाला पत्थर, हस्तनिर्मित बर्त्तनो की कुछ ठीकरियाँ प्राप्त होना, यद्यपि यह भूमि की कुछ भीतरी गडबडी के कारण सभव हुआ हो, लगातार वास की सभावना का बहुत हद तक पुष्टिकरण करता है। इसके अतिरिक्त, डॉ० पेटरसन ने यह कहा है कि नुनार नामक एक निकटवर्ती स्थान पर खुदाई करने पर उन्हे मिट्टी के दुबारा जमा होने का प्रमाण मिला है। इससे यह पता चलता है कि सतह के नीचे कम-से-कम १३ फुट पर पाई गई पत्थर की कुल्हाड़ियाँ तथा मिट्टी के बर्त्तन किसी महान् युग के नही थे।[1]

एक बार जब हम इस इलाके को छोड दे तो चारो दिशाओ मे सैकडो मीलो तक एक भी पत्थर की कुल्हाडी नही पाई जाती है। हाल मे केवल दो कुल्हाड़ियाँ अहमदनगर जिले के नेवासा नामक स्थान पर मिली है। सपूर्ण पजाब तथा राजपूताना मे, दक्कन-ट्रैप के सम्पूर्ण इलाके मे तथा महानदी और कृष्णा के बीच पूरब मे समुद्रतट तक के क्षेत्र मे अबतक केवल ये ही अपघर्षित एव परिष्कृत पत्थर की कुल्हाडियाँ प्राप्त हुई है। उत्तरप्रदेश मे यमुना नदी के दक्षिण तथा पूरब मे, बिहार एव बगाल मे ये सैकडो की सख्या मे प्राप्त हुई है। इसके अतिरिक्त, कृष्णा नदी के दक्षिण रायचूर तथा बेलारी जिलो मे किसानों को हल चलाते समय ये पत्थर की कुल्हाडियाँ बडी सख्या मे मिली है। ऐसी बहुत-सी कुल्हाडियाँ अमरावती के आसपास भी पाई गई है। दक्षिण मे सालेम तथा दक्षिणी अर्काट जिलो मे भी ऐसी कुल्हाडियाँ बडी सख्या मे प्राप्त हुई हैं। कुछ ही ऐसे इलाके है जहाँ खुदाई नही की गई है। सौराष्ट्र, उत्तरी बम्बई, मध्यप्रदेश तथा उत्तरी हैदराबाद मे खुदाई का काम जोरदार तरीके से चला है, किंतु इस सपूर्ण क्षेत्र मे नेवासा नामक स्थान

१. डी टेरा, एक्सकेवेशन्स एट बुर्झामा; पीगॉट, प्रीहिस्टोरिक इंडिया, पृ० ३८ एव ३९; गॉर्डन, स्टोन इंडस्ट्रीज ऑव द होलोसीन, पृ० ८०-८२

पर केवल दो कुल्हाड़ियाँ प्राप्त हो सकी हैं। बहुत अधिक प्राप्तिवाले उत्तर-पूर्वी एवं दक्षिणी केन्द्रों के बीच कोई कड़ी अवश्य रही होगी। तर्क के आधार पर तथा अन्य स्थानों पर प्राप्त अनुभवों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह कड़ी दक्कन-ट्रैप के पूर्वी उपान्तों पर तथा हैदराबाद, मध्यप्रदेश, आंध्र एवं उड़ीसा की सीमा पर होगी। इस पत्थर की कुल्हाड़ीवाली संस्कृति की उत्पत्ति, विस्तार तथा तिथि के विषय पर परिच्छेद ७ में विस्तारपूर्वक विचार किया जाएगा।

प्राप्त हुए प्रमाणो से यह पता चलता है कि पश्चिम के किसानों के सिंध में अवस्थापित होने के पहले भारत के निवासी शिकार करने तथा भोजन इकट्ठा करने-वाली मध्यपाषाणी स्थिति मे थे। पश्चिम के किसानो ने भारतवासियों को कृषि एवं कुम्हार के चाक का ज्ञान दिया। धीरे-धीरे ग्रामीण समुदाय बड़ी-बड़ी नदियों के किनारे बसने लगे और उनलोगो ने शिकारियो के परिवारों को निकाल भगाया या उनका अवशोषण कर लिया। उन किसानो के खेती करने के तरीको के सबध में हम-लोगो को बहुत कम ज्ञान प्राप्त है। किंतु यह सभव है कि अपेक्षाकृत अधिक पिछड़े हुए समुदायो मे लिंग के आधार पर कार्य-विभाजन किया गया था। पुरुष शिकार किया करते थे तथा स्त्रियाँ भूमि के छोटे टुकडो पर लकड़ी से खोदकर खेती करती थीं। उस तरह के समुदायो को देखकर ऐसा मालूम पड़ता है कि हाथ से मिट्टी के बर्त्तन बनाने का काम महिलाएँ किया करती थी तथा पुरुष पत्थर का काम किया करते थे। शायद महिलाएँ ही खुरचनी के द्वारा भूमि को चौरस करती थी और वे भोजन भी पकाया करती थी।

सभी स्थितियाँ मे जैसा हम यह पाते हैं कि जैसे-जैसे खेती करने, बर्त्तन बनाने की कला, धातु-कला तथा अन्य पेशो की जानकारी फैली जिससे रहन-सहन का ढग अधिक सुसभ्य बना वैसे-वैसे इस महादेश के विस्तृत इलाको मे रहनेवाले प्रोटो-नवपाषाणी सस्कृति के लोग, जो शिकार करते थे, कुछ निकम्मी बकरियाँ तथा गाएं पालते थे, भूमि के छोटे छोटे टुकडो पर कुछ अनाज उपजाया करते थे तथा जगलों मे खानेवाले कन्द-मूल खोदा करते थे, की सख्या घटती गयी। वास्तव मे आज भी वैसे बहुत-से लोग मौजूद है।

उनलोगों की शवाधान-प्रणाली के बारे मे बहुत कम बातें मालूम हैं। कैमूर पर्वतमाला के उत्तरी गिरिपाद मे थोड़े-से शवो के टीलो की खुदाई की गई है। इनमें सपूर्ण ककाल, हस्तनिर्मित अनगढ मिट्टी के बर्त्तन, पत्थर के छोटे औजार (जिनकी किस्म का वर्गीकरण नही किया गया है) और बड़ी सख्या में लघुपाषाणी औजार प्राप्त हुए हैं। इनके अतिरिक्त, हंटर को पंचमढ़ी के निकट एक पथरीले पनाह पर एक शवाधान मिला है जिसके अन्दर एक मृतक शरीर बहुत-से लघुपाषाणी औजारों से

घिरा पाया गया है। इस संस्कृति के लोगों के शवाधानों के भूमि की सतह के ऊपरी चिह्न भी अधिकांशतः मिट गए होगे। ये ई० पू० १००० वर्ष तक के रहे होंगे। किंतु डॉ० सकलिया को गुजरात में प्रागैतिहासिक कालीन मानवों का शरीर शवाधानो से निकालने मे बडी सफलता मिली है। उन्होने १९४१-४२ ई० में जो खुदाई की उसमे उन्हें लघुपाषाणी औजारो तथा मिट्टी के बर्त्तनो के अतिरिक्त हड्डी के बहुत-से औजार तथा बहुत-से पशु-पक्षियों की हड्डियाँ भी मिली थी। इस खुदाई मे प्राप्त हुई वस्तुओ के आधार पर वे यह तर्क पेश करते है कि यदि वैसे पशु-पक्षियों की हड्डियाँ मिली है, जिनका मध्यपाषाणी लोग शिकार किया करते थे, तो उन शिकारियो तथा उनके परिवारवालो के ककाल भी उस स्थान पर कही गड़े मिलेंगे जहाँ वे इतने लम्बे अरसे तक रहे थे। इसी विश्वास के साथ उन्होने लघनाज गाँव के निकट अँधारियो टिम्बो नामक स्थान पर दूर-दूर तक गहरी खुदाइयाँ की थी। उनका यह विश्वास निराधार नही था क्योकि १९४४ ई० के आरभ मे तीन नर-ककाल प्राप्त हुए थे और १९४४-४५ ई० के जाड़े मे दुबारा खुदाई करने पर कम-से-कम सात और शवाधान मिले।

इनमे से चार शवाधानों के अवशेष लगभग यथावत थे, किंतु शवाधान झुके हुए थे। लेकिन कोई भी महत्त्वपूर्ण अनुस्थापन नही था क्योकि प्रत्येक एक दूसरे से भिन्न था। खोपडी तथा सामान्य व्यवच्छेद उत्तर-पूर्वी अफ्रीका मे पाए गए जो हैमिटिक किस्म से बहुत कुछ मिलते-जुलते थे। जहाँ पूरी हड्डियाँ नही मिली हैं उनके बारे मे यह अनुमान लगाया जाता है कि शवाधान प्रभाजित थे, किंतु यह निश्चित रूप से निर्णय करना कठिन होगा कि शव दफनाने के समय वह दशा थी अथवा खुदाई के समय शवाधान प्रभाजित थे। इन हड्डियो का कुछ अंश मे जीवाश्मीभवन हो गया है। इस दशा मे मिट्टी के घटक का भी काफी हाथ रहा होगा। शायद ये शवाधान बहुत पुराने है और ये हड़प्पा-सभ्यता से एक हजार वर्ष पहले के या उससे भी पुराने होगे। उनलोगो के असली भौतिक उपकरणो का उस युग के साथ कोई विशेष सबध नही हैं जिसमे वे रहते थे। वे लोग मिट्टी के बर्त्तनो के युग के पहले के थे, किंतु कुछ ऐसे चिह्न मिले है, उदाहरणत., अवतल चक्की, जिससे यह मालूम पड़ता है कि वे कुछ सरल किस्म के अन्न की खेती करते थे। हड्डियो के जीवाश्मीभवन के लिए यह अवधारित करना आवश्यक नही है कि लघुपाषाणी औजारो का व्यवहार करनेवाले ये लोग बहुत प्राचीनकाल मे रहते थे।[1]

---

१. सकलिया एड कर्वे, प्रीलिम० रिपोर्ट ऑन द थर्ड गुजरात प्रीहिस्टोरिक एक्सपिडिसन, पृ० ९-११, डेक्कन कॉलेज रिसर्च इंस्टीच्यूट, १९४५

बहुत-से स्थानों पर जो प्रमाण मिले हैं उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि मिट्टी के बर्त्तनों के प्रादुर्भाव के बहुत समय बाद तक लघुपाषाणी औजारों का प्रयोग किया जाता रहा था। रेवा में मोरहना पहाड़-गुफा, लंघनाज तथा पंचमढ़ी के डोरोथी डीप-गुफा की खुदाई में जो चीजें मिली हैं उनसब से यह पता चलता है कि लघुपाषाणिक औजारों तथा मिट्टी के बर्त्तनों का एक साथ व्यवहार किया जाता था। राजपिपला तथा पूर्वी घाटों में, बेलगाँव, पटपाद तथा मारवे में भिन्न-भिन्न स्थानों पर जो चिह्न मिले हैं उनसब से इस निष्कर्ष का पुष्टिकरण होता है।[१] किंतु इस प्रकार के साहचर्य में मिट्टी के बर्त्तन तथा नवपाषाणी एवं मध्यपाषाणी काल के अधिक सभ्य नगरो तथा गाँवों के उपयोगी ब्लेड-उद्योग का (जिनकी चर्चा अगले परिच्छेदों में की जाएगी) समकालीन अथवा प्रारंभिक उपयोग का कोई विचार नहीं किया जाता है।

भारत मे मानव की सास्कृतिक प्रगति की खोज करने पर हम यह देखेंगे कि किस प्रकार अप्रवासियो अथवा आक्रमणकारियो के द्वारा उन देशो का प्रभाव भारत में आया जो पश्चिमएशिया की सस्कृति के केंद्र थे जैसे कि सुमेर, अक्काड, एलाम एव ईरान। इसके अतिरिक्त, हम यह भी अध्ययन करेंगे कि इन देशो के निवासी शान्तिप्रिय खेतिहर-किसान या सभ्य हड़प्पा-निवासी थे अथवा वे बर्बर आर्यों के नेतृत्व में लडाकू जातियाँ थे जिन्होंने उस विशाल प्रायद्वीप के एक छोटे-से अश को भी प्रभावित करने के पहले पूर्व की ओर बढ़ने की अपनी सारी शक्ति गँवा दी। वास्तव मे नर्मदा के दक्षिणस्थित दक्षिणी भारत पर इन क्रांतिकारी प्रवृत्तियों की केवल तरग दिखलाई पड़ी जिसके फलस्वरूप उत्तर के सास्कृतिक प्रतिरूप में बार-बार परिवर्त्तन हुए। नर्मदा के पार करने के स्थान पर जिस होकर प्राचीनकाल मे उत्तर से दक्षिण की ओर आवागमन हुआ करता था, महेश्वर नामक स्थान से लेकर नीचे उत्तर मैसूर मे ब्रह्मगिरि मे जो खुदाइयाँ हुई हैं उनके फलस्वरूप किस प्रकार नवपाषाणिक तथा मध्यपाषाणिक अवस्थापनों के युग का पता चला है, इसका अध्ययन हमलोग परिच्छेद ७ मे करेंगे। इन अवस्थापनो मे निवास ई० पू० १००० वर्ष के सम्पूर्ण महत्त्वपूर्ण काल मे हुआ था।

प्रथम दो परिच्छेदो मे जिनलोगों की संस्कृति की चर्चा की गई है वे आदिवासी हैं। उनकी भाषा शायद मुंडा अथवा कोल-भाषा के रूप मे सुरक्षित है और इन जातियों का अवबोध हम हो, संथाल, सबारा, भूइया, भील, कोरकू और दक्षिण

२१. गॉर्डन, स्टोन इंडस्ट्रीज ऑव द होलोसीन, पृ० ७२-७६ एवं ८४

के कुरम्बा तथा अन्य जातियों में पा सकते हैं। पुराने समय मे भी इनका भौतिक रूप एक जैसा नही रहा होगा। वर्त्तमान समय मे इतने दिनों से उनपर भाषा तथा अन्तर्जातीय विवाह का बाहरी प्रभाव पड़ा है कि केवल अत्यत एकाकी जातियों के पास ही कुछ अश मे उनकी अपनी भाषा, विचारधारा तथा रहन-सहन का ढंग आर्यों अथवा द्राबीडो के प्रभाव से अछूते रह गए होगे। किंतु सपूर्ण भारत मे जगली जातियो और तथाकथित दलित एव अनुसूचित वर्गों मे प्राक्आर्य एव प्राक्द्राबीडी जनसख्या का मौलिक प्रमाण मौजूद है। अब हम ईरान के ऊँचे पठार के खेतिहर-किसानो के आवागमन के फलस्वरूप उत्पन्न सास्कृतिक परिवर्तनों पर विचार करेगे।

●

परिच्छेद ३

मकरान, बलूचिस्तान तथा सिंध के कृषक-कुम्हार

भारतीय एवं ईरानी सीमा-क्षेत्र के अदर, जहाँ यत्रतत्र पाए गए हस्तनिर्मित बर्त्तनों के आधार पर यह मालूम पडता है कि प्राचीन नवपाषाणी संस्कृति पहले से ही वर्त्तमान थी, चाक पर बने तथा अच्छी चित्रकारी किए बर्त्तनों का आगमन हुआ। इनके पीछे मिट्टी के बर्त्तन-निर्माण तथा चित्रकारी की लंबी परम्परा वर्त्तमान है तथा जिसके फलस्वरूप उच्चकोटि की वस्तुएँ बनने लगी थी। पुरातत्व-सबधी शोध एव अध्ययन करने पर कोई भी ऐसी सस्कृति नही मिलेगी जिनके अदर उस तरह के चित्रित बर्त्तन पाए गए हों जैसा कि भारत की भूमि में प्राप्त हुए हैं अथवा जो सस्कृति पैत्रिक आद्यस्वरूप होने का दावा करती हो। तर्क के रूप मे यह कहा जा सकता है कि इन उन्नत किस्म के बर्त्तनो का श्रेय केवल कुम्हारों को प्राप्त है जो अप्रवासी थे तथा जिन्हे अपनी कला का अधिक ज्ञान प्राप्त था तथा ऐसे बहुत-से बर्त्तन व्यापारियो के द्वारा वितरीत किए गए थे और वे जिन जगहों पर पाए गए हैं उनसे केवल यही पता चलता है कि इनके निर्माता कुम्हार इन्ही क्षेत्रो मे कही रहा करते थे। किंतु यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि इतने बडे इलाके मे जो इतना विस्तृत परिवर्त्तन आया जिसके फलस्वरूप भोजन इकट्ठा करनेवाला जनसमुदाय कृषक बन गया। इसके अतिरिक्त, बिना बर्त्तनवाली जाति के लोग चाक पर बर्त्तन बनाने लगे। उन बर्त्तनों मे सजावट भी रहती थी जिससे उस कला की पुरानी परंपरा का पता चलता है। यह संभवत. अधिक सभ्य लोगों के आगमन का परिणाम था। अब प्रश्न यह उठता है कि ये लोग कहाँ से आए, क्यो आए और कब आए।

जिस प्रमाण के आधार पर यहाँ कालक्रम निर्धारित किया गया है उसकी चर्चा आगे चलकर इसी परिच्छेद मे की जाएगी। किंतु तत्काल उनलोगो के आगमन की, जिनके साथ कृषि-व्यवस्था तथा चित्रित बर्त्तनों की प्रणाली भारत-ईरान सीमा पर आई, तिथि तत्काल के लिए हम ई० पू० २९५० तक निर्धारित कर सकते हैं। वे लोग कहाँ से आए ? वे लोग भारत से नही आए थे, क्योंकि यहाँ उतना पहले ऐसी सस्कृति का प्रमाण नही मिलता है। किंतु ईरान मे बर्त्तनों मे चित्रकारी किए जाने की परंपरा मौजूद थी जिसे हम ई० पू० ५००० वर्ष के प्रारंभिक काल की कह सकते हैं। सीमाप्रदेशों में प्रयुक्त अधिकांश अभिप्रायों का उद्गम हम ई० पू०

३२००-२८०० तक सियाल्क, गियान एव बाकून नामक ईरानी स्थानों पर तथा विशेष रूप से सियाल्क III-५-७, गियान V C एव D और बाकुन III एवं IV में देख सकते हैं।[१]

इस काल के प्रारंभिक भाग में सीस्तान एवं पारसी मकरान में परिपार्श्व-विस्तार मालूम पड़ेगा, किंतु ई० पू० २६०० एवं २८०० के बीच इन संस्कृतियों का पूर्ण विच्छेद हो गया। सूसा-क्षेत्र के प्रोटो-एलामी तथा उत्तर-पश्चिम के अनातोलियाई संबधवाली जाति ने ईरान की चित्रकारीवाले मिट्टी के बर्त्तनो की सस्कृतियों का अंत कर दिया। किंतु इन आक्रमणों के फलस्वरूप चित्रकारी किए हुए बर्त्तनों का उत्पादन उस प्रकार एकाएक खत्म नही हो गया जैसा कि कभी-कभी कहा जाता है। लेकिन इनके फलस्वरूप सूसा के अभिप्राय गियान आए, प्रोटो-एलामी टिकिया सियाल्क आई तथा अनातोलिया के भूरे एवं काले बर्त्तन हिस्सार आए।[२] तीन हजार वर्ष पहले यह विघटन ठीक उसी समय हुआ जब कि ईरानी अभिप्राय इराक के निनेवाइट V[३] मे पाए गए और इसी समय खेतीहर-किसानो का सीस्तान एव मकरान होकर पूरब की ओर प्रवसन हुआ। ये लोग रामरूद के शहर-इ-सुख्ता एव कलात-इ-गिर्द नामक स्थानो पर हमलोग सिग्मों से अलकृत मिट्टी के बर्त्तन नीची नोकवाले त्रिभुज मेटोपो मे, नोक-से-नोक मिले त्रिभुज, प्रत्यावर्ती त्रिभुज पट्टी, माल्टी वर्ग खडे टेढ़े-मेढे झु डो मे बडे सीघवाली बकरियों की मूर्त्तियाँ पाते हैं। ये सब ईरानी पठार के चित्रित बर्त्तनो के समान हैं।[४] इस बात के चिह्न मिलते हैं कि शेलग रूद, हेलमंड झील के दक्षिण एवं दक्षिण-पूर्व के इलाके मे, भारी सख्या मे ऐसे अवस्थापन थे जो ईरान के उन्नतिशील ऊँचे पठार की चित्रित मिट्टी के बर्त्तन की सस्कृति की उप-शाखाएँ थे।[५]

पारसी एव बलूच मकरान के साक्ष्यो का विवर्तन और भी कठिन है। किरमान के दक्षिण एवं पारसी रुदबर के अन्य स्थानो तथा ताल-इ-इब्लिस एव नूराबाद मे स्टीन के द्वारा एकत्रित की गई ठीकरियो के नमूने सरल हैं तथा उनसे

१. गॉर्डन, सियाल्क, गियान, हिस्सार और दि इण्डो इरानियन कनेक्सन, पृ० २१६-७

२. सियाल्क, ग्रिर्समन, फाउले द सियाल्क वौ० I; गियान, कांटेनाऊ और घिर्समन, फाउले द टेपे गियान; हिस्सार, सिमिड, एक्सकेवेशन्स एट टेपे हिस्सार, डैमघान

३. गॉर्डन, सियाल्क, गियान, हिस्सार, पृ० २१६

४. स्टीन, इनरमोस्ट एशिया, प्लेट CXIII एण्ड CXIV; एण्ड्रूज, नियोलिथिक पॉटरी इन सिस्तान, बरलिंगटन मैगनीज, १९२५

५. फेयरसर्विस, प्रिलिमिनरी रिपो० ऑन द प्रोहिस्टोरिक आर्क्योलॉजी ऑव दि अफगान बलूच एरियाज, पृ० २५-३१

कुछ स्पष्ट पता नहीं चलता है। केवल वे कुछ अंशों में ताल-इ-बकून के बर्त्तनों से अस्पष्ट रूप से कुछ मिलते-जुलते हैं। पारसी मकरान में शाह हुसैनी एवं कलाह-इ-सर्दगाह में पाए गए पतले त्रिअरीय टेढ़े-मेढ़े लकीरोंवाले बर्त्तन निहिंग-घाटी में ताल-इ-इब्लिस से लेकर नजराबाद तक पाए गए हैं तथा क्वेटा के बर्त्तनों में भी ऐसे नमूने दिखलाई पड़ते हैं।[1] यद्यपि सियाल्क एवं बकून में सामान्यतः पाए गए ईरानी अभिप्राय सम्पूर्ण बलूचिस्तान एवं मकरान में अलकार की तरह दीख पड़ते हैं, वे खास-खास स्थानों मे विशेष रूप से प्रचलित थे। और, जैसे-जैसे समय बीतता गया उनमे पीपल वृक्षो एव ककुद-मवेशियों के रूप मे भारतीय तत्वों का भी समावेश होता गया। दश्त नदी के पश्चिम ककुद-मवेशियो के चिह्नवाली ठीकरियाँ नही पाई गई हैं तथा बामपुर ओयसिस में मिट्टी के बर्त्तनों के पशु-श्रेणी मे बड़े सींघवाली बकरियो के झुंड पाए दीखते है।

उत्तरी बलूचिस्तान मे क्वेटा शहर के इर्द-गिर्द स्थानों के गवेषण के फलस्वरूप केची-बेग नामक मिट्टी के बर्त्तन का उद्योग का पता चला है जो उसी प्रकार का है जैसा कि सिंध के आमरी में पाया गया था।[2] इससे यह पता चलता है कि इन स्थानो पर पुराने चटाई के चिह्नवाले बर्त्तनों का अन्त हो गया तथा इस क्षेत्र मे ईरानी अप्रवासी और उनके साथ चाक पर बने एव चित्रित बर्त्तनो का आगमन हुआ। किन्तु केची-बेग-आमरी मिट्टी के बर्त्तन मकरान एवं दक्षिणी बलूचिस्तान मे अब तक पाई गई किसी भी वस्तु से नही मिलते हैं। अतः अधिक संभावना इस बात की है कि इसके निर्माता सीस्तान के हेलमंड-क्षेत्र एव कांधार के रास्ते से होकर फराह से आए थे। बलूचिस्तान के भिन्न-भिन्न स्थानो मे पाए गए केची-बेग-आमरी बर्त्तनो के तथा ह्वीलर की उक्ति के तुलनात्मक स्तरीकरण के आधार पर "यह आधार वाक्य निश्चित करना पर्याप्त होगा कि अगादे के सारगन के समय में सिंधु-सभ्यता पूर्णरूपेण प्रस्फुटित थी··· तथा यह कि प्राप्त सामग्रियाँ ई० पू० २५०० से लेकर १५०० तक के काल की थी। इसका भविष्य मे मोहनजोदड़ो[3] की अपरिमित गहराइयों से प्राप्त होनेवाले प्रमाणों का कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा।" साथ ही, इसपर अस्थायी रूप से कालक्रम की योजना निर्धारित की जा सकती है।

इस कालक्रमिक बर्त्तन-उद्योग में उन लाल मिट्टी के बर्त्तनों का बहुत महत्त्व

१. स्टीन, आर्क्योलॉजिकल रिक० इन एन० डब्लू० इंडिया एंड एस० ई० ईरान, प्लेट IX सर ४

२. फेयर सर्विस, एक्सकेवेशन्स इन द क्वेटा वैली, पृ० २५६-२६१

३. ह्वीलर, दि इण्डस सिविलाइजेशन, पृ० ४
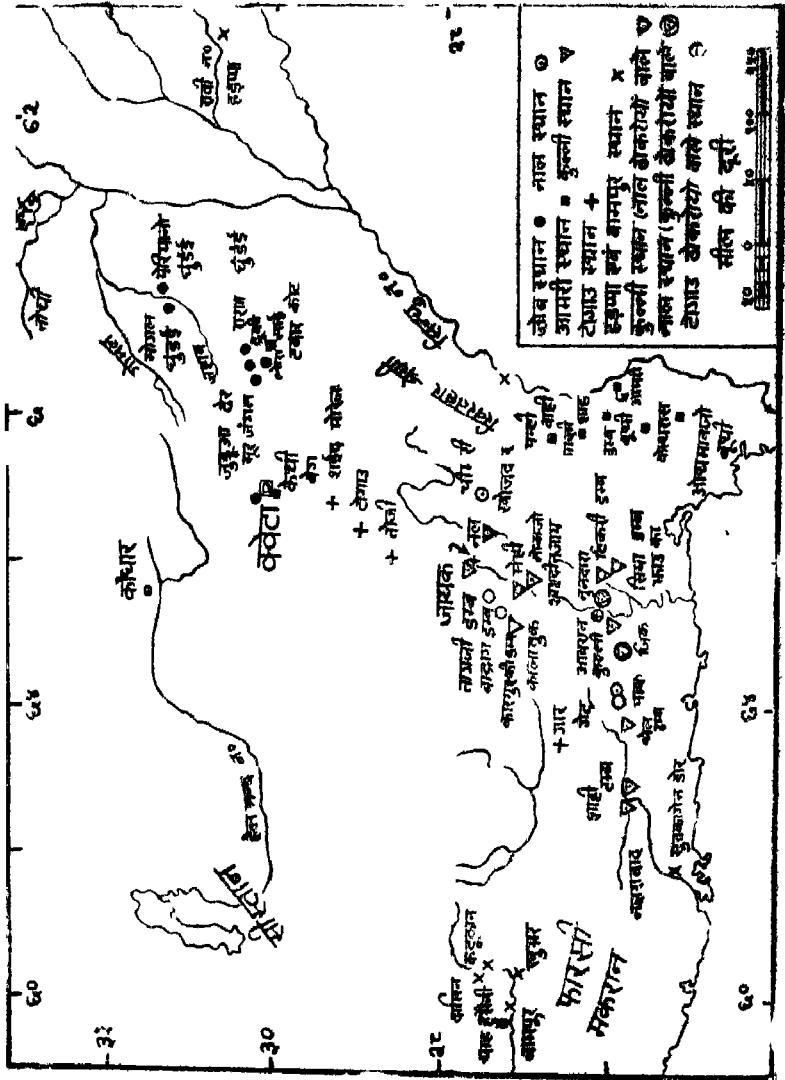
चित्र ५ बलूचिस्तान और सिंध में खेतिहर-किसानों का वितरण-क्षेत्र

है जिनपर काले रंग में पशुओं, मनुष्यों, बड़े सींगवाली बकरियों के परंपरागत सिरों के घेरों तथा अंकुश के नमूने चित्रित हैं। मध्यबलूचिस्तान में कलात नामक आधुनिक शहर के आस-पास के प्रदेशों से टोगाओ-बर्त्तनों का पश्चिम में दक्षिण में गर तक, उत्तर में क्वेटा के आसपास के स्थान तथा पूरब में सिंध[1] तक प्रचार हुआ। सौभाग्यवश टोगाओ-बर्त्तन केची-बेग-बर्त्तनो के स्तर मे तथा सिंध मे आमरी बर्त्तनों के साथ पाए गए हैं। चूँकि यह सपर्क सिंध के स्थानों पर प्राप्त नाल-किस्म के मिट्टी के बर्त्तनो के साथ पाया जाता है तथा चूँकि आमरी-बर्त्तन एव प्रारभिक नाल तथा मध्य एवं दक्षिणी बलूचिस्तान में नुंदारा-बर्त्तनो की सजावटों मे स्पष्ट सादृश्य दिखलाई पडता है इसलिए इन पक्तिबद्ध उद्योगों की सही तिथि निर्धारित की जा सकती है। इसका आधार यह है कि इनका सपर्क हडप्पा के उन ठीकरियों से स्थापित किया जा सकता है जिनकी तिथि निश्चित है। सिंध के दब बूट्टी, गाजीशाह एव पाडी-वाही नामक स्थानो पर प्राप्त टोगाओ-बर्त्तन मध्यआमरी एवं प्रारभिक नाल[2] बर्त्तनो के समकालीन है। ये क्वेटा के निकट तीन स्थानो पर बाद के केची-बेग बर्त्तनो के साथ पाए गए थे। यह सभव है कि यह दक्षिणबलूचिस्तान एव मकरान के प्रारभिक नाल-नुंदारा एव आमरी-सपर्कों का समकालीन है। जैसे कि प्रारभिक नाल बर्त्तन पाडीवाही मे प्रारभिक हडप्पा बर्त्तनो मे भी पाए जाते है किंतु टोगाओ बर्त्तन वैसे नही मिलते है। इस कारण हम टोगाओ, मध्यआमरी, प्रारभिक नाल-नुंदारा एव केची-बेग-बर्त्तनो का कालक्रम लगभग २६०० ई० पू० के आसपास निर्धारित कर सकते हैं। अगले परिच्छेद मे यह दिखलाया जाएगा कि यही मोहन-जोदडो के हडप्पानगर के स्थापित किए जाने की लगभग तिथि है।[3]

ईरान से कृषक-कुम्हारों के आगमन के बाद बलूचिस्तान की पहाड़ी घाटियो में मिट्टी के बर्त्तनो के अलग-अलग उद्योग आरभ हुए। इनमे से कुछ के साथ पर्याप्त मात्रा मे सपर्कित वस्तुएँ अथवा राजनीतिक महत्त्व दिखलाई देता है जिस कारण उन्हे सस्कृतियो के वर्ग मे रखा जा सकता है (चित्र ५)। नाल एव नुंदारा से आरभ करके इन सस्कृतियो अथवा उद्योगो का इनके तथा इनके आपस मे एक दूसरे के साथ सपर्कों के बारे मे जानने के लिए परीक्षण किया जा सकता है। इन अत्यंत

१. डी कार्डी, ऑन द बोर्डर्स ऑव पाकिस्तान

२. मजुमदार, एक्सप्लोरेशन्स इन् सिंध, प्लेट XXV, ११, XXVII, १५ और २४, XXVIII, ३२ और ३७

३. गार्डन, द पॉटरी इंडस्ट्रीज ऑव दि इंडो-इरानियन बोर्डर, एनसिएंट इंडिया, नं० १० और ११, पृ० १६३-१६७

ही विशिष्ट एव स्पष्टत: समरूपी बर्त्तनों के बारे में हम बहुत कम जानते हैं। आमरी एव बहुत-से नुदारा अभिप्रायों के साथ इनका सपर्क सरल है तथा अधिक सरल सजावटों से इसका पता चलता है जैसे कि नाल बर्त्तनो के मुख्य नमूने के छोरों पर पट्टियो का नमूना। यह सभव है कि सीढीदार नमूने, सकेंद्रीय वर्गो, एक पखे की तरह पीपल के पत्ते और विशेषरूप से बाद की स्थितियो मे, पशुओ एव मछलियों के क्षेत्रोवाली यह व्यक्तिगत शैली बहुत समय तक चलती रही। यद्यपि अध्ययन के लिए बहुत-से नाल बत्तन, जिनमे अधिकाश पूर्ववत है, प्राप्त है, पर इनके सास्कृतिक क्रम के बारे में हमलोग आशा के विपरीत बहुत कम जानते है। (प्लेट VI अ एव ब)

इन उद्योगो का नाम नाल के सोहर दम्ब (जिसकी खुदाई १९२५ ई०[१] मे की गई थी) तथा नुंदारा के सियाह दब के नाम पर पडा है। नाल के स्थान के बारे में क्या मालूम है तथा उनसे क्या निष्कर्ष निकाला जा सकता है? इस बडे टीले के, जो लम्बाई मे ६०० फुट से अधिक एव इसकी चोटी ४० फुट ऊँची है, किनारे पर एक त्रिभुजाकार क्षेत्र की खुदाई की गई जिसका क्षेत्रफल ३०० वर्गफुट तथा स्वाभाविक भूमि का सेक्शन १४ फुट है। यहाँ भूमि की सतह पर एक ऐसे अवस्थापन का पता चला जो सबसे पहले का था तथा इसके बाद उस खुदाई किए गए सीमित स्थान पर कम-से-कम एक और दीर्घकालीन अवस्थापन का स्तर मिला जिसमे काली धब्बेदार मिट्टी की गहरी पट्टी थी जो सम्पूर्ण सेक्शन मे दिखलाई पड रही थी। इस क्षेत्र मे बहुत-सी कब्रें मिली जिनमे नाल-बर्त्तन भेंट के रूप मे डाले गए थे। ये कब्रें काफी गहरी खोदी गई, जहाँ सबसे पहले की बस्तियो की दीवारो के अवशेष प्राप्त हुए। जहाँ तक खुदाई के इस मुख्य क्षेत्र का सबध है, वहाँ खुदाई किए गए भवनो की योजना, कब्रो की शैली तथा उन कब्रो मे प्राप्त बर्त्तनो के अतिरिक्त और कुछ भी पता नही है। प्राचीनतम अवस्थापनो के अवशेषो के साथ और कोई भी वस्तु नही पाई गई है।

टीले की चोटी पर खुदाई करने पर छोटे कमरो की शृखला मिली है। यद्यपि यह पता लगाना कठिन है कि आरभ मे उस चोटी पर कौन-कौन-सी चीजें थी, किंतु इस बात का चिह्न मिलता है कि अंतिम प्रचड अग्निदाह के कारण (जिससे चोटी की मिट्टी लाल हो गई) जो मकान नष्ट हो गया वह खपडापोश था तथा उसका मेड स्तभ धरन पर आश्रित शाहस्तम्भो पर आधारित था। इसमे रहनेवाले व्यक्ति जोब के पेरियानो III के लोग थे। समतल स्तर से ऊपर १८ से लेकर २३ फुट के बीच उस स्थान पर खुदाई हुई थी जहाँ पर कमरे की दीवार का पता चला था। यह भवन

१. हारग्रीव्स, एक्सकेवेशन्स इन् बलूचिस्तान

स्पष्टतः प्रारंभिक अवस्थापन के बाद का तथा पेरियानो III की सबसे ऊपरी बस्ती के पहले का मालूम पडता है। इस कमरे में एक ऐसा नमूनेवाला बर्त्तन मिला था जिसके समान बर्त्तन कुल्ली तथा पांडीवाही में (जहाँ कुल्ली-प्रभाव प्रबल है), ही मिलते हैं। इसके प्रकार की एक दूसरी ठीकरी सोहर दंब में किसी स्थान पर मिली थी, किंतु इसका पुरातत्त्व-संबंधी कोई तत्त्व नहीं मिला है।[१]

क्षेत्र अ की मुख्य खुदाईवाले भाग में तीन ठीकरियाँ पाई गई हैं जिनपर पीपल के पत्ते की सजावट है जो नाल-बर्त्तनो के एक पंखेवाले पीपल के पत्तों की अपेक्षा कुल्ली-बर्त्तनों से अधिक मिलती-जुलती है। पकी हुई मिट्टी के साँडों की मूर्तियाँ भी मिली हैं। किंतु चूँकि ये कुल्ली की ही सस्कृति के लक्षण हैं तथा ये नु दारा या किन्ही प्रारूपिक नाल-नु दारा स्थानो पर नही पाए जाते हैं, इससे यह निश्चय हो जाता है कि सोहर दब मुख्यत' एक ऐसा स्थान है जहाँ कुल्ली-सस्कृति के अवस्थापनो के क्रम हैं जिनमे वीरान हो जाने के बाद बहुत-से कब्रें खोदी गई थी और उनमे तथाकथित नाल-सस्कृति के बर्त्तन भी थे। किंतु यह कहना आवश्यक है कि जब स्टीन ने नाल के स्थानो को देखा था उसका यह मत था कि चूँकि संपूर्ण टीले पर नाल बर्त्तन पर्याप्त सख्या मे वर्त्तमान थे यह "इस बात का स्पष्ट प्रमाण था कि इसका प्रयोग केवल मृतक-सस्कार के लिए ही नही हुआ करता था बल्कि यह विस्तृत रूप से प्रयुक्त होता था।" किंतु साथ ही उसने 'आॅर्क्योलाॅजिकल टूअर इन गेड्रोसिया' नामक अपनी पुस्तक के प्लेट XXXIII में नाल १३,१४,१८ एव २० मे जिन ठीकरियो के चित्र दिए है वे सब-के-सब कुल्ली-सस्कृति के बर्त्तनो के है। कब्रो मे भारी सख्या मे डाले जानेवाले बर्त्तन आसानी से मौसम तथा अन्य प्रभावो के कारण टुकडे-टुकड़े होकर बिखर गए होगे।

अत मे, पेरियानो III के जोब-निवासियो के अत्यधिक प्रसार-काल मे टीले के उच्चतम स्थान पर इनलोगो की छोटी काॅलोनी थी। यह लगभग १८०० ई० पू० के आक्रमण के समय जलकर नष्ट हो गयी। अत' इस बात की अधिक सभावना मालूम पडती है कि कुल्ली-अवस्थापन का, जिसका आरभ ई० पू० २५०० के लगभग हुआ होगा, २१५० ई० पू० के लगभग अंत हो गया। उसके शीघ्र बाद नालनिवासियो ने उस टीले को कब्रिस्तान के रूप मे व्यवहार करना आरभ कर दिया। उसके १५० वर्ष बाद जोबलोगो के आगमन के बाद या तो लोगो ने उस स्थान को

१ हारग्रीव्स, एक्सकेवेशन्स इन् बलूचिस्तान, प्लेट XXI, १५; स्टीन, आॅर्क्योलाॅजिकल टूअर इन गेड्रोसिया, प्लेट XXI, कुल० I.V.I; देव और मैक्काउन, फारदर एक्सप्लोरेशन्स इन् सिंध, प्लेट VII, ७४

कब्रिस्तान के रूप मे व्यवहार करना छोड दिया या उस घटना के कुछ पहले अपने-आप ऐसा किया जाना बन्द हो गया।

नुंदारा के सिया दम्ब मे बहुत-से मकानो की रूपरेखा दिखलाई पडी। इनके ध्वशावशेष टीले की ऊपरी सतह के बहुत बडे भाग मे फैले थे। कहीं-कहीं तो दस फुट ऊँची पत्थर की दीवारें जैसी-की-तैसी खडी थी। स्टीन ने कई कमरो को साफ किया था, किंतु किसी सेक्शन की खुदाई नही की। इस बात के आधार पर कि उसे नुंदारा-शैली के बर्त्तनो के अतिरिक्त कुछ भी नही मिला था तथा नदी की तंग घाटियो मे लाल बर्त्तन पर काले चिह्न देखकर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा था कि ये सब समकालीन हैं तथा नुदारा-बर्त्तन बहुत लम्बे अरसे तक बनाए जाते रहे। स्टीन के द्वारा चित्रित काले रग की साधारण सजावटवाली लाल मिट्टी की यह ठीकरी टोगाओ बर्त्तन है तथा यहाँ और बलूच मकरान के अन्य स्थानो पर इस उद्योग के वर्त्तमान रहने के कारण काल-निर्धारण के लिए अच्छी सामग्री मिल सकती है यदि इनका अधिकतम अवधिवाली नाल एव कुल्ली-सस्कृतियो के साथ सबध निर्धारित किया जा सके। अत यह स्पष्ट है कि बहुत-से सग्रहालयो मे अविकल नाल-बर्त्तनो के पर्याप्त सख्या मे प्राप्त रहने के बावजूद नाल-नुदारा-सस्कृति के सबध मे हमारा ज्ञान अत्यत ही नगण्य है। वास्तव मे नाल-नुदारा-सस्कृति को स्वतत्र रूप से एक ठोस सस्कृति के रूप मे मानने के लिए बहुत कम तथ्य प्राप्त है।

जोब मे राणा गुडाई नामक स्थान पर प्राचीनतम हस्तनिर्मित बर्त्तनो के शीघ्र बाद के एक बर्त्तन का उद्योग मिला है जो एक बडी पहेली बन गया है। यह एक अत्यत सुदर पाडु बर्त्तन है जिसमे बहुतो पर ककुद-साँडो के मेखला-चिह्न अथवा सर्पिल सीगवाले काले हिरणो के चित्र अकित है। इस सबध मे मुख्य कठिनाई यह है कि जहाँ कि इस शैली के बर्त्तन निश्चित रूप से केची-बेग-आमरी-शैली के दुरगे (जो इसके ऊपर स्तरीकृत पाए गए है) बर्त्तनो से पहले के है, ककुद-साँडो अथवा काले हिरणो की उपस्थिति (दोनो मे कोई भी अपने असली निवासस्थान बलूच-पठार पर नही पाए गए हैं) से इस बात का प्रमाण मिलता है कि भारत की समतल भूमि के साथ एक ऐसे आप्रवासियो के दल का सम्पर्क हुआ जिसके बर्त्तनों की सजावट-शैली ईरान के हिस्सार एव सियाल्क की शैली पर आधारित है। (प्लेट V, अ)

इस स्थिति मे केवल यही कहा जा सकता है कि लोरालाई III के दुरगे पानपात्र बीकरों के प्रचार के पहले कुछ समय के लिए कुछ प्रवासी आए जो अपने साथ इस खास प्रणाली से बर्त्तन की सजावट करनेवाले कुम्हार लेते आए थे। रॉस ने यह दिखलाया है कि उनके लोरालाई I के पूर्वगामी बहुत-से घरेलू पशुओ से परिचित थे जिनमे बैल भी शामिल है। इसलिए यह कल्पना करना विवेकसगत होगा कि यह
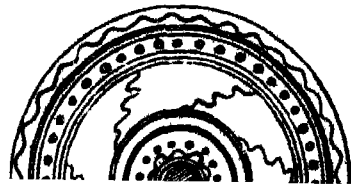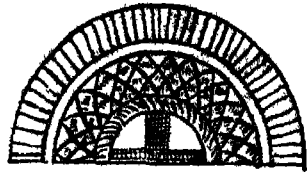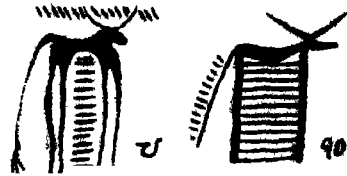
चित्र ६. लोरालाई तथा पेरियानो-बर्तन के चित्रांकित अलंकरण

पशु पठार पर रखा गया था तथा इसके उपयोग तथा सभवत: इसकी पूजा को नए आनेवाले लोगो ने अपना लिया। यह साँडवाला बर्त्तन, जिसे हमलोग लोरालाई II का नाम देंगे, बहुत कम दिनो तक रहा तथा इसका प्रचार बहुत कम हुआ। इसका प्रचार केवल लोरालाई के इर्द-गिर्द के कुछ इलाको तक ही सीमित रहा।[1] इस किस्म के अधिकांश बर्त्तन पाडु शैली के तथा छिछले कटोरे की तरह हैं जिनके अन्दर की ओर साँड तथा अन्य मुख्य सजावटें बनी हैं। इनके व्यास २६ से लेकर ४० सेंटीमीटर तक है। विरचन भी धीरे-धीरे पतला से मोटा और फिर भद्दा बन गया। यद्यपि यह खास किस्म का बर्त्तन अल्पकालीन न रहा फिर भी पेरियानो III के आगमन-काल तक सभी जोब,स्थानो पर साँड की सजावटवाली विचार-धारा कायम रही। किंतु साँड अधिक ऊँचा तथा अधिक निरूढ होता गया। (चित्र ६)

यद्यपि केची-बेग, आमरी, लोरालाई III, एव पेरियानो I के दुरगे बर्त्तन लोरालाई II के साँडो के आकृतिवाले बर्त्तनो की तरह देखने मे चित्ता-कर्षक नही हैं, फिर भी ये उनसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। इनका लगभग २९०० से लेकर २६५० ई० पू० तक काफी प्रचार हुआ। इस समय तक ये बर्त्तन इन सारे इलाको तक पहुँच गए थे। इन बर्त्तनो मे सामान्यत· सर्वाधिक प्रयुक्त शैली सीधी लकीरवाले बीकरो की है और जोब मे ऐसे गोलिकाकार कटोरे मिलते है जिनके कधो के चारो ओर के कोर ऊँचे उठें हैं जिनमे डोरी डालने के लिए छेद बनाए गए है तथा जिनके पादपीठ आधार नीचे है। इन बर्त्तनो पर लाल, गुलाबी, पाडु, भूरे आदि रगो की पृष्ठभूमि मे काले एव चमकीले लाले की दुरगी सजावट बनो है। इसके बाद के लाल पर काले रग की सजावटवाले लोरालाई IV बर्त्तनो मे हम पाते है कि कधेवाला कोर अधिक स्पष्ट हो गया है। मोगल गुडाई के स्थान पर लोरालाई इलाकोवाले साधारण दुरगे बर्त्तन पाए जाते हैं। किंतु बगलवाले पेरियानो गुडाई टीले पर बहुत निम्नकोटि के दुरगे बर्त्तन पाए गए हैं जिनपर मंद लाल पर्ची पर काला तथा चमकीला लाल रग की सजावट है। इसे पेरियानो I के वर्ग में रखा जा सकता है क्योकि यह वह प्राचीनतम बर्त्तन मालूम पडता है जो इस इलाके से जाकर फोर्ट सैडेमैन के आसपास जोब के उत्तर-पूर्वी भाग मे प्रचलित हुआ था। इस प्रकार के बर्त्तनो के धीरे-धीरे फैलने के कारण यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आमरी एव लोरालाई III वस्तुत. केची-बेग के बाद के है तथा इनका आरम्भ २८०० से लेकर २७५० ई० पू० के बीच हुआ होगा।

यह मालूम पड़ेगा कि यहाँ जो उद्योग सबसे अधिक प्रारूपिक हैं तथा जिनका

१. रॉस, ए चेल्कोलिथिक साइट इन् एन० बलूचिस्तान, पृ० ३००-३०४

उद्गम शायद पेरियानो घुंडाई एवं मोगल गुंडाई थे, पेरियानो के नाम से प्रसिद्ध हैं। जो संबंधित स्थानों के समूह— राणा घुंडाई, सुरजंगल, मोगल किला, ड्वीन माउंड्स आदि—से निकले हैं तथा लोरालाई के इर्द-गिर्द उनके नाम उन स्थानो के नाम पर पड़े हैं। इस तरीके से उत्तर-पश्चिमी जोब के प्रारूपिक बर्त्तनों के व्यक्तिगत एकत्व एव इनके प्रचार का पता चलता है। साथ ही, इससे 'सुरजगल' नाम का पुनः प्रचार का पता चलता है। 'सुरजगल', 'राणा गुंडाई' तथा 'जोब-बर्त्तन'—नामो के कारण काफी गड़बड़ी पैदा हो जाती है।

इन दुरंगे बर्त्तनो का प्रचार समतल भूमि मे सबसे पहले उन खेतीहर-किसानो ने किया जो सिंधु-घाटी मे आकर बसे थे। इनके गाँव सिंध में दूर-दूर तक बिखरे पड़े थे। इन किसानो के द्वारा निर्मित बर्त्तनो को सुविधा के लिए *आमरी-बर्त्तन* कहा जाता है। कारण, यद्यपि वास्तव में इनमे विभिन्न तरीको के नमूनो का उपयोग किया गया है, किंतु देश, काल एव रहन-सहन के तरीके (जिसके अन्तर्गत इस प्रकार के बर्त्तन बने थे) की सामान्य सास्कृतिक स्थिति को, जो हड़प्पावासियो से बिल्कुल भिन्न है, एक नाम के अन्तर्गत रखा जा सकता है। आमरी के बर्त्तनों की सजावट स्पष्टत नुंदारा की सजावट से मिलती-जुलती है। दोनो मे सिग्मा, बर्फी एव त्रिअरियो की पट्टियाँ तथा शतरज के नमूनेवाले दिल्हे पाए जाते है। वास्तव मे इन्ही पट्टीवाले *अभिप्राय एवं नीचे नोंकवाले त्रिभुज तथा मेटोप मे* बिंदु-से-बिंदु मिलनेवाले त्रिभुजोवाले इन सभी बर्त्तनो से सबधित है, जिन्हे दृढ़ता से आमरी-वर्ग मे रखा जा सकता है। सिंध मे गाजी शाह एव पाँडीवाही के स्थानो पर हम ऐसे नमूने पाते हैं जिनसे प्रबल कुल्ली-प्रभाव का सकेत मिलता है। इसकी चर्चा उस समय की जाएगी जब हम उस सस्कृति पर विचार करेंगे।

केची-बेग-आमरी-बर्त्तनो के इस प्रचार से अधिकाश क्षेत्रो मे खेतिहर-किसानो के प्रारंभिक आगमन का पता चलता है और अब यह स्पष्ट हो गया है कि क्वेटा-बर्त्तनवर्ग के बर्त्तन केची-बेग एवं टोगाओ-बर्त्तनो के बाद आए और उन्हे भी प्रारंभिक एव उत्तरकालीन वर्ग मे बाँटा जा सकता है। यद्यपि क्वेटा-बर्त्तनो एव दक्षिण-पश्चिमी ईरान में फार्स स्थानो के पात्रो के बीच उचित ही तुलना की गई है, किंतु अधिक विस्तृत 'ब्लॉकवाले' नमूने के समूहो का एक क्षण के लिए भी फार्स मे फैली ठीकरियों-से बोध नही हो सकता है, क्योकि सामान्य पहलुओ में भी वे एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न है।[1]

बर्त्तनो पर अधिक विस्तृत नमूनो के आगमन का वर्णन करने की अपेक्षा

१. पीगॉट, ए न्यू प्रीहिस्टोरिक सेरामिक फ्रॉम बलूचिस्तान

चित्र के द्वारा आसानी से बतलाया जा सकता है। निम्नलिखित प्रकार की सजावट अधिक प्रचलित हैं—पतली लकीरोवाला त्रिभरीय नमूने, अधिक स्पष्ट टेढ़ी-मेढ़ी पट्टियाँ जिनके बीच मे या तो एक चौडी धारी है और उसके दोनों ओर पतली धारियाँ हैं अथवा दो चौडी धारियाँ है और कुछ पतली धारियाँ भी हैं; बिंदु-से बिंदु मिले तथा नीचे की ओर शीर्ष-बिंदुवाले त्रिभुज तथा एक ढेवदार पट्टी जो कुल्ली-नमूने से भिन्न है तथा उसमे कई खड़ी लकीरें हैं। इनके अतिरिक्त, और भी विस्तृत ब्लाकदार नमूने है जिनकी कगरदार अथवा कटीली रूपरेखा तथा सॉड़ों की आकृतियाँ अधिक स्पष्ट हैं। इसके अतिरिक्त, बहुत सारे ऐसे बर्त्तन हैं जिनपर सजावट के रूप मे उनके चारो ओर कुछ सीधी लकीरें बनी है तथा और भी अधिक सादे बर्त्तन मिले हैं।

क्वेटा-सस्कृति के साथ उपयोगी गल्कल-ब्लेड सबद्ध है जिन्हे टैन चर्ट का बतलाया जाता है जिनके बडे आकार को देखकर यह कहा जा सकता है कि चर्टी चकमकपत्थर सिंध मे रोहरी से आए होगे। अवतल चक्की के टुकडे तथा चद पत्थर के हथौड़े ही पत्थरो के उन सपूर्ण हथियारो मे है जो मुख्यत. दब सदात मे पाए गए है। देवियो की मूर्त्तियाँ भी इस स्थान पर पाई गई हैं और जहाँ सिर पाए गए हैं वे सब जोब-किस्म की है।[1] अभी इन मूर्त्तियो की सही पहचान नही की जा सकी है, क्योकि क्वेटा-सस्कृति की कही जानेवाली मूर्त्तियो मे एक का भी सिर मौजूद नही है और बाद की सदात-सस्कृति की मूर्त्तियो के पैर नही हैं।

केंद्रीय एव दक्षिणी बलूचिस्तान की सबसे महत्त्वपूर्ण सस्कृति वह है जिसकी मुख्य बस्तियाँ कुल्ली एव मेही मे है तथा जो प्राय: कुल्ली-सस्कृति कही जाती है। अभी बलूच-पहाडियो के इन खेतिहर-किसानो की यही एक सस्कृति है जिससे हमे सास्कृतिक पदार्थ पर्याप्त परिमाण एव किस्मो मे प्राप्त हुए है जिनके आधार पर हम यह जान सकते है कि इस सस्कृति के लोग कैसे भौतिक वातावरण मे रहते थे। इन स्थानो पर काफी खुदाई की गई तथा यद्यपि पूरी खुदाई नही की जा सकी, किंतु कुल्ली मे भारी परिमाण मे बर्त्तन निकले हैं। ये बाद के दो अपवादो को छोडकर सपूर्णत प्रारूपिक कुल्ली-बर्त्तन थे। इनमे एक ऐसी ठीकरी प्राप्त हुई जो बहुत महत्त्व रखती है क्योकि इसपर वही विचित्र नमूना बना है जो नाल मे सोहर दब के आधे रास्ते पर पाए गए बर्त्तन पर था। सॉडो के ६६ तथा मातृदेवी की ५

१. स्टीन, आर्कियोलॉजिकल टूअर इन वजीरिस्तान एंड बलूचिस्तान, प्लेट IX, XII एवं XVI; पीगॉट, प्रीहिस्टोरिक इंडिया, चित्र ११; गॉर्डन, अर्ली इंडियन टेराकोटास, प्लेट VIII ८; फेयरसर्विस, एक्सकेवेशन्स इन द क्वेटा वैली, चित्र १६, डो-एफ०

मूर्तियाँ पाई गई हैं, किंतु बहुत गहराई में खोदने पर भी कुल्ली को छोड़कर और कहीं कोई धातु-पदार्थ नहीं मिला है। वहाँ ताँबे की एक फलेदार कील प्राप्त हुई है।

मेही का टीला विशालकाय है। इसकी लंबाई ३६० गज तथा चौड़ाई ३३० गज है किंतु स्टीन के द्वारा खुदाई किए जाने पर स्तरीकरण का कोई प्रमाण नहीं मिला है। ऊपरी सतह ५र नु दारा-बर्त्तनों की दो ठीकरियाँ पाई गई हैं। इनके अतिरिक्त एक टुकड़ा मिला है जिसपर ऐसी सजावट है जो जोब के मोगल गु डाई-शैली से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। चटाई का चिह्नवाला एक बर्त्तन भी मिला है। खुदाई से प्राप्त ये सारे बर्त्तन प्रारूपिक मेही-किस्म के मालूम पडते हैं। कुल्ली तथा मेही-संस्कृतिवाले स्थानों पर से प्राप्त वस्तुओ को देखकर हम यह कह सकते हैं कि ये कुल्ली-सस्कृति के है। डोरी से बाँधे गए साँड अथवा बिल्ली वृक्षों से अलग हैं। वृक्षो की फुनगियाँ नुकीली हैं तथा इनके बीच के रिक्त स्थानो मे बड़े सीघवाली बकरियो (आइबेक्स) की आकृतियाँ, कघे के नमूने, कोनेदार सिग्मा-आकृति, धब्बेदार वृत्त आदि की मुख्य सजावटें है। इनमे ढेवदार अथवा टेढी-मेढी पट्टियो तथा छोटी बड़े सीघवाली बकरियों (आइबेक्सो) के क्षेत्र है अथवा इनके चारो ओर सीधी एव सरल लकीरें एक दूसरे के सनिकट बनी है। ये लकीरें अधिकाशत. सजावट के ऊपर खिची है। दो स्थानो पर भिन्न-भिन्न प्रकार की सजावटें पाई गई हैं। किंतु कही भी पाए जाने पर कुल्ली-बर्त्तन आसानी से पहचाने जा सकते है। (प्लेट V, डी)

कुल्ली मे धातु की बनी एक ही वस्तु— ताँबे की एक कील पाई गई है, किंतु मेही मे बहुत सारी चीजे पाई गई है। इससे मालूम पडता है कि उनका धातुविज्ञान हडप्पावालो के समान था। यहाँ की बहुत सारी कब्रो मे ताँबे एव काँसे की वस्तुएँ पाई गई है—कीलें, चूडियाँ, ताँबे की एक पहुँची, एक छोटा कटोरा तथा दो आईने। इनमे से एक आईने मे एक हत्था लगा है जिसका आकार मनुष्य के धड के समान है। इसकी बाहे देवी की मूर्त्तियो के समान है। यह इस प्रकार का बना है जिससे इसमे प्रतिबिंबित होनेवाली आकृति उस मूर्त्ति का सिर बन जाती है। ये चीजें बस्तियोवाले इलाके से बाहर एक कब्र मे इस प्रकार पाई गई हैं कि कुल्ली-सस्कृति की अन्तिम स्थिति के रूप का प्रतिनिधि कही जा सकती हैं। अतः इनकी तिथि ई० पू० २००० या सभवतः उसके बाद निश्चित की जा सकती है।[1] कोई ऐसा प्रबल कारण नही मिलता है जिससे कि हम नाल के सोहर दब में पाए गए ताँबे के दो ढेरो को, जिनमे पाँच कुल्हाड़ियाँ, चार छेनियाँ, एक आरी तथा दो छूरियाँ मिली हैं, नाल-नु दारा-सस्कृति का कह सकते है। सच तो यह है ये ढेर

१. पीगॉट, प्रीहिस्टोरिक इंडिया, पृ० ६८-६६, ११२

टीलों के आबादीवाले अवस्थापनो के है। इनका कब्रो के साथ कोई सीधा सपर्क नहीं है। अत यद्यपि एक कब्र के साथ एक कुल्हाडी मिली थी, किंतु इसके बावजूद हम यह कहेंगे कि ये औजार कुल्ली-सस्कृति के है।

इसमे सदेह नही है कि ये कृषक लघुपाषाणिक किस्म के पत्थर के औजार इस्तेमाल करते थे। इनके उदाहरण दक्षिण-पश्चिम मे स्थित शाही टप के उत्तर-पूरब मे पेरियानो गु डाई नामक स्थान पर प्राप्त हुए है। भारत मे तथा इसके आस-पास चारो ओर इस प्रकार के प्रस्तर-फलक व्यवहार किए जाते थे। आगे चलकर प्रस्तर का स्थान ताँबे तथा और बाद मे लोहे ने ले लिया। जहाँ तक हमे जानकारी उपलब्ध है, बलूचिस्तान की सीमान्त जातियो के लोग हडप्पा-किस्म के चकमक पत्थर के लबे चर्टी फलक नही बनाते थे। इसका कारण यह था कि इसके लिए उपयुक्त सामग्री नही मिलती थी। सपूर्ण सामग्री सिंध मे रोहरी-सक्कर-क्षेत्र से उपलब्ध होती थी। किंतु इस प्रकार के फलक पेरियानो गु डाई मे पाए गए है जहाँ कि वे शायद डाबरकोट की व्यापारिक चौकी होकर सीधे सिंध से आए। यह जानना दिलचस्पी का विषय होगा कि दश्त नदी के किनारे सुक्तागेन व्यापारिक चौकी पर पाए गए फलक रोहरी के चमकीले पत्थर के बने है अथवा नही। नाल मे पत्थर की दो घर्षित एव परिष्कृत कुल्हाडियाँ ऐसी स्थिति मे पाई गई है जिनसे हमे उनकी तिथि अथवा सस्कृति का कुछ भी पता नही चलता। ऐसी कुल्हाडियाँ उत्तर-पश्चिम के खेती करनेवाली किसी भी कृषक-सस्कृति की वस्तुओ की सतह मे नही प्राप्त हुई है।

यद्यपि स्तरविज्ञान से सबधित प्रमाण बहुत कम मिले है, फिर भी एक प्रकार का कालक्रमिक सकेत मिला है जिसके आधार पर कुल्ली-सस्कृति तथा इसके पडोसियो के सबध मे एक अस्थायी तिथि निर्धारित करने मे सहायता मिलती है। एक ओर हम यह धारणा कर सकते है कि केची-बेग-आमरी-बर्त्तन २८०० ई० पू० के लगभग प्रकाश मे आए तथा २६०० ई० पू० के लगभग मोहनजोदडो की स्थापना हुई। दूसरी ओर, हम यह धारणा स्थापित कर सकते है कि १८०० ई० पू० के लगभग आर्यों के नेतृत्व मे आक्रमणकारी सीमात प्रदेशो मे आए तथा इसी समय शाही टप शवाधारो का आरभ हुआ। इस तिथि के आधार पर हम यह कह सकते है कि नाल का पेरियानो III अवस्थापन २००० ई० पू० के आरभ हुआ तथा १७५० ई० पू० मे इनका विनाश हुआ। इस बात को ध्यान मे रखकर कि टीले पर जब दूसरे लोगों का अधिकार था उस समय नाल-कब्रगाहो का व्यवहार नही किया गया होगा, हम उसकी तिथि ई० पू० २१५० तथा २००० के बीच मे निर्धारित कर सकते है जबकि कुल्ली-अवस्थापन हटाया गया था। नाल-कब्रो मे पाए गए आधुनिक बर्त्तनो के नमूने थे।

इन बर्त्तनो पर पंखवाले शेर एव राक्षसों की आकृतियाँ अंकित थी । ये बर्त्तन लाल, नीले, हरे आदि बहुरंगे किस्म के थे । इन सबको देखकर यही तिथि निर्धारित की जा सकती है । (प्लेट VI ए एवं बी)

उस युग के प्रारंभिक भाग मे और दूसरे सकेत भी मिलते हैं । सिंध में गाजीशाह नामक स्थान पर प्रबल कुल्ली-प्रभाव का एक प्रमाण मिलता है । कुछ ऐसे पशु मिले है जो कुल्ली-सस्कृति के पशुओ के समान है तथा वृक्षो की फुनगी कुल्ली-सस्कृति की परपरा मे तीर के समान है । इस प्रकार सजी हुई ठीकरियाँ आमरी मे आधार-स्तर के नीचे—३२·३ फुट से लेकर—२५·७ फुट तक मिली है । ये प्रारभिक हड़प्पा-शैलीवाले फैले हुए पीपल के वृक्षों के साथ—२८·८ फुट तथा आगे चलकर सामान्य शैलीवाली ठीकरियो के साथ—२७·२ फुट पर भी मिली है ।[1] इससे इस क्षेत्र के लगभग २५०० से लेकर २३०० ई० पू० तक कुल्ली-प्रभाव के कायम रहने का सकेत मिलता है । इसके अतिरिक्त, सिंध में कुल्ली-सस्कृति के अन्य चिह्न भी मिले है । मोहेंजोदडो मे और बाद के समय की एक बहुत ही दिलचस्प ठीकरी मिली है जिसपर एक विचित्र उपांत पैरवाले पशु का चित्र अकित है । ऐसा चित्र बजदाद कलात के कुल्ली-ठीकरी पर भी पाया जाता है । इस पशु के पेट के नीचे एक वृक्ष का चिह्न अंकित है । इस प्रकार अकित वृक्ष मेही-टुकडे पर मिलते हैं ।[2]

कालक्रम-निर्धारण करनेवाले अन्य सबूत प्राप्त करने के लिए हम उस खड (सेक्शन) का भी परीक्षण कर सकते है जिसे स्टीन ने पारसी मकरान मे बामपुर नामक स्थान पर खोदा था । यहाँ समय निर्धारण करनेवाले पाए गए पदार्थों मे वे भूरे रगवाले बर्त्तन बहुत महत्त्वपूर्ण है जिनपर चटाईदार दीवारो तथा दरवाजो के नमूने अंकित है । यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि ये बर्त्तन पत्थर के गढ़े गए उन कुटीराकार बर्त्तनो के पहचानने योग्य अनुकरण है जिनका प्रारभिक वाशिक युग के अतिम चरण के लगभग इराक मे काफी प्रचार था तथा जहाँ ये अभी भी सूसा से लेकर मारी तक के इलाको में विस्तृत रूप से पाए जा सकते है । इन कुटीराकार बर्त्तनो पर मेसोपोटामियाँ की झोपड़ियों की चटाईदार दीवार एव सरकंडों के गट्ठरवाले दरवाजों के अत्यंत ही स्वाभाविक चित्र उत्कीर्ण किए गए है । ये चिह्न आसानी से पहचाने जा सकते है तथा मोहेंजोदड़ों की खुदाई के समय

१. मजुमदार, एक्सप्लोरेशन्स इन् सिंध, पृ० ६५-१०१
२. देव एंड मैक्काउन, फरदर एक्सप्लोरेशन्स इन सिंध, VI, ७० एंड VII, ७६

चित्र ७. बलूचिस्तान और सिंध की आदि संस्कृति की कालक्रमिक तालिका

निम्नतम स्तर पर मिलते ही इसका एक नमूना तुरत पहचान लिया गया था। निःसंदेह यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण वस्तु थी तथा इसकी तिथि ई० पू० लगभग २५०० —२४५० तक निर्धारित की जा सकती है। इसी प्रकार के एक टुकड़े के विषय में जो दश्त नदी के किनारे सुक्तगेन दोर नामक स्थान पर नहीं तो इसके आस-पास पाया गया था। यह कहा जाता है कि यह उस स्थान पर निर्मित नही किया गया था बल्कि सुमेर से व्यापार के सिलसिले मे लाया गया था तथा हडप्पा के व्यापारी-चौकी पर किसी के अधिकार मे था।

बामपुर के उत्कीर्ण बर्तनो पर न केवल चटाईदार दीवार एव दरवाजे ही अंकित थे वरन् उनपर अदाब मे पाए गए बर्त्तनो के समान दरवाजो के नमूने भी बने थे। अत. इनकी तिथि अधिक २३०० ई० पू० से बाद निश्चित नही की जा सकती है। इसी समय के लगभग सुमेर एव सिंधु-घाटी के बीच सास्कृतिक सबंध अत्यंत घनिष्ठ थे। अत. पीगॉट का यह सुझाव स्वीकार नही किया जा सकता है कि इन बर्त्तनो का उद्गम-स्थान बलूच मकरान था।[१] मेही तथा कुल्ली-संस्कृतिवाले अन्य स्थानो पर पाए गए पत्थर के उत्कीर्ण बर्त्तन मौलिक एव स्वाभामिक कुटीराकार बर्त्तनो के तीसरे दर्जे के अनुकरणमात्र है। दरवाजो का कोई चिह्न नही रह गया है, तथा चटाईदार दीवारो के भी केवल अस्पष्ट चिह्न रह गए हैं। अतः इस स्वाभाविक निष्कर्ष का कि ये कुटीराकार बर्त्तनो के बाद के प्रतिनिधि है, इस बात से पुष्टिकरण हो जाता है कि ठीक इसी प्रकार का बर्त्तन मोहेजोदडो मे ऊपरी सतह पर पाया गया था। इसकी तिथि की ई० पू० २००० से पहले की होने की सभावना नही है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कुल्ली-सस्कृति के उत्कीर्ण बर्त्तनो की तिथि २१०० ई० पू० तक आसानी से निर्धारित की जा सकती है। (चित्र ७)

बामपुर के कुटीराकार बर्तन स्टीन के खड मे +३ एव +४ फुटवाली सतह से निकले है तथा ये बामपुर-खुरब के चित्रित बर्त्तनो के समकालीन है। ये लाल, गुलाबी, भूरे तथा पाडु बर्तन थे जिनपर निरूढ आइबेक्स, उपात वृक्ष एव कंबुकीय त्रिभुज के काले रग के नमूने एव नीचे शीर्षवाले त्रिभुजो के क्षेत्र एव कुल्ली-वर्त्तनो के समान ढेवदार पट्टी के नमूने अंकित थे। इन बर्त्तनो के निर्माता बामपुर मरूद्यान तथा दश्त नदी के ऊपरी भाग मे दामिन नामक स्थान के निवासी थे। कुटीराकार होने के कारण इनकी सनिकट तिथि निर्धारित की जा सकती है।[२] इस संबध में दिलचस्प बात यह है कि जब कि सीस्तान मे बर्त्तनो पर दरवाजो के

१. पीगॉट, प्रीहिस्टोरिक इंडिया, पृ० ११७

२. स्टीन, आॅर्क्योलॉजिकल रेक० इन् एन० डब्लू० इंडिया एंड एस० ई० ईरान

नमूने चित्रित रहते हैं अबतक दश्त नदी के पूरब बलूचिस्तान अथवा बलूच मकरान में कहीं भी ऐसे बर्तन नहीं पाए गए हैं। यह बात कंबुकीय भुजाओंवाले बड़े त्रिभुजों के नमूने के संबंध में भी लागू है। ये नमूने कुल्ली-बर्तनो पर नही पाए जाते हैं तथा कुल्ली के साँड के नमूने दश्त नदी के पश्चिम नही गए है जहाँ बर्तनों पर पशुओ में केवल आइबेक्स तथा परंपरागत नमूनेवाली चिड़िया पाई जाती है।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि अनुपाषाणिक शल्कल बहुत स्थानों पर पाए गए हैं, किंतु दाब शल्कलवाले बिंदु अत्यत दुर्लभ है। दश्त नदी के पश्चिम मे बामपुर नामक स्थान पर नाशपाती के आकारवाले वैसे बिंदु पाए जाते हैं जैसे सपूर्ण पश्चिम एशिया मे प्रारभ से लेकर प्रथम सहस्राब्दि ई० पू० तक सामान्यत· प्रचलित थे। किंतु इस नदी के पूरब सुक्तगेन एव पेरियानो गु डाई नामक स्थानो पर केवल दो बिंदु मिले है जिनकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। इन दोनो मे से किसी का भी कुल्ली-सस्कृति के साथ कोई निश्चित सबध नही है।[1] कुल्ली के पत्थरवाले अवतल चक्की से इस बात का सकेत मिलता है कि अनाज पिसे जाते थे, अत: उपजाए भी जाते थे। किंतु यह स्पष्ट है कि इस अवस्थापित कृषक-समुदाय की जीविका के साधन केवल कृषिकार्य तथा पशुपालन थे।

कुल्ली एव मेही के बाद कुल्ली-सस्कृति का अत्यंत विख्यात स्थान शाही टम्प है जो बलूच मकरान में केज नदी के किनारे बसा है। एक समय मे इस टीले का महत्त्व कुछ कम था क्योंकि द्वितीय सहस्राब्दि के प्रारभ में उत्तरकालीन आक्रमणकारियो ने इसे कब्रगाह बना लिया था। किंतु सौभाग्यवश ही पर्याप्त मात्रा मे ठीकरियाँ मिली जिससे यह पता चलता है कि यह एक लबी अवधि तक कुल्ली-अवस्थापन था। शाही टप के कब्रगाहो से प्राप्त वस्तुओ का वर्णन पाँचवें परिच्छेद मे किया गया है। उस टीले की बाकी चीजो के बारे मे यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ये कुल्ली-सस्कृति की हैं। टीले के मध्य मे १६ फुट चौड़ी और २० फुट गहरी जो खाई है उसके बारे मे हमे बहुत कम मालूम है। इस खाई के II से लेकर V क्षेत्रो मे (जिसमे V सबसे अधिक गहरा था) पाई गई सभी वस्तुएँ एक साथ प्राप्त हुई थी। अत. अवस्थापन की सतहे निश्चित नही की जा सकीं यद्यपि कुछ तो अवश्य स्पष्ट रूप से रही होगी। खाई के खड VI मे स्टीन ने पत्थर की एक विशाल दीवार देखी थी जो छह फुट मोटी थी। चूँकि यह परिवृत्त दीख पड़ता है तथा इसके अदर का क्षेत्र ८२ फुट से अधिक नही रहा होगा, ऐसा अनुमान लगाया

१. स्टान, टूअर इन् गेड्रोसिया, प्लेट VI, सु० ५; टूअर इन् वजीरिस्तान एंड बलूचिस्तान, प्लेट IX पी० एसी डब्लू० सी. २६

जा सकता है कि यह कुल्ली-संस्कृतिवाले इलाके की पश्चिमी सीमा पर बाहुरी रहा होगा। ऐसा विशेष रूप से इसलिए समझा जाता है कि बस्त नदी दो संस्कृतियों को पृथक करनेवाली लकीर मालूम पड़ती है।

कुल्ली-बर्तनों के अतिरिक्त अन्य वस्तुएं भी हैं जो इस दावे का पुष्टिकरण करती हैं कि यह निःसंदेह कुल्ली-अवस्थापन था। उदाहरणतः, सांड़ों की मूर्तियाँ तथा एक उत्कीर्ण बर्त्तन (जिसके सबध में स्टीन निश्चय नहीं कर पाए हैं कि यह बर्त्तन था या पत्थर तथा जो कि मेही-किस्म का है जो ऊपर पत्थर के कुटीराकार बर्त्तनो की तरह बना बतलाया गया है) तथा उभरे, सीधे एव ढेवदार लकीरों द्वारा सजावटवाले बडे मर्तबान जैसा कि कुल्ली एवं पाक मे पाए गए है।

कुल्ली-मेही-सस्कृति एव नाल-नुदारा-सस्कृति का आपसी संबध एक प्रकार की पहेली है। कोलवा मे जिक, झाउ एव कोलवा के बीच बजदाद कलात तथा नुंदारा-घाटी में टिकरी दव—इन सभी स्थानो मे दोनो ही सस्कृतियों की काफी ठीकरियाँ मिली है जिनसे अवस्थापनो की पहचान मे सदेह उत्पन्न हो गया है। इनमे से एक या अधिक स्थानो पर खुदाई करने पर ही सदेह दूर हो सकता है। सभवत ये सारे स्थान कुल्ली-सस्कृति के है तथा इनमे नाल-नुदारा-सस्कृति के पदार्थों का आयात हुआ होगा। किंतु इस सबंध मे निश्चयपूर्वक कुछ कहना उसी प्रकार असभव है जैसा कि यह कहना कि इन दोनों सस्कृतियो मे कोई एक दूसरे का ऋणी नही है।

अब हमे जोब पर ध्यान देना चाहिए, जहाँ कि लगभग २५०० ई० पू० तक केचीबेग-आमरी-शैली के दुरंगे बर्त्तनो का प्रचलन था। यह सभव है कि इस प्रकार के बर्तनो के बाद काले रग की सजावटवाले लाल बर्त्तनो का प्रचलन आरभ हुआ, किंतु उत्तरी बलूचिस्तान के निवासियो के जीवन, आबादी अथवा राजनीतिक सगठन मे कोई परिवर्तन नही हुआ। लोरालाई III एव पेरियानो I के बर्तनों के बाद लोरालाई IV एव पेरियानो II के बर्तनों का प्रचलन हुआ। इस परिवर्तन के पीछे असल मे कौन लोग थे, यह कहना कठिन है। किंतु यह सभव है कि पेरियानो गुंडाई एव मोगल गुंडाई के निवासी मुख्यत इसके लिए उत्तरदायी थे।

पेरियानो II के इन बर्तनों के सबध मे एक बहुत महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हड़प्पा मे प्राक्हड़प्पा अथवा अत्यत निकट हड़प्पाकालीन दुर्ग-परकोटा के निर्माण मे मिट्टी के साथ प्रयुक्त की जानेवाली ठीकरियों की अन्य शैलियाँ पेरियानो-शैली से मिलती-जुलती थीं। एक मे पेरियानो II किस्म की खडी ढेवदार लकीरें थी।[1]

---

१ ह्वीलर, हड़प्पा १९४६, प्लेट XLI, ६; स्टीन, टूअर इन् वजीरिस्तान एंड बलूचिस्तान, प्लेट V पी० ६; VI पी० ६५; XI, एम-एम० एन० ६; XX, एस-जे, i I

इससे यद्यपि पेरियानो II के *अवस्थापन* का नही तो कम-से-कम जोब के प्राक्हड़प्पा कालीन संपर्कों का सकेत अवश्य मिलता है। इस स्थान पर सभवत: प्राक्हड़प्पा-कालीन निवासी अधिक दिनो तक नही रहे। इनकी तिथि लगभग ई० पू० २४५० से लेकर २३०० के बीच निर्धारित की जा सकती है जब हड़प्पा-निवासियों ने दक्षिण से सिंधु पहुँचकर हड़प्पा की स्थापना की थी। वर्तमान प्राप्य प्रमाणों के आधार पर यह भी मालूम पडता है कि हड़प्पा-निवासियो ने यहाँ पहुँचते ही दुर्ग-निर्माण करना आरभ कर दिया था यदि यह ठीक हो तथा यदि मोहेंजोदडो में दुर्ग एव अन्न-भडार के निर्माण (जिसका विवरण अगले परिच्छेद में दिया जाएगा) का काल लगभग२३५० ई० पू० हो तब यह कहना तर्कसगत होगा कि २३०० ई० पू० के लगभग ऐसे लोगो ने हड़प्पा की स्थापना की थी जो बाढ से बचने का उपाय करना जानते थे। उनमे एक ऐसा शासकवर्ग का जिसने हाल ही मे दुर्ग-शासन करना सीखा था तथा जो नि:सदेह नये-नये स्थानो मे फैल रहे थे। परकोटा मे प्राप्त ठीकरियो से भी इस बात की पुष्टि होती है कि यह तिथि उत्तर पेरियानो II से लेकर प्रारभिक पेरियानो III तक फैले हुए युग से मेल खाती है। इन घटनाओ को ध्यान मे रखकर हम यह कह सकते है कि इस बात की कोई सभावना नही है कि जोब मे दबरकोट नामक स्थान पर व्यापारिक चौकी २२०० ई० पू० मे बहुत पहले स्थापित हुई होगी।

किस युग से हिन्द-बलूच प्रभावो का पारस्परिक आदान-प्रदान आरभ हुआ होगा, इस सबध मे अभी हम अत्यत ही सामान्य ढग मे कुछ अदाज लगा सकते है। प्राचीनतम भारतीय प्रभाव के रूप मे हम लोरालाई II के वर्त्तनो पर भारतीय ककुद साँड एव काले बर्त्तनो की सजावट पाते है। इन नमूनो की उत्पत्ति हड़प्पा मे हुई हो, इसका कोई सबूत नही मिलता। इनका प्राचीनतम रूप मोहेंजोदडो की स्थापना के कम-से-कम २०० वर्ष पहले मिलता है। दूसरी ओर कुल्ली एव मेही-सस्कृति के उन वृक्षो को देखकर जिनकी जडो मे मिट्टी का छोटा-सा ढेर है, हम यह कह सकते है कि इनके नमूने चन्हु-दडो मे एव अन्य स्थानों पर प्राप्त होनेवाला पीपल वृक्ष के सरल नमूनेवाले हड़प्पाकालीन बर्त्तनो के कुछ अंश में ऋणी है क्योकि इन पौधो की जडें भी उसी प्रकार उभरी हुई है। अथवा, शायद इसका उलटा अर्थ भी लगाया जा सकता है।[1]

कुल्ली-सस्कृति के बर्त्तनो पर अकित कुछ साँड ऐसी वस्तुओं से बँधे है जो हड़प्पा-सस्कृति के पवित्र ध्वजको की याद दिलाते हैं। किंतु ये स्वय पांडीवाही में

१. गॉर्डन, सियाल्क, गियान, हिस्सार, फिग० I, लाइन

पाए गए बर्तनों तथा कुछ हड़प्पाकालीन बर्तनो से मिलते हैं। इन बर्तनों को देखकर हम यह कह सकते हैं कि ई० पू० २५०० के बाद इनका सपर्क हुआ तथा इसके कुछ समय बाद कुल्ली-स्थानों पर हड़प्पाकालीन बर्त्तनों—विशेष रूप से लबे छिद्रधारी बर्त्तनो—का आयात हुआ था।[1] कुल्ली एवं मेही-संस्कृति में साँडो की मूर्तियो के अतिरिक्त पकी हुई मिट्टी की मातृदेवी की मूर्तियाँ भी बनाई जाती थी। इन पादपीठ मूर्तियो मे कठहार भी पहनाए गए हैं। ये मूर्तियाँ क्वेटा एव जोब के क्षेत्रो मे तथा हड़प्पा-संस्कृति के क्षेत्रो मे पाई गई मूर्तियो से बिल्कुल भिन्न है। ऐसी एक मूर्ति का शीर्ष-भाग स्टीन को रक्षण-घाटी के ऊपर कलातुक दब (जो कि प्राप्त बर्त्तनो के आधार पर कुल्ली-सस्कृति का कहा जा सकता है) नामक स्थान पर मिला था तथा पजगुर के चीरी दब नामक स्थान पर बाँहसहित गर्दन के नीचे का भाग प्राप्त हुआ था। स्टीन का यह कहना बिल्कुल सही मालूम पडता है कि पकी हुई मिट्टी की किसी भी प्रकार की मूर्ति केवल दक्षिण-बलूचिस्तान मे कुल्ली-सस्कृति के स्थानो पर ही पाई जाती है तथा नुदारा मे इनका सर्वथा अभाव है। हड़प्पाकालीन गाडी के टुकड़े जो शाही टप और कुल्ली मे पाए गए थे, उनके बारे मे यह कहा जा सकता है कि इनका सिंधु-घाटी से किसी भी समय मे आयात किया गया होगा जब कुल्ली एव हड़प्पा-सस्कृति फैली थी तथा दोनों का एक दूसरे के साथ सपर्क हुआ था, यद्यपि शाही टप से प्राप्त टुकडा इन वस्तुओ से बहुत कम सादृश्य रखता है।[2]

इस बात को सत्य माना जा सकता है कि धातुविज्ञान का, जिसका कुल्ली-सस्कृति के अतर्गत काफी विकास हुआ, उन ठठेरो (कसेरों) ने प्रारभ किया जिन्होंने यह कला सिंधु-नगरो मे, शायद मोहेजोदडो मे सीखी थी। धातु की वैसी वस्तुएँ वास्तव मे बहुत कम मिली है जिन्हे प्रारभिक किस्म के बर्त्तनो के सपर्क मे रहने के कारण प्राक्हड़प्पाकालीन अथवा उस सस्कृति से अप्रभावित कहा जा सकता है। काम किए हुए ताँबे के कुछ टुकड़े तथा बहुत थोडी-सी ताँबे की कीलें एव छेनियाँ प्राप्त हुई हैं जिनका सिंधु-नगरो से कोई सबध नही है। यह भी संभावना नहीं कि ये चीजें उसी स्थान पर निर्माण की गई होंगी जहाँ प्राप्त हुई हैं बल्कि ईरान से आए यात्रियों ने इन्हे अपने साथ लाया होगा। सिंधु-घाटी के साथ सपर्क की, जिसके फलस्वरूप मेही-कब्रिस्तान मे प्राप्त उत्तम धातुकला की कीर्तियाँ उत्पन्न हुई, तिथि

१. स्टीन, टूअर इन् गेड्रोसिया, प्लेट XXIII, कुल V iii २ एंड XXVIII, मेही १.१.२, ४ एवं ६

२. स्टीन, टूअर इन् गेड्रोसिया, प्लेट XIV एस-एच० टी० ii. १२

२३५० एवं २००० ई० पू० के बीच कभी भी निश्चित की जा सकती है। किंतु इस अवधि के बाहर यह तिथि नही रखी जा सकती है।

अंत मे हम पेरियानो III की सस्कृति के प्रसार के संबंध मे विचार करेंगे। २२५० ई० पू० के लगभग जब इस लालरेखित बर्त्तनो का, जिनपर काले रग में स्वाभाविक चिडियों एव सरल लकीरोवाले नमूने बने थे, पेरियानो गुंडाई एव मोगल गुंडाई मे पेरियानो II की संस्कृति के बाद प्रचार हुआ। उस समय लोरालाई IV, केवटा B, नाल एव कुल्ली-व्यवसाय बलूचिस्तान के अपने-अपने इलाको मे प्रचलित थे। २००० ई० पू० तक इस जोब-समुदाय के अवस्थापनो का प्रसार दक्षिण में नाल के सोहर दब, पश्चिम मे बलूच मकरान की पश्चिमी सीमा पर निहिंग-घाटी मे नजराबाद तक हो गया था (पेल्ट V, ब एव स)।

दबर कोट के अतिरिक्त (जहाँ शायद हड़प्पा की व्यापारिक चौकियाँ कायम थी) जोब के सभी स्थानो पर पेरियानो III के बर्त्तन आ चुके थे। अब बर्त्तनो पर से लोरालाई IV के सांडो का चिह्न गायब हो गए थे। इसके अतिरिक्त, केचीबेग-आमरी-शैली एव अभिप्राय के सभी लक्षण एव लोरालाई के सांडो के चिह्नवाले बर्त्तनों का, जिनकी दशा धीरे-धीरे खराब होते रहने फिर भी अबतक मौजूद थे, अब सदा के लिए अत हो गया (चित्र ६)। किंतु अबतक इस बात का पता नही चला है कि कब, कैसे और किस रूप मे यह सस्कृति क्वेटा के इलाको मे पहुँची। अभी हमे निश्चित रूप से इतना ही मालूम है कि किले गुलमुहम्मद नामक स्थान पर पेरियानो III के बर्त्तन व्यवहार करनेवाले लोगो का अवस्थापन था तथा प्रकाशित तथ्यो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सदातजाति के लोगो के अवशेष भी पेरियानो III से बहुत मिलते-जुलते है।

पेरियानो गुंडाई की कुछ ठीकरियो पर चौडी ढेवदार लकीरे बनी हैं। इनकी शैली क्वेटा के निकट दब सदात एव काश्मार के निकट सैद कला गुंडाई नामक स्थानो पर प्राप्त हुई ठीकरियो की शैली से बहुत मिलती-जुलती है। यह कहना बहुत कठिन है कि विशेष रूप से उपर्युक्त स्थान पर का क्या असली चित्र रहा होगा, किंतु ऐसा मालूम पड़ता है कि दोनो स्थानो पर के गुलाबी सजावटवाले लाल भूरे रग के बर्त्तन सदात-बर्त्तन हैं जो स्वय अनिश्चित, उद्योग था। दंब सदात एव देह मोरासी गुंडाई से प्राप्त मातृदेवी की मूर्तियाँ, जिनका सपर्क सैद-कला से है, दोनो ही प्राक्-पिक जोब-मूर्त्तियाँ है। इसके अतिरिक्त जोब की मातृदेवी की एक मूर्त्ति, जिसका निदर्शन पीगॉट ने दिया है, लगभग उसी शैली की है जैसा कि एक मूर्त्ति को फेयरसर्विस

ने सदात-संस्कृति का बतलाया है। दोनों मूर्तियों की आँखें विचित्र हैं जो जोब-मूर्त्तियों के रीतिगत बड़े वर्तुल द्वारक से भिन्न हैं[1] (प्लेट VII)।

नाल के सोहर दंब मे पेरियानो III के प्रारूपिक छोटे बीकरों की उपस्थिति को देखकर ऐसा मालूम पड़ता है कि चोटी पर जोब से आए अतिक्रमी निवास करते थे। २००० ई० पू० तक कुल्ली एवं नाल-संस्कृतियो के बलूच-समुदाय नीचे की ओर उतरने लगे होंगे तथा लगभग ई० पू० २३५० से लेकर २१०० तक हड़प्पा-संस्कृति के उन्नत दिनो में उनके साथ उन्होंने हाथ बँटाया होगा और तब उसके शीघ्र बाद आने वाले गतिहीनता के युग के प्रति प्रतिक्रिया दिखलाई होगी। उन्नति एव शक्ति के क्षय होने के कारण वे उत्तर एवं पूरब के नाल एव शाही टप-जैसे बाहरी अवस्थापनों को छोडकर कोलवा तथा झाऊ की ओर चले गए होंगे। जोब-निवासियो ने शायद यह देखा कि उनके अतिक्रमण का कोई विरोध नही हुआ, अतः अपने पडोसियों की दुर्बलता से प्रोत्साहित होकर वे अपने अवस्थापन धीरे-धीरे दक्षिण की ओर फैलाने लगे।

अबतक इसके बीचवाले विस्तृत प्रदेश मे ठीकरियो तथा बीकरों के सदृश्य कोई चीज नही पाई गई है। किंतु पश्चिम की ओर वस्तुतः वर्त्तमान फारस की सीमा पर निहिंग-घाटी मे नजराबाद नामक स्थान पर ये चीजें पाई गई हैं तथा ये पेरियानो III के बर्त्तनों से बहुत सादृश्य रखती हैं। खडी दीवारवाला बीकर नाज० २ को स्टीन ने गेड्रोसिया-पर्यटन के अपने सस्मरण में प्लेट X पर उलटा खडा करके दिखलाया है।[2] इन बर्त्तनों का आयात किया गया था अथवा यह इनके निर्माताओ के विस्तार का प्रमाण है (जिनका प्रसार पश्चिम से होनेवाले उस जवाबी आक्रमण के फलस्वरूप रुक गया जिस विशाल आक्रमण के फलस्वरूप बलूचिस्तान के सपूर्ण कृषक-समुदायो एव सिंधु-सभ्यता का ही अत होग या)—इसका वर्त्तमान साक्ष्यो के आधार पर निर्णय नही किया जा सकता है यद्यपि पूर्वोक्त कारण अधिक सभावित है।

ऐसा जान पडता है कि पेरियानो III के निवासी बलूचिस्तान के सपूर्ण पहाडी इलाके मे ही फैलकर सतुष्ट नही हुए। इसमे सदेह नही है कि उनके अवशेष कच्छी जिले मे छालगढी नामक स्थान पर पाए गए है। यह प्रदेश एक विस्तृत घाटी के रूप मे है जो पश्चिम मे कलात पहाडियों को पूरब के सुलेमान पर्वतमाला से अलग करती है। अतः राजनीतिक नहीं तो कम-से-कम भौगोलिक दृष्टि से यह सिंधु-

१. पार्गोट, प्रीहिस्टोरिक इंडिया, चित्र १६ ऊपर मध्य; फेयरसर्विस, एक्सकेवेशन्स इन् द क्वेटा वैली, चित्र १६, डो.

२. स्टीन, रिप० ऑव ऑक्यौलॉजिकल सर्वे वर्क इन द एन० डब्लू० एफ० पी० एड बलूचिस्तान, पेशावर, १९०५, पृ० ५४ और ५५.

प्रदेश का एक भाग है। छालगढी सक्कर एव क्वेटा की मुख्य रेलवे लाइन पर बल्लापते नामक स्टेशन से दक्षिण-पश्चिम दिशा मे लगभग आठ मील की दूरी पर स्थित है। स्टीन को प्रारूपिक जोब-मूर्त्तियाँ (जो कभी पेशावर के ऑक्योंलॉजिकल डिपार्ट-मेंट्स स्टोर मे थी) तथा घुटने टेके मुद्रावाली मूर्त्ति प्राप्त हुई थी जो पाकिस्तान मे प्राप्त एकमात्र है जिसकी आकृति स्पष्ट रूप से सुमेरियन है (प्लेट VII)। इस स्थान के बारे मे बहुत कम मालूम है तथा और अधिक शोध नितात आवश्यक है। इन अवशेषो का मतलब इनलोगो का समतल भूमि मे प्रसार है अथवा वे केवल जाडे के मौसम मे वहाँ जाया करते थे, इसका निर्णय आसपास के इलाके का अधिक पूर्णरूपेण सर्वेक्षण करने पर ही किया जा सकता है।

भारत तथा ईरान की सीमा-प्रदेशो की इन प्रारभिक सस्कृतियो का परीक्षण करने के बाद उनलोगो के रहन-सहन के बारे मे कुछ टिप्पणी प्रस्तुत करना उचित होगा जिनके अवशेष उनके अवस्थापनो के खडहरो मे गडे पडे हैं तथा जिस प्रदेश मे इनके असख्य टीले है। इनमे से अधिकाशत· नवपाषाणिक है जिनके अधिकतर औजार पत्थर अथवा हड्डी के थे। वास्तव मे केवल कुल्ली-सस्कृति मे ही हम ऐसे प्रमाण पाते है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि धातुकला का प्रयोग किया जाता था।

भिन्न-भिन्न युगो मे मकान कैसे बनाए जाते थे, इसके बारे हमे बहुत कम जानकारी है। अतः किस प्रकार ककड और मिट्टी मिलाकर गारा बनाया जाने लगा अथवा पत्थर के वर्गाकार या रुखडे बद्ध टुकडे बनाए जाने लगे जैसा कि कुल्ली, मेही-नुदारा तथा अन्य बहुत-से स्थानो मे पाए जाते है—इसके क्रमविकास का विवरण देना असभव-सा है। इनमे बहुत से खडहरो मे आसानी से पहुँच सकने योग्य खडहर, जैसा कि नुदारा का खडहर है जो कि एक विशाल टीले के ऊपरी पठार पर है तथा लगातार क्रम मे आनेवाले अवस्थापनो की अंतिम स्थिति है तथा जिसके बारे मे अबतक भी हमारा ज्ञान अत्यत सीमित है। दब सदात मे उन मकानो की मिट्टी के नमूने पाए गए है। यह सभव है कि वे केवल मिट्टी के कक्षदार डिब्बे हो क्योकि उनपर चित्रित नमूने क्वेटा-बर्त्तनो पर बनाए गए नमूनों से मिलते-जुलते हैं। किंतु कम-से-कम एक पर वर्गाकार छेद है जो शायद खिडकियों के प्रतीक रहे हो। यदि वे मकानों के नमूने भी हो तब उनसे हमे तृतीय सहस्राब्दी के बलूची गृह-फार्म की कल्पना करने मे कोई विशेष सहायता नहीं प्रदान करते हैं।

इस प्रकार के समुदाय केवल सुनियत्रित-मिश्रित कृषि-व्यवस्था के द्वारा ही सभव हो सकते हैं। किंतु इस कृषि-व्यवस्था का क्या रूप था अथवा कृषि के

कौन-कौन-से औजार व्यवहृत किए जाते थे, इसकी अधिकांश रूप में कल्पना ही की जा सकती है। पत्थर अथवा धातु के कुदाल की तरह का काई भी औजार पाया नहीं गया है। अतः भूमि किस प्रकार ओती जाती थी, इसके संबंध मे कोई भी सुझाव मात्र कल्पना होगा। यह सोचना युक्तिसंगत होगा कि लघु अश्म हँसिया के आकार के चकमकपत्थर थे फिर भी ठोस सबूत का अभाव है। किंतु बर्त्तनों पर रस्सी से बंधे सांडों के चिह्न से यह स्पष्ट है कि ये निःसंदेह प्रारंभिक बलूचियों के पालतू पशु की तरह थे।

सभवतः इन समुदायो के कुछ सदस्य आइबेक्स-शिकारी रहे होंगे और इसी के संबध मे मजुमदार ने बलूचिस्तान में पहाडी प्रदेश एवं पश्चिमी सिध में पाए जाने-वाले जगली बकरो की ओर ध्यान आकृष्ट करके इस बात पर जोर दिया था कि मध्य-ईरान से लेकर करचाट एव शाहजो-कोटिरोप्रदेश के सिधस्थित इलाको में पाए जानेवाले बर्त्तनों पर इस पशु के चित्राकित अभिप्राय को देखकर माल्म पडता है कि शायद यह 'सिध की पश्चिमी सीमा के पार से आइबेक्स का ज्ञान रखनेवाली जाति के प्रवसन का सबूत है।'' ये लोग नष्ट होनेवाले द्रव्यो का कैसे व्यवहार करते थे, इसके बारे मे हमारा ज्ञान नही के बराबर है। इस बात का प्रमाण मिलता है कि ये लोग अपने भवनो मे लकडी के चौखट लगाते तथा सहन बनाते थे। प्रारंभिक काल मे ही चटाई-दार नमूनेवाली ठीकरियो के पाए जाने से उनके बुनने की कला का ज्ञान प्राप्त होता है। वे कपडे बनाना भी जानते थे, इसके प्रमाणस्वरूप हमें केवल दो सबूत प्राप्त हो सके है। पहला, पेरियानो गुडाई मे प्राप्त हड्डी की सूई और दूसरा औरत का चित्र अकित किया हुआ एक टोगाओ-बर्त्तन। बहुत-से स्थानों पर कार्नेलियन गोमेद तथा लाजावर्त के दाने बहुत-से स्थानो पर पाए गए हैं। इन दोनो से कंठहार बनाए जाते थे। इसका प्रमाण हमे इस बात मे मिलता है कि मेही, क्वेटा और जोब मे मातृदेवी की बहुत सारी मूर्तियाँ इन दोनो आभूषणो से सुसज्जित मिली है। कला की दृष्टि से इन लोगो की सबसे बडी कृतियाँ चित्रकारीवाले बर्त्तनो, लोरालाई II एव कुल्ली के सांडो के चित्रवाले बर्त्तनो तथा नाल-कब्रिस्तानो के बहुरगे बर्त्तनो के रूप में प्राप्त हुई हैं।

जैसा कि इस विवरण मे कई स्थानों पर बतलाया गया है, सिंधु नदी तथा इसकी शाखाओ के क्षेत्र मे हड़प्पा-संस्कृति के नाम की एक सभ्यता फैली थी। यह संकेत दिया गया है कि इसकी उत्पत्ति जोब के लाल बर्त्तन प्रयोग करनेवाले किसानो से हुई होगी, किंतु इसका कोई भी प्रमाण नही मिला है कि ऐसा हुआ था अथवा हो सकता था। पेरियानो II एवं लोरालाई IV के

संभावित कालक्रम तथा उनके बर्त्तनो की शैली एव उनका दैनिक जीवन-क्रम देखकर यह असभव मालूम पड़ता है। सिधु-सभ्यता के संपर्क से पेरियानो III के निवासियो के सास्कृतिक जीवन मे कोई परिवर्तन नही आया। इनमे उत्तरी तथा केंद्रीय बलूचिस्तान मे अपने अवस्थापन फैलाने की योग्यता थी; फिर भी ये तबतक खेतिहर-किसान ही बने रहे जबतक कि आक्रमणकारियो ने इनके घर-बार आदि जला नही दिए तथा इनका और कुल्ली एव नाल के इनके समकालीन निवासियो का अत नही कर दिया।

●

परिच्छेद ४

सिंधु-घाटी की सभ्यता

बलूचिस्तान के खेतिहर-किसानों के विकास-काल के अधिकांश काल मे, जिसकी चर्चा पिछले परिच्छेद मे की गई है, उनके पडोस मे सिंधु-घाटी की नगरी सभ्यता फैली थी, जिसे सामान्यत: हडप्पा-संस्कृति कहा जाता है। इसके सांस्कृतिक महत्त्व के अतिरिक्त सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सुमेर एवं एलम मे प्राप्त तिथि निश्चित करनेवाली हडप्पा की वस्तुओ के आधार पर ही कालक्रम निश्चित रूप से स्थिर किया जा सकता है। इसी पर हडप्पा से सबंधित सभी वस्तुओ की तिथि निर्धारित की जा सकती है। अत· अब हम इस सभ्यता के विकास का परीक्षण उस आदि रूप से करेंगे जब इस सभ्यता के निवासियो की सख्या बहुत कम थी तथा उनलोगो ने मध्यसिंध मे सिंधु नदी के किनारे मोहेंजोदडो नामक स्थान पर अपना पहला अवस्थापन स्थापित किया था। इसके बाद उन्होने वहाँ से ३५० मील उत्तर की ओर सिंधु की एक शाखा रावी नदी के किनारे हडप्पा नामक स्थान पर एक दूसरा नगर स्थापित किया। फिर उन्होने बहुत-से छोटे-छोटे नगर तथा गाँव स्थापित किये तथा सिंध के खेतिहर-किसानो पर अपनी सभ्यता स्थापित की। इस सभ्यता के चरमोत्कर्ष के समय दूसरा प्रभाव गुजरात से लेकर हिमालय की तराई मे सतलज नदी के ऊपरी भाग मे रूपर नामक स्थान तक फैला हुआ था।

सुमेर-निवासी अथवा वाशिक मिस्र-निवासियों की उत्पत्ति यद्यपि कुछ अश मे विवादग्रस्त एव काल्पनिक है, फिर भी उतनी जटिल नही है जितनी हडप्पा-निवासियो की है। यद्यपि पेटरसन का यह मत है कि सक्कर एव रोहरी के उद्योग-धंधे बहुत बाद के है, इनकी अवधि अल्पकालीन है तथा इनकी तिथि "सिंधु-घाटी की ताम्रपाषाणी सभ्यता के प्रारभिक काल के सनिकट है।" डी टेरा ने उसी रिपोर्ट मे यह लिखा है कि "उनमे एक ऐसी देशी सस्कृति थी जिससे वह सभ्यता उत्पन्न हुई होगी।"[१] पीगॉट ने लिखा है कि "इसका न कोई ज्ञात आरभ है, न किसी अन्वीक्षात्मक आदिकालीन दशा का पता है।"[२] ह्वीलर ने यह सुझाव दिया है कि यह

१. स्टडीज ऑन दि आइस एज इन इंडिया, पृ० ३३३ और ३३६
२. प्रीहिस्टोरिक इंडिया, पृ० १४०

सभ्यता रचनात्मक प्रवृत्तिवाली जातियो के पर्यावरण द्वारा प्रदत्त सुविधाओं का परिणाम थी तथा इसी कारण इसका विकास शीघ्रतापूर्वक हुआ तथा "उस रचनात्मक कल्पनाशक्ति के अभाव मे लबी-से-लबी अवधि भी उसका प्रस्थापन नहीं कर सकती ।"[१]

सिंधु-घाटी की सभ्यता की पृष्ठभूमि मे ही सुमेर एव एलम के निवासियो की बर्बरता से लेकर सभ्य अवस्था तक का धीरे-धीरे सास्कृतिक विकास हुआ होगा । किंतु भारत की भूमि पर उस धैर्यपूर्ण प्रयत्नो का, जिसकी कल्पना गॉर्डन चाइल्ड[२] ने की है, कोई भी प्रमाण मौजूद नही है और न मिलने की सभावना है । यह स्पष्ट है कि कुछ आप्रवासी जातियो ने अपने साथ इन वस्तुओ का ज्ञान लाया था जिसके फलस्वरूप वे सभ्य ढग से रहते थे । उनलोगों ने बदली हुई परिस्थितियो के अनुसार इस ज्ञान का प्रयोग करके अपनी सूझ-बूझ के द्वारा लगभग सौ वर्षों मे ऐसी सास्कृतिक शैली तैयार की जो अगले हजार वर्षों तक कायम रही । अब भविष्य मे किसी भी खोज के द्वारा भारत या आसपास के देश मे हडप्पा-सभ्यता का ऐसा कोई नगर नही मिलेगा जिसमे यह सिद्ध किया जा सके कि यह सस्कृति सहस्राब्दियो पहले सुमेर, एलम एव प्राचीन ईरान की सस्कृति के समानातर किंतु उससे भिन्न रूप, मे विकसित हुई ।

मोहेंजोदडो नगर की उत्पत्ति असल मे कैसे हुई, यह हम नही जानते है । इसके सबध मे दो विकल्प है । पहला, यह नगर अपने अधिकाश लक्षणो के साथ पूर्ण विकसित रूप में उपस्थित हुआ और इसका प्रभाव अधिकाश आमरी-गॉवो मे फैला । दूसरा यह कि इन स्थानो पर हडप्पा के अवशेषों के प्राप्त होने से धीरे-धीरे होनेवाले सास्कृतिक परिवर्तन का सकेत मिलता है जिसके फलस्वरूप मोहेंजोदडो मे वह बडा नगर स्थापित हुआ जो हजार वर्षों तक कायम रहा । इनमे से पहला विकल्प अधिक सभव मालूम पडता है । अत अभी हाल मे जो सकेत मिले है उनसे यह मालूम पडता है कि सिंध मे हडप्पा-सस्कृति का तेजी के साथ विकास हुआ जहाँ भूमि-सबधी अर्थव्यवस्थावाली प्रणाली मे आमरी के कृषक-समुदाय का विलीयन हो गया । ऐसा चित्र भारत के इतिहास की किसी भी स्थिति मे मिल सकता है जब कि कुछ नगर-बाजार और कुछ बडे शहर होते हैं । इनमे समकालीन सभ्यता के स्पष्ट लक्षण दिखलाई पड़ते हैं । इसके अतिरिक्त, बडी संख्या मे छोटे-छोटे गाँव

१. दि इडस सिविलाइजेशन, पृ० १४
२. न्यू लाइट ऑन द मोस्ट एंसिएंट ईस्ट, पृ० १८४

पाए जाते हैं जिनमें सामान्य आवश्यकता की बहुत कम वस्तुएँ मिलती हैं जिनका अत्यंत सभ्य नगर-केंद्रों से संपर्क हो।

सिंधु की इस प्रहेलिकापूर्ण सभ्यता के कौन-से मुख्य तत्त्व हैं ? हडप्पा-निवासियों की प्रमुख विशेषता नगर-निर्माण-योजना एवं पकी हुई ईंटों के भवन-निर्माण थी। जैसा कि हम जानते हैं आरंभ से ही उनके नगर सावधानीपूर्वक बद्ध एवं पकी हुई ईंटों के द्वारा बनाए जाते थे तथा इनके प्रखंड सुनियोजित रहते थे और इनकी मुख्य सडकें सीधी हुआ करती थी। आज तक मोहंजोदडो की सडको एव गलियों मे चलने पर नगर के बारे मे गलत धारणा बनती है। खुदाई की गई गहरी सडको पर चलने पर ऊँचे भवनो की कतारें मिलती हैं। मकान लगातार हैं तथा उनकी मुख्य दीवारो पर दूसरी मजिल बनाने की भी व्यवस्था दीख पडती है। कारखानो की खंडित चिमनियो-जैसी दिखनेवाली चीजें असल मे ईंट के कुएँ है। जैसे-जैसे नदी की मिट्टी की परते जमती गई हडप्पा-निवासी कुओ पर ईंट लगाते गए। अब खुदाई करनेवालो ने इसे खोदकर निकाला है।

नालियों की ऐसी विस्तृत व्यवस्था थी जो पूरब मे अपने समय से या आज भी सबसे विशाल एव प्रगतिशील नगरो से बहुत आगे थी। लोग नगर-निर्माण-योजना के अनुसार मकान बनाते है तथा भवनो के मानक एवं सफाई ठीक है या नहीं—यह देखने के लिए प्रभावी नगर-शासन-प्रणाली थी। उनलोगो की अपनी लिपि, माप-तौल-प्रणाली एव मानक धातु-कर्म थे। ये सारे तत्त्व, जो बर्बरता के विपरीत सभ्यता-निर्माण के चिह्न है, वहाँ के मूल निवासी खेतिहर-किसानो की अपेक्षा समय से बहुत आगे थे। प्रारंभिक हडप्पा-निवासी कितने भी रचनात्मक कल्पना शक्तिवाले रहे हो, किंतु यह मान लेना उचित नही होगा कि उनलोगो ने स्वतत्र रूप से सोचकर लगभग ये सारी चीजे बनाई। इसके लिए हमे यथासंभव विवेकपूर्ण युक्ति देनी पडेगी। दुर्भाग्यवश अभिलेखन-पद्धति के अभाव मे इनमे से प्राप्त किसी भी वस्तु की असली सांस्कृतिक स्थिति हम नही जानते है। किंतु मोटे तौर पर हम यह कह सकते हैं कि खुदाई के द्वारा निकाले गए पदार्थ या तो निचली या ऊपरी सतह के है।

किंतु रिपोर्ट को पढने पर कुछ सकेत मिलते है। पम्प का प्रयोग करने के बावजूद जमीन के नीचे के पानी के कारण प्राकृतिक मिट्टी तक खुदाई नही की जा सकी है, किंतु जब अप्रील, १९३२ ई० मे पानी की सतह के नीचे हो जाने पर श्री पुरी ने गहरी खुदाई की थी तब आस-पास की वर्त्तमान समतल भूमि के लगभग २७ फुट नीचे तक वे पहुँच सके थे।[1] १८×१४ फुट की इतनी छोटी गहराई के

१. मैके, फरदर एक्सकेवेशन्स ऐट मोहेंजोदडो, पृ० ४४

आधार पर कोई भी महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष नही निकाला जा सकता है और चूँकि आधार-वस्तु के—३८·५ फुट नीचे तक पकी हुई ईंटें पाई गई है, अत. इस खाई मे—३७ ४ फुट नीचे कच्ची ईंटे प्राप्त हाने का कोई खास महत्त्व नही है। इस खाई मे—४१ फुट नीचे बर्तन पाई जानेवाली सतह मे पाई गई एक ठीकरी और मर्तबान की आकृति हडप्पा के बर्तनो से नही मिलती है, किंतु इनका उचित विवरण प्राप्त नही है। किंतु—३२ फुट पर बहुरंगे बर्तनो की ठीकरियाँ पाई गई है। इनके साथ अडाकृतियो की एक शृ खला भी प्राप्त हुई है जिसमे प्रत्येक अंडाकृति पर मध्यभाग से नीचे एक खडी लकीर बनी है। ऐसा नमूना अबतक केवल सुरजगल के लोरालाई-बहुरगी बर्तनो पर मिले हैं। चूँकि इस प्रकार के अलकृत बर्तन मोहेंजोदडो मे सभवत· सर्वाधिक प्रारभिक बर्तनो के साथ मिलते है, अत दोनो के समकालीन होने की उपयुक्त सभावना है।

हडप्पा के नगरो की सभी स्थितियो मे गड्ढे भरने के लिए कच्ची ईटें तैयार की जाती थी। यह सभव है कि इस सस्कृति के सस्थापक इस पदार्थ से मकान बनाना जानते थे। किंतु उनका सबसे महत्त्वपूर्ण आविष्कार पकी ईटो से मकान बनाने की कला था। इससे यह धारणा बनती है कि ये ऐसी जाति के लोग थे जो छोटे नगरो की योजना बनाना तथा ऐसी भूमि पर मकान बनाना जानते थे, जहाँ नजदीक मे पत्थर नही मिलता था तथा जहाँ जलावन के अभाव के कारण पकी ईटो की अपेक्षा कच्ची ईटो का व्यवहार अधिक प्रचलित था और इनके आस-पास नदीतटीय प्रदेश फैले हुए थे। किंतु वहाँ इतनी अधिक वर्षा होती थी जिससे कच्ची ईटो के भवनो के नष्ट हो जाने का भय था। इस कारण वे लोग आस-पास के जगलो से लकडियाँ काटकर पकी ईटें तैयार करने लगे। इस कला से वे पूर्वपरिचित थे, किंतु इसे वे एक ऐश्वर्य समझते थे।

इस पैमाने पर वृक्ष काटने के लिए अच्छी धातु के कुठारो की आवश्यकता थी। किंतु प्राक्हडप्पा-कालीन अथवा आदिकालीन खेतिहर-किसान के पास धातु के औजार बहुत कम थे। वास्तव मे यह कल्पना करना उचित नही होगा कि यदि सिंधु-घाटी मे खेतिहर-किसानो के आगमन के लगभग दो सौ वर्ष बाद विदेशियो का हमला नही हुआ होता तो इतने कम समय मे सिंधु-सभ्यता के बुनियादी मौलिक तत्त्व भी विकसित नही हो पाते। सुमेर एव एलम मे प्रारंभिक वाशिक काल मे ऐसे लोग बसते थे जो अपने साथ नागरिक जीवन के आवश्यक ज्ञान ले आए। ये लोग जलमार्ग अथवा स्थलमार्ग से आए, यह हम कभी निश्चित रूप से जान नहीं पाएँगे, किंतु इस बात की अधिक सभावना है कि वे समुद्र के किनारे-किनारे आए। इस बात की उतनी सभावना नही है कि वे फारस एव बलूचिस्तान के लंबे रास्ते से

होकर आए होगे। इन लोगो ने लगभग २६०० ई० पू० में आकर मोहेंजोदड़ों नगर की स्थापना की थी। यदि हम ऑरनॉल्ड ट्वान्बो की नई भूमिवाली परिकल्पना पर विचार करें तो हम पाएँगे कि इसमे ऐसा बहुत कुछ है जो इस मत का समर्थन करता है कि ये आप्रवासी समुद्र-मार्ग से आए थे। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि यह नई भूमि थी। यह सही है कि हाल ही मे ईरानी किसान-कुम्हार आए थे, किंतु इसके अलावा वहाँ केवल मध्यपाषाणी आदिवासी थे। इसका कोई प्रमाण नही है कि उनलोगो ने इस नगरी सभ्यता की स्थापना की अथवा वे वैसा कर सकते थे।

समुद्रमार्ग द्वारा प्रवसन के सबध मे ट्वान्बी की टिप्पणियाँ सिंधु-सभ्यता के स्थापको से संबधित है। ये इतना उपयुक्त एव महत्त्वपूर्ण हैं कि उन्हे यहाँ पूर्णरूपेण उद्धृत किया जाता है। उन्होने कहा है कि "समुद्र-पार-प्रवसन मे अपना पुराना देश छोडकर जानेवालो को अपने सामाजिक उपकरण भी जहाज पर अपने साथ ले जाना पडता है तथा यात्रा समाप्त करने पर नए देश मे बसने के पहले उन्हे अपने साथ जहाज से उतारना पड़ता है। सभी प्रकार के उपकरण, व्यक्ति एव संपत्ति, तकनीक एव सस्थाएँ, विचार आदि समान रूप से इस नियम के अतर्गत आते है। जो कुछ समुद्रयात्रा करने के योग्य नही है उसे पीछे छोड देना पडता है। इसके अतिरिक्त बहुत सारी चीजें, जिनमे केवल भौतिक पदार्थ ही नही शामिल हैं, जिन्हे प्रवासी अपने साथ ले जाते है, तोड-फोडकर जहाज पर चढाया जा सकता है और फिर उन टुकडो को पूर्ववत् नही जोडा जा सकता है।"[1] यह स्थिति मूल हड़प्पा-निवासियो के साथ बिल्कुल ठीक बैठती है। उनकी सभ्यता ऐसी नही थी जिसे धीरे-धीरे तथा कष्टपूर्वक बैलगाड़ी के द्वारा मकरान अथवा अफगानिस्तान होकर ले जाया गया हो तथा रास्ते मे जगह-जगह ठहरने के कारण समय एव कठिनाइयो के फलस्वरूप इसकी अधिकाश सास्कृतिक उत्कृष्टता एव कार्यकुशलता पीछे छुट गई हो। इसके विपरीत, यह प्रमाण मिला कि यहाँ 'सागर-सा परिवर्तन' ज्ञान पर पडनेवाली नवचेतना का परिणाम था।

यह सुझाव दिया गया है कि इस सभ्यता के सभी लक्षण आरभ से ही इसमे वर्त्तमान थे और पकी ईंटो के मकानों के मामले में तो यह तत्त्वतः सही दिखलाई पड़ेगा। किंतु यहाँ भी एक विकट समस्या है। यदि मान लिया जाय कि मोहेंजोदड़ों नगर एक छोटे केंद्र-बिंदु से आरभ होकर दूर-दूर तक फैला था, फिर भी पकी ईंटो के एक साधारण बड़े एव सुनियोजित नगर का निर्माण का अर्थ यह होता है कि

१. अ स्टडी ऑव हिस्ट्री, वॉल० II, पृ० ८८

वहाँ उच्चस्तरीय केन्द्रीय नियंत्रण एव एक बडा श्रमिकवर्ग था। काष्ठकारों एवं लकडी ढोनेवाले मजदूरो की जमात, मिट्टी काटकर साँचे (साँचे पहले ९.२×४.५× २.२ इंच, फिर बाद मे ११×५.५×३ इंच नाप के हो गए) में से निकालकर, थाक लगाकर ईंट पकानेवाले मजदूरों, मकान तैयार करनेवाले राजमिस्त्री एव बढई इन सबोके काम की देखरेख के लिए वास्तुविद्, सर्वेक्षक एवं फोरमेन की आवश्यकता थी। छोटे पैमाने पर भी यह सामुदायिक प्रयत्नों द्वारा कुशल निर्देशन का परिणाम मालूम पडता है।

इस सफलता से भौतिक सस्कृति की और किन-किन वस्तुओं का पता चलता है? घरो पर छप्पर डालने तथा ईंटो को पकाने के लिए जलावन के रूप मे व्यवहार करने के लिए वृक्षो को गिराने तथा काटने के लिए धातु की कुल्हाडियाँ अवश्य ही काम मे लाई गई होगी। पत्थर की चिकनी कुल्हाडियाँ नही पाई गई हैं। चूँकि इनका नाश नही होता, अत यदि ये प्रयुक्त होती तो खुदाई करने पर अवश्य भारी सख्या मे प्राप्त होती। अत प्रारभिक निवासियो का धातु-सबधी जो भी ज्ञान रहा हो उनके पास कम-से-कम ताँबे तथा काँसे की कुल्हाडियाँ अवश्य थी। ईंट पाथने तथा भवन-निर्माण मे किसी पुरानी किस्म के औजारो का प्रयोग अवश्य किया जाता रहा होगा, जैसे, साहुल तथा सतह ठीक करनेवाले किसी औजार की इनको जानकारी अवश्य होगी। लोगो को भोजन प्राप्त करना भी आवश्यक था। अत· खेती, पशुओ की देखभाल, शिकार तथा मछली मारने के लिए कुछ बुनियादी औजार जरूर रहे होगे। इनके अतिरिक्त, हडप्पा-निवासियों की अन्य सास्कृतिक वस्तुओ के पहले मे मौजूद होने का कोई उपयुक्त कारण नही मालूम पडता है।

प्राय आवश्यकता के कारण ही प्रगति होती है। साथ ही, यह भी स्वीकार करना पडेगा कि वर्त्तमान दशा मे सुधार करने की प्रेरणा तथा आविष्कारक की प्रतिभा आम जनता के कुछ सदस्यो मे मौजूद थी। जिस प्रकार अधिक वर्षा के कारण पकी ईंटें तैयार करने की आवश्यकता महसूस हुई उसी प्रकार, किंतु कुछ आगे चलकर, जैसा कि सबसे पहली नाली की स्थिति से पता चलेगा, एक मूल रूप तैयार किया गया जिससे मोहेजोदडो की विस्तृत नाली-व्यवस्था का विकास किया गया। नाली-निर्माण करने के लिए बडे आकार की ईंटो की आवश्यकता महसूस हुई होगी और यही भवनो के लिए भी मानक बन गयी।

भिन्न-भिन्न स्तरों पर मुहरें, बाट आदि महत्त्वपूर्ण वस्तुओ का संख्यात्मक अनुपात के सबध मे मूल्यांकन करते समय यह अवश्य याद रखना होगा कि सबसे निचले स्तरो तक खुदाई छोटे क्षेत्रो मे की गई थी। किंतु मोहेजोदडो के डी०

तिथियाँ ई० पू०	प्रान्तीय घटनाएँ	हड़प्पा	मोहेंजो-दड़ो	हड़प्पा युग	गहराईयाँ डी० एवं मैकी- [illegible]
		नदी I अवस्थापन	← मोहेंजोदड़ो का तहस नहस कर दिया गया	युग	बाद का A
१६००	चन्हूदड़ो का झूकर अवस्थापन		व्यापारियों अथवा आक्रमणकारियों द्वारा लाए गए विदेशी हथियार	की	बाद का B; पूर्ववर्ती बाद का II
१७००	← लोहूमदड़ो एवं झूकर			अवनति IV	८ फीट बाद का III
१८००			बेबीलोन प्रथम राजवंश द्वारा इराक के साथ सम्पर्कों का नवीकरण		१० फीट
१९००		शवाधानों के बन्द किये जाने की संभावित तिथि	मेही नमूने उत्कीर्ण बर्तन	गतिहीन युग	अन्दर I ... फीट
2000	पेरियानो III का जल्दी समतल भूमि विस्तार	सरस्वती तराई में		III	
२१००	डाबर कोट पर	अभिवेश स्थापना का आरंभ	कुल्ली मेंगुटी शासन के द्वारा सम्पर्क विच्छेद; विशाल स्नानागार का निर्माण	महान	१६ फीट अन्दर II
2200	← हड़प्पा का अधिकार →	हड़प्पा नगर	एवं अन्नागार का विस्तार; दुर्ग एवं अन्नागार का निर्माण	युग II	... फीट अन्दर
2300	आमरी का अन्त	← की स्थापना → कृषक कुम्हार अवस्थापन	प्रारम्भिक उत्कीर्ण कुटीर बर्तन	रचनात्मक	III; प्रारम्भिक I २८ फीट
2४00	चन्हूदड़ो ← स्थापित हुआ →	पेरियानो II का समकालीन	← २८ से ३५ फीट की तह शायद कूड़े कर्कट के ढेर के रूप में →		प्रारम्भिक II
२५००			३८ फी० के नीचे ढाँचे के अवशेष अनिश्चित है		४० फीट प्रारम्भिक III
2600			मोहेंजोदड़ो स्थापित हुआ		

चित्र ८. हड़प्पा-संस्कृति के विकास की कालक्रमिक तालिका

के० क्षेत्रो मे कुछ लक्षण सभव हैं, क्योकि आधार के २२·५ फुट नीचे बाढ भलवाली पेटी तक एक बडे भाग की खुदाई की गई थी। भिन्न-भिन्न वस्तुओ की स्तरीय स्थिति तथा कुछ घटनाओ के कालक्रम के सबंध मे स्पष्टता लाने के उद्देश्य से यहाँ पर मोहेजोदडो के अवस्थापन को चार आवतकाल मे बाँटा गया है, जिससे अन्य स्थानो के अवस्थापनो की समरूपता दिखलायी जा सके। आवर्तकाल I सबसे पुराना था। मोहेजोदड़ो के डी० के० क्षेत्र के खड के चारो आवर्तकाल मोटे तौर पर मैके के द्वारा फुट मे निर्धारित आधार के नीच की निम्नलिखित गहराइयों से मिलती-जुलती हैं—आवर्तकाल I—३० और नीचे—२१·३ तक, आवर्तकाल II —२१·३ मे लेकर—१५ तक, आवर्तकाल III—१५ से लेकर—१० तक एव आवर्तकाल IV—१० से ऊपर। किंतु मुहरो और बाटो के पारस्परिक सबध मे आवर्तकाल I मे, जिसकी बहुत आशिक खुदाई हुई, २५ मुहरे तथा ६ बाट प्राप्त हुए, आवर्तकाल II मे १६५ तथा २७, आवर्तकाल III में २०५ तथा ५९ और आवर्तकाल IV मे ३०६ तथा १२२ प्राप्त हुए। यद्यपि एक मुहर का एक भाग—३०·५ तथा एक बाट—३१·६ फुट पर प्राप्त हुआ था, किंतु इसमे बहुत सदेह है कि मुहरे आवर्तकाल II के प्रारभिक भाग के पहले तथा बाट बादवाले भाग मे चलाए गए थे (चित्र ८)।

हडप्पा मे पाई गई चीजों मे सबमे बडी पहेली वहाँ की मुहरें है। भारी सख्या मे रहने के बावजूद इनका प्रयोग सीमित था।। इसका अर्थ यह होता है कि यदि इसका प्रयोग पहचान के लिए था तो यह अवश्य ही अफसरो तथा व्यापारियो के जैसे ही कुछ वर्ग तक सीमिल रही होगी। जिनपर पहाडी बकरे अकित हैं वे पुराने थीं। इनमे सबसे बादवाला आवर्तकाल III के प्रारभिक भाग का रहा होगा। दूसरी ओर, मेसोपोटामियाई प्रभाव के कारण—जो 'गिलगमेश'-किस्म की मुहरें बनी जिनपर एक योद्धा को बाघो को वशीभूत करते दिखलाया गया है, बाद की मालूम पडती हैं। इनमे सबसे पुरानी आवर्तकाल III के प्रारभिक भाग की रही होगा। जिन मुहरो पर सीगवाले देवता का चित्र अकित है वे उस काल के मध्यभाग की थी। ये भी बाद की हैं (प्लेट VIII, ए, बी एवं एच)।

लेखबद्ध स्तरक्रम-निर्धारण के अभाव मे केवल अत्यत सामान्य मत निर्धारित किए जा सकते है। किंतु अभिलेखो का परीक्षण करने के बाद यह कहना सभव है कि आवर्तकाल II के आरभ मे मुहरें कम मिलती हैं तथा—२५ फुट के ऊपर आवर्तकाल I की स्तरवाली मुहरें सही संदर्भ की रही होगी। किंतु इस स्तर के नीचेवालो के सबध मे कुछ कहना बहुत सदिग्धपूर्ण है। अधिक विचित्र मुहरो के

स्वामित्व के संबंध मे कुछ भी अनुमान नहीं किया जा सकता है। इनके प्राप्ति-स्थान के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि सींगवाले देवतावाली मुहरें पुरोहितवर्ग की संपत्ति थी अथवा योद्धावाली मुहरें मेसोपोटामिया के व्यापारियो के निवास-स्थान से आई थी अथवा पहाड़ी बकरोवाली मुहरें बलूचिस्तान के व्यापारियों का पारपत्र थी। ये मुहरें जो कि साधारणत: वर्गाकर होती थी शैलखटी (स्टिएटाइट) की चट्टान से काटकर चिकनाई जाती थी तथा उनपर चित्र एव चिह्नों की पंक्ति उत्कीर्ण की जाती थी। फिर उसपर क्षार-पदार्थ का लेप चढ़ाकर उसे पकाया जाता था। ये चित्र साधारणत: पशुओ के होते थे। इनमें अधिकांशत: यूरोप के जंगली साँड होते थे, जिन्हे प्राय: एकशृ ग कहा जाता था क्योंकि पार्श्वचित्र मे केवल एक ही सीग दिखलाई पडता है। उस यूरोपीय जगली साँड के सामने लगभग निश्चित रूप से एक ऐसी वस्तु रहती है जो हडप्पा की मिट्टी पर चिह्न उतारने पर ध्वजक अथवा उसी प्रकार की चीज मालूम पडती है जिसे कभी-कभी जुलूस मे ले जाया जाता है। केवल एक ही मुहर मे इस ध्वजक के बदले अर्द्ध मनुष्य की आकृति दिखलाई पड़ी है जिसके सिर एव पूँछ पशु के हैं (प्लेट VIII, एफ)। प्रत्येक मुहर पर अलग प्रकार का अभिलेख है। इससे यह संभावना जाती रहती है कि इसका पशु अथवा अन्य किसी चित्रित वस्तु से कोई सबंध रहा होगा। अथवा, यह बार बार दोहराई जानेवाली स्तुति अथवा मत्र रहा हो (प्लेट VII)।

छापवाली मुहरें बहुत कम सख्या मे प्राप्त हुई है। किंतु जो भी मिली है वह इसलिए कि इन्हे फर्श पाटनेवाले-जैसे पदार्थों के साथ ही पका दिया गया था। मिट्टी अथवा फेयेस के त्रिभुजाकार प्रिज्मों को जिन्हें मैंके ने ताबीज बतलाया है, आयताकार मुहरो पर दबाकर पका दिया गया जिसके फलस्वरूप इनमे से कुछ बचे रह गए। इस क्रिया का सर्वोत्तम एव प्रामाणिक मुहर वह है जिसपर धागे एव चटाई के छाप मौजूद है।[1]

चित्र एव अभिलेख उत्कीर्ण मुहरो के सदृश्य ताबे की आयताकार छोटी टिकिया भी हैं। जहाँ सभी मुहरो पर भिन्न-भिन्न अभिलेख मिले है वहाँ मोहेंजोदडो-सग्रहालय मे सरक्षित टिकियो मे प्रत्येक पर अंकित चित्र से सबंधित अभिलेख मिलते हैं। उदाहरणत:, सीगवाले धनुषधारी, बैल, गैंडे, खरहे तथा लगातार फटेवाले धागे, इन सबके अपने अलग अभिलेख हैं। सबसे दिलचस्प बात यह है कि

१. फरदर एक्सकेवेशन्ज ऐट मोहेंजोदडो, वॉल० II, प्लेट CII, ४

हाथी तथा समष्टिक हाथी दोनों ही के अभिलेख एक है। मैके का यह विश्वास है कि ये टिकिया ताबीज थी, किंतु इसकी कोई सभावना नही है क्योकि लटकाने के लिए इसमे कोई छेद अथवा अन्य उपकरण नही है। अत इन्हे ताबीजों की पेटी में सजाकर रख देना ठीक नही है। अत हटर एव फैब्री का यह विचार बहुत अधिक संभावित मालूम पडता है कि ये एक प्रकार की मुद्रा थी जिनका प्रयोग व्यापारीवर्ग व्यापार-विनिमय मे करता था।[१]

पाकिस्तान के उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त मे चरसद्दा के निकट कुला ढेरी नामक स्थान पर प्रारभिक ऐतिहासिक काल के इसी तरह की पकी हुई मिट्टी की मूर्तियोवाली बडी सख्या मे टिकिया मिली है। इनपर शक, कुशान एव गुप्तकाल की उत्कीर्ण आकृतियाँ मौजूद हैं। किंतु इनमे एक मे भी कोई छेद नही मिला है, अत ये गुटके नही हो सकते है। इसलिए यह कहना कठिन है कि इनका व्यापारिक स केत के अलावा और कोई प्रयोग रहा होगा। हडप्पा मे निचली सतहो मे पाई जानेवाली सूक्ष्माकार मुहरें नि सदेह ऐसी ही किस्म की चीजे है। इनमे ४८ मुहरो पर तीन ही प्रकार के अभिलेख मिले है जिनमे [illegible] ३२ बार मिले हैं तथा यह और दूसरा [illegible] बहुत बार आयताकार मुहरो पर अकित मिले हैं।

हडप्पा की लिखावट सभी अर्थ मे मुहरो का एक आवश्यक अग है. अत. इसकी उत्पत्ति भी उसी समय अथवा कुछ पहले हुई होगी। यद्यपि तीन या चार विद्वानो ने लिप्यान्तरण एव अनुवाद करने की कोशिश की है, किंतु अबतक कुछ भी नही पढ़ा जा सका है। लिखावट निश्चित रूप से शब्दाशवाला चित्रलेख है। इसकी शैली क्रमिक परिवर्त्तन नही बल्कि अभिप्राय पर आधारित है। इसके लिए प्रोत्साहन लिखावट के ज्ञान से मिला।[२] तब उनलोगो ने नई लिखावट का आविष्कार क्यों किया ? यह ठीक है कि इसका निश्चित कारण हम कभी नही जान पाएँगे। सभवत इसका कारण एक भिन्न राष्ट्रीय अस्तित्व कायम करने का इरादा रहा होगा। एक कारण यह भी हो सकता है कि वे जिस लिखावट से परिचित थे वह उनकी बोली के उपयुक्त नही रही होगी अथवा यह भी कहा जा सकता हैं कि पूर्व की ९०० चिह्नोवाली कीलनुमा लिपि की अपेक्षा हडप्पा की ३९६ चिह्नोवाली लिपि विशेष सुधरी हुई साबित हुई हो।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि संभवत. बाटो का प्रयोग आवर्तकाल II

---

१. सी० एल० फैब्री, इंडियन कल्चर, वॉल० II न० १ पृ० ५२; जी० आर० हंटर, जे० आर० ए० एस०, १९३२, पृ० ४६६-५०३

२. डी० डीरिंगर, दि अलफाबेट, पृ० ८३, ८५

के अंतकाल के लगभग आरंभ हुआ होगा। उस काल के खंड में जी० के० कोष में प्राप्त कुल २१२ बाटों में केवल २६ मिले हैं। ये बाट मोहेंजोदड़ों के व्यावहारिक जीवन में विस्तार होने पर ही प्रयोग में लाए गए होंगे तथा इनकी प्रणाली मौलिक, अद्वितीय एव पेचीदी है। ये साधारणतः चर्ट से काटकर चिकना बनाए गए बन हैं। छोटे तथा बड़े बाटों में दुगुना का अनुपात है जैसे कि १, २, ४, से लेकर ६४ तक जो कि अगली इकाई १६० का २/५वाँ भाग है। इसके आगे १६ से गुणा करनेवाली सख्या है—३२०, ६४० तथा १६००, ३२०० एव ६४०० और ८००० अथवा १३०० का पाँच गुणा और १२८००० अथवा १६०० का आठ गुणा। २०० के अनुपातवाला एक बाट पाया गया तथा तिहाई हिस्सावाले दो ऐसे बाट पाए गए जिनका ८५७० ग्राम की इकाई का ८/३ अनुपात था।

दो मापक्रम भी पाए गए थे—एक मोहेंजोदड़ों में जो कि शख से आरी के द्वारा काटकर निकाली गई पेटी के रूप में है। यह १·३२ इच के दशमलव-मापक्रम मे विभाजित किया हुआ है तथा जो १३·२ इंच से एक फुट तक गया है। सर पिलडर्स के मतानुसार, यह पश्चिमी एशिया तथा प्रागैतिहासिक एव रोमन-यूरोप मे दूर-दूर तक प्रचलित था। दूसरा काँसे के छड के रूप में है जो हड़प्पा मे प्राप्त हुआ है। इसमे ०·३६७६ इंच की इकाइयाँ अकित हैं। यह २०·६२ इंच की लबाईवाले हाथ से संबधित है। जैसा कि ह्वीलर ने दिखलाया है कि मोहेजोदड़ों एव हड़प्पा-माप की एक श्रेणी का संबध एक ऐसे फुट से है जो १३·० से लेकर १३·२ तथा एक हाथ से जो २०·३ से लेकर २०·८ इंच तक का है।

अवशेष तत्त्व, जिनकी सूची ऊपर दी जा चुकी है, मिलकर सस्कृति का निर्माण करते है। ये धातुविज्ञान के उत्कृष्ट स्तर के हैं। यद्यपि हड़प्पानिवासियों को ताँबे एव काँसे के काम का अधिकांश तकनीकी ज्ञान प्राप्त था, किंतु स्तर-क्रम-निर्धारण में विश्वास के अभाव के कारण उसकी प्रगति का पता लगा सकना बड़ा कठिन हो गया है। आरभ मे बहुत-सी साधारण किस्म की वस्तुएँ थीं जो कि प्रारंभिक काल से ही बनाई जाती रही होंगी। ये हड़प्पा की खुदाईवाले सभी स्थानों पर निचले स्तरों में पाई गई हैं। ये वस्तुएँ निम्नलिखित हैं—चपटी कुल्हाड़ियाँ, छेनियाँ, आरियाँ, छुरे, तीर, शूलाग्र, उस्तरे, मछली पकड़नेवाले अंकुश तथा हत्थेदार ऐनक। ये सारी वस्तुएँ ताँबे की थी। साधारण चपटी कुल्हाड़ियाँ तथा ऐनक खुले साँचे मे ढाली गई थीं। छेनियाँ लोहे की गोल अथवा वर्गाकार छड़ों को हथौड़े से पीटकर बनाई गईं थीं। छूरे, तीर तथा पतले शूलाग्र धातु के पत्तरे को छेनी से काटकर बनाए गए थे। उसी प्रकार उस्तरे भी बने थे। इन सारी वस्तुओं का कठोरीकरण

एवं आकार तापानुशीतन एवं ठंडे हथौड़े से पीटकर किया जा सकता था। ताँबे की कुछ वस्तुओं का विश्लेषण करने पर कभी-कभी भारी मात्रा में संखियामिश्रित पदार्थ मिला है। इससे इनमें अधिक कठोरता आ गई। किंतु ऐसा अनुमान किया जाता है कि ऐसे संखियामिश्रित पदार्थ की उपस्थिति आकस्मिक है। साथ ही, कुछ अन्य वस्तुओं का विश्लेषण करने पर यह पता चला है कि काँसा बनाने के उद्देश्य से उनमें जान-बूझकर टीन मिला दिया गया था।

ताँबे एवं काँसे की हँडिया, कड़ाही तथा कटोरे बनाने के साधारण तरीके बहुत पहले ही लोगों को मालूम रहे होंगे। शायद धनी लोगों के घरों में मिट्टी के बर्त्तनों के अतिरिक्त ये पात्र रहते होंगे। गहरे बर्त्तनों के लिए खड़ा करनेवाले तरीके का प्रयोग किया जाता था। इस तरीके मे ताँबे अथवा काँसे की चौरस तश्तरी के चारो ओर किनारे को हथौड़े से पीटकर किनारा उठाया जाता है और तश्तरी को धीरे-धीरे घुमाया जाता है। इस प्रकार लगातार घुमाकर पीटते रहने से सकेंद्रीय गोल किनारा उठ जाता है। साधारण उथली कड़ाहियों एवं कटोरो को पीटने के कारण अदर की ओर भी हथौड़े के निशान बन जाते हैं। अत: ये बर्त्तन खोखला करके या अदर से छीलकर अथवा और भी किसी सरल तरीके से बनाए गए होगे। इस तरीके में लकड़ी के खोखले गढे में धातु रख दी जाती है और उसे हथौड़ी से पीटकर खोखली शक्ल का बना दिया जाता है।[1]

उत्पादन के इन सरल तरीकों के अतिरिक्त काँसे एवं ताँबे की कुछ चीजें साधारण साँचे मे मोमद्रवी विधि के द्वारा अथवा मोम पिघलाकर साँचा बनाने के विधि के द्वारा बनाई जाती थी। जिस स्थिति मे मनुष्यों एवं पशुओ की अधिकाश काँसे की मूर्त्तियाँ पाई गई हैं उनसे यह भी सभावना मालूम पड़ती है कि यह विधि पीरिअड II के उत्तरकाल मे आरंभ हुई थी। एक दूसरी अधिक विकसित विधि कटोरा अथवा मर्तबान के दो टुकड़ों को प्रमार्जन-विधि से जोड़ने की थी। मर्तबान की पेंदी को प्रमार्जन-विधि के द्वारा किसी वस्तु मे गढ़ दिया जाता था और सभवत: नोतलयुक्त कँधेवाले कटोरे के दो हिस्से को खड़ाकरके साट दिया जाता था (प्लेट IX)। जिन बर्त्तनो के बनाने में यह विधि प्रयुक्त की जाती थी वे सब पीरिअड IV के हैं।

अबतक हमलोग उन सभी तत्त्वो का परीक्षण कर चुके हैं जिन्हें हम सिंधु-सभ्यता की मुख्य सफलताएँ मानते हैं तथा इनसबों मे कुछ सुधार एवं कुछ नए तत्त्व

१. एच० एच० कौघलन, नोट्स ऑन द प्रीहिस्टोरिक मेटलरजी ऑव कॉपर एण्ड ब्रॉन्ज इन दि ओल्ड वर्ल्ड, पृ० ८८ और ९१

हमें देखने को मिलते हैं। अतः हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इस संस्कृति का एक सामान्य परिणाम अगतिशील परिपक्वता हुआ। किंतु यह मान लेना ठीक न होगा कि यह भारत के बाहर किसी क्षेत्र से अपने साथ पूर्ण विकसित लक्षण लेकर आई थी। साथ ही, यह मानना भी आवश्यक नहीं है कि इसका विकास धीरे-धीरे बहुत लंबे अरसे में हुआ था। सच तो यह है कि इसका विकास कहीं और हुआ था तथा पश्चिम एशिया में वह ऐसी संस्कृतियों को जन्म दे चुका था जिनके क्रमिक विकास से हम परिचित हैं। मोहेंजोदड़ो के संस्थापक अपने साथ इसका ज्ञान लेते आए थे। इस ज्ञान को यहाँ लागू करने में सबसे अधिक सफलता इसलिए मिली कि कुछ लोगों को यहाँ की नई परिस्थितियों में उस ज्ञान को लागू करने की बड़ी क्षमता थी।

आरंभ के लाल एवं पीले स्लिपवाले दुरंगे एवं पीपल के पत्तोंवाले काले एवं सरल नमूनेवाले बर्तनों को छोड़कर अधिकांश रँगे एवं बिना रंगवाले हड़प्पा के बर्तनों में हृदयग्राही सुन्दरता का अभाव है। मोहेंजोदड़ों-संग्रहालय गुलाबी रंग के प्रेरणाहीन पात्रों की पंक्तियों से भरा पड़ा है। इनमें अधिकांश बर्तन आकार में कुछ भिन्न है, किंतु मोटे तौर पर इन्हें लगभग छह बुनियादी वर्गों में बाँटा जा सकता है। हड़प्पा के नगरों एवं शहरों के संपूर्ण जीवनकाल में इन बर्तनों के आकार में परिवर्तन नहीं के बराबर हुआ। पीरिअड III के अंतिम चरण में नुकीले आधारवाले पानपात्र (बीकर) आए जिनके मध्य में सजावट के लिए चार या पाँच संलग्न रेखाएँ चारों ओर खिंची हैं। इसके साथ ही हड़प्पा में पाए जानेवाले सबसे अधिक लोकप्रिय दीर्घवृत्ताकार बर्तन धीरे-धीरे चपटे और पहले की अपेक्षा कम आकर्षक बनने लगे। इनसे परिवर्तन के कुछ चिह्न मिलने लगे। कुछ को छोड़कर हड़प्पा-संस्कृति के अधिकांश रँगे बर्तन निम्न कोटि के हैं। जो थोड़े बिना टूटे बड़े आकार-वाले मर्तबान मिले हैं उनमें प्रतिच्छेदन वृत्तों के नमूनेवाले बर्तन बहुत आकर्षक हैं तथा कुछ पहलेवाले नमूने काफी सुन्दर हैं, किंतु अधिकांश मैसी-सजावट से भरे हैं और आकर्षक नहीं दीखते। ये सिंध एवं बलूचिस्तान के निकटवर्ती इलाकों के सम-कालीन बर्तनों की तुलना में बिल्कुल नहीं जँचते।

हड़प्पा तथा मोहेंजोदड़ों में कुम्हार बड़ी संख्या में मनुष्य तथा पशुओं की पकी हुई मिट्टी की लघुमूर्त्तियाँ बनाया करते थे (प्लेट X)। किंतु हड़प्पा-संस्कृति से संबंधित पुस्तकों में छपी हुई तीन या अधिक लड़ोंवाली माला पहनी हुई महिलाओं की लघुमूर्त्तियाँ बहुत कम मिली हैं—हड़प्पा में एक और मोहेंजोदड़ो में पाँच। साधारणतः यह मालूम पड़ता है कि इनका बहुत प्रचलन था, किंतु वास्तव

में ऐसी बहुत कम प्रतिमाएँ मिली हैं। अधिकांश मूर्तियों के गले में कंठ के चारों ओर हँसली की तरह की माला है (प्लेट X, मध्य में)। हड़प्पा में एक ऐसे प्रकार की पंखाकार्ती पगड़ी मिली है जो मोहेंजोदड़ो में नहीं पाई जाती। ऐसी पगड़ी पहने मूर्तियों के दोनों हाथ सिर तक उठे हैं। शायद ये मूर्तियाँ किसी देवी की नहीं, बल्कि उपासक की है। महिलाओं की अधिकांश मूर्तियों को देखने से ऐसा मालूम पड़ता है कि ये एक प्रकार की मशीन से बनाई गई हैं। इनके सिर पर की टोपी कंघानुमा है। इनके भद्दे-चुटके चेहरे पर चौरस गोल आँखें हैं, गले मे एक लड़ीवाला हार है, कमर मोटी तथा उरोज उभरे हैं तथा कमर के नीचे संकीर्ण वस्त्र है। किंतु इसे देखकर यह नहीं कहा जा सकता है कि सिंधु-घाटी की नगर-निवासी-महिलाओं की यह पोशाक रही होगी। उसी प्रकार पुरुषो की नग्न मूर्त्तियाँ देखकर यह नहीं कहा जा सकता है कि यहाँ पुरुष नंगे घूमते-फिरते थे (प्लेट X)। इस क्षेत्र मे कहीं भी, खासकर हड़प्पा मे, तो जाडे के मौसम मे लोग कभी नगे रह ही नहीं सकते थे। सच तो यह है कि एक महिला की मूर्त्ति मिली है जिसमे वह महिला कंबल का वस्त्र पहने दिखलाई गई है। जाड़े के मौसम मे संभवतः सभी लोग ऐसा ही वस्त्र पहनते रहे होंगे।

हड़प्पा-निवासियों के धर्म के संबंध मे हमलोगो का ज्ञान बहुत ही सीमित है। उनके विश्वासों के बारे मे अधिकांशतः हम मुहरो पर बने चित्रो के आधार पर अनुमान लगाते हैं। इसका एक सर्वोत्तम प्रमाण एक मुहर है जिसपर एक देवता की मूर्त्ति अंकित की गई है। वह सींगवाला देवता योग की मुद्रा मे बैठा है। उसके सामने दो आराधक घुटने के बल बैठे है तथा उनके पीछे दो बहुत बड़े नाग हैं। एक दूसरी मुहर पर सींगवाला एक देवता स्पष्ट रूप से चित्रित किया गया है। देवता खड़ा है और उसके पीछे पीपल के पेड़ की शाखाएँ है। उस देवता की पूजा एक व्यक्ति कर रहा है जिसके पास एक बड़ा-सा बकरा है और पाँच अथवा छह पुजारिनें है (प्लेट VIII, एच)। एक आदमी घुटने के बल बैठकर वृक्ष के नीचे चढ़ावा दे रहा है। बैठा हुआ देवता महालिंगी है जिसके सिर पर त्रिशूल के आकार का सींग-वाला शिरस्त्राण है तथा उसके आस-पास पशु बैठे हैं। संभवतः वह पशुपति (पशुओं का देवता) है। इसके अतिरिक्त, ताँबे की टिकियो पर उस देवता को सींगवाले शिकारी के रूप मे अंकित किया गया है। ऐसा जान पड़ता है कि इसका प्रस्तर-कालीन युग के सींगवाले शिकारी देवता तथा कॉर्नुकोपिया देवी के प्रचलित सम्प्रदाय के साथ संबंध रहा होगा। सींगवाले देवता की अपेक्षा महिलाओं की लघुप्रतिमाएँ बड़ी संख्या मे प्राप्त हुई है। इससे यह संभावना प्रतीत होती है कि वहाँ के लोग देवी की

पूजा किया जाते थे। बहुत-सी ऐसी मुहरें मिली हैं जिनपर सांडों तथा साँडों के बलिदान के चित्र अंकित हैं। इन चित्रों के पीछे पवित्र वृक्ष है और साथ ही पवित्र स्तंभ भी है जिसपर देवता का सींगवाला शिरस्त्राण तथा गूँथे हुए बाल रखे हैं (प्लेट VIII, डी, ई एवं जे)। अतः इस बात की संभावना मालूम पड़ती है कि हड़प्पा के धर्म में सींगवाला देवता, देवी माँ तथा पवित्र पीपल वृक्ष की पूजा होती थी और साथ ही साँड़ों की लड़ाई और बलि भी होती थी। मीनोअन-सभ्यता में भी ऐसी विधियाँ पाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त, यह सुझाव भी युक्तिसंगत मालूम पड़ता है कि बैठा हुआ महालिंगी देवता शिव का आदिरूप है।

इन नगरों के आकार तथा इन स्थानों में की जानेवाली खुदाई के विस्तार को ध्यान मे रखकर यह कहा जा सकता है कि पत्थर अथवा धातु के आधार पर बनाई जानेवाली कलाकृतियाँ बहुत थोडी हैं। कुल मिलाकर शिल्पकला की तेरह वस्तुएँ प्राप्त हुई है जिनमे तीन पशुओं के सहित ग्यारह मोहेंजोदड़ो से, दो हड़प्पा से तथा एक चन्हूदडो से प्राप्त हुई हैं। मोहेंजोदडो से प्राप्त सभी लघुप्रतिमाएँ पुरुषो की है जो शायद ईश्वर अथवा पुरोहित-राजा की है। इनमे सबसे प्रसिद्ध प्रतिमा वह है जिसपर एक दाढीवाले व्यक्ति के सिर और कधों की आकृति बनी है तथा उसका वस्त्र चिपकवाँ नमूने का है। इसकी शैली एशियाई, सागरी तथा कादशी नमूने से बहुत मिलती-जुलती है जैसा कि चतुर्थ थॉथमेस के रथ पर अंकित है। जिन प्रतिमाओं पर एक से अधिक सिर मिले हैं उनपर पुरुष झुके हुए अथवा बैठे दिखलाए गए हैं। इन सभी शिल्पकला-कृतियों पर एक ही प्रकार का निरूपण दिखलाया गया है तथा सबोंकी आकृतियाँ एक दूसरे से मिलती-जुलती है। कुछ मूर्तियाँ बुरे मौसम के प्रभाव से खराब हो गई हैं और कुछ संभवत अपूर्ण रह गई हैं। फिर भी, यह कहा जा सकता है कि ये बहुत कलात्मक नहीं है।

हड़प्पा की दो लघुप्रतिमाएं अभी भी विवाद की वस्तुएँ हैं। पहली बात तो यह है कि प्रस्तर-शिल्प की केवल ये ही वस्तुएँ उस स्थान पर पाई गई हैं। इनमें एक पुरुष-मूर्ति का धड है जिसकी ऊँचाई ९ सें० मी० है। यह देखने से द्वितीय शताब्दी की जान पडती है। दूसरी प्रतिमा एक नर्तकी की है जो १० सें० मी० ऊँची है। दोनों के सिर नहीं हैं। दोनों के सिर अलग किए जाने लायक हैं (प्लेट XI)। पिगॉट के विचार में ये हड़प्पायुग के हैं। इस मामले में वह मार्शल का समर्थन करता है।[१] हड़प्पा में बहुत-से बुद्धकालीन अवशेष मिले हैं, इसलिए इन शिल्प-वस्तुओं

---

१. प्रीहिस्टॉरिक इंडिया, पृ० १६६-७

की ओर अधिक प्रमाण प्राप्त हुए बिना हड़प्पा-संस्कृति का कह देना उचित नहीं होगा। इन्हें हड़प्पा-संस्कृति का नहीं मानने के पक्ष मे सबसे मुख्य तर्क यह है कि इनकी निर्माण-कलाशैली बिल्कुल भिन्न है, क्योंकि हड़प्पा-संस्कृति की शिल्पकला जड़ तथा अचेतन है। इसका एकमात्र अपवाद मोहेंजोदड़ो से प्राप्त काँसे की नर्तकी है जो कि बिल्कुल जड़ नही प्रतीत होती। किंतु साथ-ही-साथ इसके शरीर की रूप-रेखा वैसी स्पष्ट नही है जैसी हड़प्पा में प्राप्त मूर्त्ति के धड़ मे दिखलाई गई है। उसकी अद्‌भुत मुद्रा इस बात को नही छिपा सकती है कि उसके अंग नली के आकार के तथा आयोजित हैं (प्लेट XII)। काँस-कला हड़प्पा-निवासियो की सर्वोत्तम कला-कृति थी। यह अच्छी-से-अच्छी मुहर से भी उत्तम थी। मोहेंजोदड़ो मे पायी गयी पशुओ की काँसे की मूर्त्तियो को देखने से यह पता चलता है कि उनमे भी वही अव्यक्त निष्पत्ति मौजूद है जो पकी हुई मिट्टी के नक्काशीवाले साँडो मे थी (प्लेट IX)।

इस संस्कृति को ताम्रपाषाणी कहा जाता है, क्योंकि हमे इस बात का प्रमाण मिला है कि थोडे-से सामान्य प्रकार के पत्थर की वस्तुओ का प्रयोग होता था। साधारण किस्म की उपयोगी छुरियाँ लंबी तथा समानांतर पट्टीवाली हुआ करती थी। ये चर्टी चकमक पत्थर की बनी होती थी तथा इसके ब्लेड-शल्कल पट्टी के आकार होते थे। ये ब्लेड बहुत ही सामान्य किस्म के है और ये सभी स्थानो पर, विशेष रूप से मोहेंजोदड़ो मे पाये जा सकते हैं। इसके बहुत-से नमूने है जिनका पिछला भाग धारहीन है, ब्लेड नुकीले है तथा बाँधने के लिए स्पर्श और खाँचे बने है, लेकिन अधिकांशत: छूरियो के ब्लेडो पर कोई खाँचा नहीं है। कुछ मोटे ब्लेड भी मिले है जो बहुत चिकने एवं परिष्कृत एक किनारा घर्षित एव गोल है। इनका व्यवहार बर्त्तनो को चमकाने के लिए किया जाता रहा होगा।

यह चर्टी चकमकपत्थर प्रसिद्ध सक्कर-बाँध के निकट सिंधु नदी के बायें किनारे रोहरी नामक स्थान पर पाया जाता है। सक्कर-बाँध के पास सिंधु नदी पर एक प्रसिद्ध रेलवे पुल भी है। ब्लेड, क्रोड तथा त्रिकोण खंडित शल्कल (जिनके दो और पार्श्व-चिह्न हैं) ये सब हड़प्पा से प्राप्त वस्तुएँ रोहरी के कारखानेवाले उस स्थान पर मिली है जहाँ चकमकपत्थर की गुटिकाएँ ईओसीन चूनापत्थर में मिलती है। चकमकपत्थर पर काम करने की विधि तथा चोटीदार शल्कल के प्रयोग (जो इस प्रकार के पत्थर की मुख्य विशेषता है) का वर्णन द्वितीय परिच्छेद मे किया जा चुका है। इन शल्कल-ब्लेडो के अतिरिक्त, पत्थर का उपयोग गदाशीर्ष के लिए भी किया जाता था। किंतु हड़प्पा में किसी भी स्थान पर तराशा हुआ, घर्षित अथवा परिष्कृत कुठारशीर्ष नहीं पाया गया है। मोहेंजोदड़ो में चार तराशे हुए चकमक-

पत्थर की वस्तुएँ मिली हैं जिन्हें गॉर्डन चाइल्ड ने छल्लेवाली-कुल्हाड़ी बतलाया है। ये बहुत बड़े आकार की तथा भारी हैं। इनका आकार तथा वजन इतना अधिक है कि ये शायद कुल्हाड़ी के रूप में व्यवहार नहीं किए गए होंगे। संभवतः, ये एक प्रकार का हल का फाल रहे होंगे जैसा कि मैके ने बतलाया है।

इस सभ्यता के अवशेषों को देखकर यह पता चलता है कि यहाँ अच्छे ढंग से खेती होती थी और काफी धन इकट्ठा होता था, जो शासन एवं सभी प्रकार के विशेषज्ञ कारीगरों पर खर्च किया जाता था। हड़प्पा तथा मोहेंजोदड़ो मे खुदाई करने पर विशालकाय इमारतें मिली हैं जो अन्नागार के अतिरिक्त और कुछ भी नही हो सकती है। इन दोनो नगरो में ये अन्नागार किले की बगल में अथवा उसके क्षेत्र मे पाए गए है। इनमे से एक मे वायु-आगमन के लिए भित्तिकाएँ बनाई गई हैं और दूसरे मे हवा के आने-जाने के लिए आड़ी-तिरछी किस्म के रास्ते बनाए गए हैं ताकि अनाज अच्छी दशा मे रह सके। हड़प्पा में अन्नागारो के निकट मजदूरों के रहने के लिए लाइनें भी बनाई गई है। अन्नागारो तथा कुली-लाइनो के बीच चबूतरों की श्रेणियाँ बनी थी जिनपर बैठकर मजदूर अनाज पीसा करते थे।

इसमे सदेह नही है कि यहाँ की अर्थव्यवस्था मे बड़े पैमाने पर अन्न उपजाया जाता था, लेकिन खेत जोतने तथा फसल काटनेवाले औजार बहुत ही कम सख्या मे मिले है। मैके की पुस्तक 'फरदर एक्सकेवेशन्स' मे प्लेट CXXVIII पर ७ एव १२ नबर की वस्तुओं के जो चित्र दिए गए हैं वे क्रमशः हँसिया की नोक तथा हत्थे कहे जा सकते हैं, कितु उस क्षेत्र मे धातु के बने हँसिया के फलक होने का एक भी स्पष्ट एव निर्णयात्मक प्रमाण नही मिला है। यहाँ के नगर अथवा गाँव-वाले स्थानो पर धातु अथवा पत्थर की कोई भी ऐसी वस्तु नही मिली है जिसे कुदाल के रूप मे व्यवहार किया जाता रहा होगा। यद्यपि दन्तुर धारवाले कुछ ब्लेड मिले हैं, लेकिन किसी पर स्ट्रॉ-पॉलिश का कोई चिह्न नही है। यह सभव है कि लकड़ी का हल चलाया जाता था, लेकिन यदि उसमे धातु का फाल लगाया जाता होगा तो व्यवहार के बाद खराब हो जाने पर धातु की उस पट्टी के प्रयोग का सबंध उससे प्रस्थापित नहीं किया जा सकता। बाँस की धारवाली फट्ठी के द्वारा फसल काटी जाती रही होगी। कितु यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि जहाँ ऐसे औजारो के प्राप्त होने की अधिक-संभावना है वैसे गाँवों की अभी पूरी तरह खुदाई नही की गई है।

यह सभव है कि सिंधु-सभ्यता मे लोगों के दैनिक जीवन तथा अर्थ-व्यवस्था मे कृषक-दासों का महत्त्वपूर्ण स्थान था। पकी हुई मिट्टी की मूर्तियाँ मिली हैं जिनमे पुरुष अपने घुटने पकड़कर बैठे दिखलाई पड़ते हैं। ऐसी मूर्तियाँ बड़ी संख्या मे मिली हैं। हड़प्पा-संग्रहालय में ऐसी ... मूर्तियाँ हैं। कुछ मूर्तियों के सिरों

पर गोल टोपियाँ हैं जिनपर धारियाँ और ओढ़ने गुदे हैं और उनके कॉलर विभिन्न ढंग से आगे की ओर निकले हैं। संभवत: ये दास हैं। इस प्रकार का आगे की ओर निकला हुआ कॉलर पकी मिट्टी के एक साँड़ की मुहर पर भी अंकित है और साँड़ के दोनों ओर कीप के आकार की पच्चड़ें हैं। इसे देखने से ऐसा मालूम पड़ता है कि यह प्रार्थना के लिए बलिदान का साँड रहा होगा और उसके कॉलर मे धूप यह अन्य अर्पण की कोई वस्तु रखने के लिए कीप के आकार की कोई चीज रही होगी जो कि बलिवाले पशु के निकट रखना उपयुक्त समझा गया होगा। यदि इस साँड़ को अथवा अन्य साँड़ों की मूर्तियों को बलि का पशु समझा जाए तो क्या पुरुषों को अन्य मूर्तियों को भी बलि का अर्पण नही समझा जा सकता है? यदि यह सच है तो बलि चढाने के लिए दासों से अच्छा और क्या रहा होगा?

कृषिकार्य में संलग्न मजदूरवर्ग के अतिरिक्त यातायात के व्यवस्था की भी आवश्यकता थी ताकि अनाज के बोरो को केन्द्रीय अन्नागारो मे ले जाया जा सके। यदि यह कृषि-उत्पादन निर्यात की वस्तु था तो समुद्र-पार ले जाने के लिए भी यातायात-व्यवस्था की आवश्यकता थी। उन स्थानो पर गाडियों के ढाँचे के मिट्टी के नमूने भी मिले हैं, जिन्हे जोडने पर आजकल सिंध मे चलनेवाली बैलगाडी से बहुत कुछ मिलते-जुलते आकार की गाडी बन जाती है। इसके अतिरिक्त, पूरे आकारवाली गाडी के चलने की लीक भी मिली है। दोनो पहियो के बीच की दूरी लगभग ३ फु० ६ इ० है। यही माप इन गाडियो की आज भी है।[१]

यदि बैलगाडियाँ केवल शुष्क मौसम में ही चलें तो इनके लिए बहुत अच्छी किस्म की सडको की आवश्यकता नही होती है, क्योंकि गाड़ियाँ किसी भी सीधे मार्ग होकर जा सकती है, यदि राह में कोई प्राकृतिक अड़चन न हो तो। स्थलमार्ग होकर बलूचिस्तान के साथ अथवा उसके रास्ते से दूरस्थ प्रदेशो के साथ व्यापार करने के लिए अवश्य ही व्यापारी कारवाँ के साथ जाते रहे होंगे। इसमे आज भी कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ है सिवा इसके कि अब बोझ मुख्यत ऊँटों पर ले जाये जाते हैं। समुद्र द्वारा व्यापार होता था या नही, इसका हम कोई निश्चित प्रमाण नही दे सकते हैं; लेकिन इसकी अधिक संभावना है। एक मुहर पर समुद्र में नहीं बल्कि नदी मे चलनेवाली नाव का चित्र अंकित है। इसके अतिरिक्त, एक ठीकरी पर कुछ लकीरें मिली हैं जिन्हें नाव माना गया है। इन लकीरों को देखकर स्पष्ट रूप से नाव का प्रमाण नहीं मिलता है, परंतु इनका और कोई दूसरा अर्थ निकालना संभव नहीं मालूम पड़ता है।

१. ह्वीलर, हड़प्पा, १९४६, एंशियंट इंडिया, नं० ३, पृ० ८५

सिंधु-सभ्यता की अधिक महत्त्वपूर्ण विशेषताओं का वर्णन करने के बाद अब हम विदेशों के साथ इसके संपर्क से संबंधित प्रमाणों का पुनरावलोकन करेंगे, क्योंकि इन्हीं पर हमारा अन्वीक्षात्मक कालक्रम आधारित है। सिंधु नदी के इलाके में पाई गई विदेशी वस्तुओं में पत्थर के बर्तन का एक टुकड़ा मोहेंजोदड़ो मे २८·१ फु० की गहराई में प्राप्त हुआ है। यह निःसंदेह विदेशी उत्पत्ति का है तथा इसका कुछ हद तक वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है। इसकी तिथि ई० पू० २४५० से लेकर २४०० तक के बीच होने का सुझाव दिया गया है, क्योंकि जिस विस्तृत इलाके में ऐसे बर्तन पाए गए हैं वे प्रारंभिक डायनैस्टिक III-काल के हैं, और ऊर की राजकीय कब्रों के समकालीन हैं। इन राजकीय कब्रों की तिथि ई० पू० २५वीं सदी मानी जाती है। यदि हम मोहेंजोदड़ों की स्थापना की तिथि ई० पू० २६०० निश्चित करें तब बर्तन के इस टुकडे की स्तरीय स्थिति को इसके लगभग १७० वर्ष बाद निश्चित करना युक्तिसंगत होगा। पत्थर के बर्तनों से हमे आगे चलकर भी सहायता मिलती है। ऊपरी सतह पर साधारण सजावटवाला तथा मेही-किस्म से उत्कीर्ण किया हुआ बर्तन मिला है जिसकी तिथि मोहेंजोदडों के इलाके मे ई० पू० १९५० मालूम पडती है। इससे यह भी कल्पना की जा सकती है कि ऐसे बर्तन मकरान मे ई० पू० २१०० से २००० के बीच बनाए जाते थे।

किंतु जिस संस्कृति मे ऐसे बर्तन बने उसकी तिथि अधिकांशतः सिंधु-सभ्यता के समान उन मुहरों के प्रमाणो पर निर्भर करती है जो मेसोपोटामिया में भिन्न-भिन्न स्थानों पर मिले हैं। ह्वीलर ने इनके उन प्रमाणों का सावधानी के साथ अध्ययन किया है जिनकी तिथि कुछ निश्चयात्मक ढग से स्थिर की जा सकती है। उन्होंने यह लिखा है कि "प्रचलित तिथि-प्रणाली के आधार पर इन संभावनाओ को समाविष्ट करनेवाली तिथि ई० पू० २५०० से लेकर १५०० तक है तथा ई० पू० २३५० मुख्य केंद्र (फोकस) बिंदु है।"[१] इसकी अधिकांश मुहरें सारगन के युग की ओर संकेत करती हैं क्योंकि इस युग में सिंधु-घाटी के साथ बहुत ही सक्रिय सांस्कृतिक संबंध था। टेल आसमर नामक स्थान पर फ्रैंकफोर्ट के द्वारा प्राप्त वस्तुओ के प्रमाण से भी इस संकेत का पुष्टिकरण होता है। इनमें गुर्दे के आकार का हड्डी के बने हुए जड़ाऊ, बूंदियों से सुसज्जित बर्तन तथा एककेंद्रीय वर्गोंवाली मुहर मिली है। ये सब हड़प्पा-संस्कृति के समान तथा सारगन के काल की वस्तुएँ हैं। हड़प्पा के सभी स्थानों पर पाए जानेवाले कार्नेलियन के निक्षिप्त मनके ऊर की शाही कब्रों में पाए जानेवाले उन मनकों के समान हैं जिनका चित्रण ऊले ने किया है। केवल सरल

१. दि इंडस सिविलाइज़ेशन, पृ० ८६

आकारवाले ही नहीं बल्कि प्रकाश बिखेरनेवाले वृत्त तथा रेखाओं के नमूनेवाले मनके भी मिले हैं। इनके अतिरिक्त, मोहेंजोदडो मे और भी तीन खांचेदार पेस्ट मनके मिले हैं जो कि लगभग उसी समय सुमेर मे भी बहुत प्रचलित थे।

ह्वीलर ने दुर्ग, अन्नागार तथा विशाल स्नानागार के निर्माण का काल मैके द्वारा निर्णित अतर्वर्ती युग मे निश्चित किया है, किंतु ई० पू० २३५०' से लेकर १८५० तक की यह बडी लबी अवधि है। विशाल स्नानागार की नाली मूल अन्नागार की इमारत का एक कोना काटती हुई जाती है तथा दुर्ग की रक्षा करनेवाली दीवारो के कुछ भाग पहले से कुछ भिन्न तरीके से बनाए गए हैं। यह सब देखकर यह स्पष्ट हो जाता है कि मुख्य दुर्ग का निर्माण ई० पू० २३५० से लेकर २२०० के बीच आरंभ हुआ होगा। इस युग मे इलाम तथा सुमेर के साथ अत्यत घनिष्ठ मपर्क था।

ई० पू० २२५० तथा २२०० के बीच विशाल स्नानागार एव इसके सलग्न भवनो के निर्माण के तथा बिटुमन के प्रयोग के रूप मे हम एक नई चीज पाते हैं। चारों ओर की दीवारों तथा फर्श के पीछे एक इंच मोटा एशफाल्ट पत्थर की परत थी। बिटुमन के इस विशेष प्रयोग के सबध मे आर० जे० फारबेस ने शोध-कार्य करके आधार-सामग्री तैयार की है। उन्होने मोहेजोदडो मे प्राप्त हुए नमूनो का विश्लेषण किया जिससे यह पता चला है कि यहाँ परिष्कृत एशफाल्ट-पत्थर की मस्तगी थी।[1] इस प्रकार परिष्कार करने की प्रक्रिया के लिए काफी मात्रा मे जलावन की लकड़ी की आवश्यकता थी, जो कि उस समय सिंध मे अवश्य ही प्राप्य रही होगी। परिष्कृत एशफाल्ट मे मेसोपोटामिया मे व्यवहार किया जानेवाला शुद्ध बिटुमन की अपेक्षा बहुत अधिक खनिज-पदार्थ रहे होगे। इनमे किसी प्रकार के कडा करनेवाले पदार्थ के बिना ही अच्छी मस्तगी के गुण मौजूद थे। मोहेजोदडो मे व्यवहार मे लाया जानेवाला एशफाल्ट पत्थर ऐसा था जिसे सीधे करनी के द्वारा लगाया जा सकता था। टेल आसमर एव ऊर मे पाए जानेवाले नमूने का विश्लेषण करने से यह पता चलता है कि मोहेंजोदडो का बिटुमन सिंध, सिंध-बलूच-सीमा अथवा पजाब मे प्राप्त स्थानीय पत्थर एशफाल्ट से बना था। यद्यपि बिटुमन का आयात मेसोपोटामिया से नही होता था, फिर भी टेल आसमर में इसके बडे पैमाने पर व्यवहार किए जाने से यह पता चलता है कि पानी रोकनेवाले पदार्थ के रूप मे इसका ज्ञान शायद ई० पू० २३०० तथा २२५० के बीच सारगनकालीन मेसोपोटामिया से प्राप्त हुआ था।

---

१. फॉरबेस, बिटुमेन ऐंड पेट्रोलियम इन् ऐंटीक्विटी, लीडेन, १९३६, पृ० २९, ३८, ४२ एव ५८

यद्यपि ठोस रूप में बहुत थोड़े संकेत मिले हैं, किंतु यह मान लेना युक्तिसंगत होगा कि ई० पू० २४०० तथा २१५० के बीच सिंधु-घाटी एवं सुमेर के बीच व्यापारिक संबंध कायम था। संभवत: यह संबंध सुमेर पर गूटी-आक्रमण के साथ खत्म हो गया। अब प्रश्न यह उठता है कि हड़प्पा-निवासी कैसी वस्तुओं का निर्यात तथा आयात करते थे। दोनों ही देशों मे हम इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं पाते हैं। अत. हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ये वस्तुएँ उपभोग-योग्य थीं। कपड़े मे लिपटी तांबे की वस्तुओं के साथ कुछ बुनी हुई चीजें मिली थी जिनकी खुर्दबीन से परीक्षा करने पर यह पता चला है कि यह सादा बुना हुआ सूती कपड़ा था। नम मिट्टी में क्षार तथा तांबे के संपर्क से जो धात्विकी नमक बना, उसी की सहायता से कपड़े का वह अवशिष्ट चिह्न मिल सका है।[1] अत. इस बात की पूरी सभावना है कि सूती कपड़े तथा कच्चे सूत की गांठें निर्यात की जाती रही होगी। इसके अतिरिक्त, हड़प्पा के शहरो और उसके आस-पास के इलाको को देखने से यह पता चलता है कि समतल भूमि मे सिंचाई का अच्छा प्रबंध था। अत: वहाँ कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था थी जिसके कारण वहाँ अवश्य ही आवश्यकता से अधिक अनाज उपजता रहा होगा। नागरिक समुदायो को खिलाने के बाद तथा जगलों के रहनेवाले शिकारी तथा अर्ध-घुमक्कड चरवाहो आदि को चीजो के बदले अनाज देने के बाद भी निर्यात करने के लिए काफी मात्रा मे अन्न बच जाता था। रोमनकाल में भी हड़प्पा-निवासियो को गुजरात से जो थोड़े कीमती पत्थर प्राप्त होते थे उन्हे वे टुकडो अथवा मनकों के रूप मे निर्यात कर देते थे।

अब प्रश्न यह उठता है कि इसके बदले मे हड़प्पा-निवासियो को क्या मिलता था। सिंध मे ऐसी चीजें बहुत कम मिली हैं जिन्हे मेसोपोटामिया का कह सकते हैं। अत: यह सभव है कि आयात की वस्तुएँ नष्ट हो गयी होंगी। आयात की वस्तुओं मे दास रहे होगे। इनका आयात और निर्यात दोनों ही हुए होगे। किंतु इन दासों मे कोई ऐसा खास गुण अवश्य रहा होगा, जो इनका आयात करनेवाले देश के लोगो में साधारणत: नहीं रहा होगा। केवल साधारण दासो का विनिमय अर्थहीन मालूम पड़ता है, क्योंकि हड़प्पा-निवासियो को अपने अड़ोस-पड़ोस के इलाकों में ही काफ़ी संख्या में साधारण मजदूर मिल जाते होंगे। इसके अलावा, दासों के विनिमय का एक उद्देश्य यह भी रहा होगा कि आयात किए हुए दास भागकर कहीं जा नहीं सकते थे तथा भाग जाने पर भी आसानी से पकड़े जा सकते थे। इनके अतिरिक्त, तांबा,

१. मैके, फर्दर एक्सकेवेशन्स ऐट मोहेंजोदड़ो, पृ० [illegible] एवं [illegible]

जस्ता तथा टीन का भी आयात होता था। ये चीजें धातु के रूप में आती थीं तथा हड़प्पा के ठठेरे इन्हें गलाकर बर्तन इत्यादि बनाते थे। टीन तथा जस्ता उप-महादेश में और कहीं भी नहीं पाया जाता है तथा तांबा भी अधिक मात्रा में नही मिलता है। संभवतः सरस्वती नदी के किनारे हड़प्पा के अवस्थापनो के साथ-ही-साथ राजपूताना तथा दक्षिण-पूरब पजाब मे तांबे की खानों का पता चला होगा। किंतु यह संभव है कि पिरीअड II के अत तक ये धातुएं ईरान से मगाई जाती रही होंगी।

लाजवर्द, आमेजनाइट, हिरणो के सींग, जेड, फ्यूशाइट आदि कुछ चीजों के बारे में यह कहा जाता है कि ये सब अधिक दूरस्थ स्थानो से आयी। लाज-वर्द जो कि सिंधु के नगरो मे नहीं मिलता है अवश्य ही अफगानिस्तान से आया होगा, क्योंकि वहां तथा खासकर बदख्शां मे यह बहुतायत से पाया जाता है। आमेजनाइट मोहेंजोदड़ों से ४०० मील की दूरी पर गुजरात से आता है जहां कार्नेलिअन, गोमेद आदि और भी दूसरे बहुमूल्य पत्थर मिलते हैं। जिन सींगो के नष्टप्राय अवशेष मिले हैं वे शायद सांभर के हैं जो उस समय सिंध मे रहा करते थे। जेड तथा फ्यूशाइट बहुत दूर से आए होंगे। लेकिन यह भी संभव है कि ये कुछ टुकड़े सामान्य व्यापार-मार्ग मे नहीं बल्कि कुछ व्यक्तियो के द्वारा निजी आवश्य-कताओं के लिए लाए गए होंगे।

हड़प्पा में दो अवस्थापन थे जिन्हें व्यापार-चौकी कहा जा सकता है। इनमे से एक जिसका नाम सुत्कागेन दोर है तथा जो फारस एव बलूच-मकरान की सीमा पर दश्त नदी के किनारे बसा है उस क्षेत्र के लिए तथा फारस की खाड़ी तक समुद्र-व्यापार के लिए मुख्य केंद्र था। यद्यपि सुत्कागेन दोर समुद्र से २५ मील की दूरी पर है, फिर भी नदी के किनारे स्थित है तथा समुद्र के किनारे के कई स्थानो पर से बराबर दूरी पर है। सुरक्षा की दृष्टि से भी इस स्थान का बहुत अच्छा चुनाव हुआ है, क्योंकि यह बलुआपत्थर की दो मेडों के बीच स्थित है। यद्यपि बहुत-सी हड़प्पा-सस्कृति की वस्तुएं पाई गई हैं किंतु जो थोडी रंगी हुई ठीकरियां प्राप्त हुई हैं उनपर कुल्ली-संस्कृति का प्रभाव दिखलाई पड़ता है।

दूसरी व्यापार-चौकी जोब मे डाबरकोट नामक स्थान पर है। इसके द्वारा हड़प्पा का उत्तर बलूचिस्तान के किसानों के साथ सपर्क स्थापित था। पेरियानो गुंडाई मे ही हड़प्पाकालीन आकारवाले बर्त्तन पाए गए हैं। यद्यपि वह वास्तव में कोई अवस्थापन नहीं था, फिर भी ऐसा जान पडता है कि यहां डाबरकोट से बर्त्तन आए थे। डाबरकोट के निकट डूकी नामक स्थान पर हड़प्पा के रंगे हुए बर्त्तनों के

मकान कच्चे बर्तन मिले हैं। किसी और दूसरे स्थान पर हड़प्पा-संस्कृति का और कुछ भी नहीं पाया गया है। अतः पेरियानो III के निवासी निस्संदेह पूर्णरूपेण सुसंगठित थे। हड़प्पा-संस्कृति का उन पर कोई अनतिक्रमण नहीं हुआ था।

अतः हमने जो तथ्य-सामग्रियाँ एकत्रित की उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि आरंभ में हड़प्पा-निवासियों को काफी ज्ञान था फिर भी इस संस्कृति मे आगे चलकर बहुत-से सुधार तथा नई बातें आई। अंत में मुख्यतः जलवायु तथा बाह्य उद्दीपन के अभाव मे वहाँ भी गतिहीनता आ गई। कुछ समय के बाद नए खून तथा नए विचारो का आना बद हो गया और हड़प्पा की मृतप्रायः स्थिति को गति प्रदान करनेवाली कोई शक्ति न रही। आरंभ मे हड़प्पा-निवासियों को नई भूमि में आने का उद्दीपन था, किंतु एक बार वहाँ का स्वामी बन जाने के बाद वह उद्दीपन कायम नहीं रह सका।[१] जो कठिनाइयाँ उनके सामने आईं उनके फल-स्वरूप उनकी सस्कृति की प्रगति हुई और वह ई० पू० २१५० के लगभग अपनी पराकाष्ठा पर थी। तदोपरांत असली चिनगारी बुझ जाने के बाद उनका कार्यक्रम मद एवं उत्साहहीन हो गया। १८०० ई० तक वे इसी प्रकार अलगाव के वाता-वरण मे रहे जो उनके पतन का मुख्य कारण बना। इस समय उनके जीवन मे वस्तुत कोई उद्दीपन न था। इसके बाद पतन आरंभ हुआ और जिस प्रकार हम इसके विकास और प्रगति के इतिहास का अध्ययन करते हैं उसी प्रकार यह पाते है कि अप्रगतिशीलता आने के बाद नागरिक शासन का स्तर नीचे गिर गया। उत्तम नागरिक शासन इस सभ्यता की प्रमुख विशेषता था। भवन-निर्माण के स्तर भी गिरने लगे तथा बड़े-बड़े भवनो के स्थान पर निम्न स्तर के छोटे-छोटे मकान बड़ी सख्या मे बन गए।

अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि अबतक ज्ञात इतने ऊँचे स्तर की सस्कृति का इतने बड़े क्षेत्र मे से कैसे एकाएक अत हो गया। एक तर्क यह पेश किया जाता है मोहेंजोदड़ो मे लगातार बाढ़ और हड़प्पा मे सूखा रहने के कारण वहाँ के निवासी पूरब की ओर चले गए और सरस्वती नदी की सूखी घाटी के किनारे पूर्व-पजाब मे रूपर के चारो ओर के अवस्थापन उन्ही लोगों के अवशेष के रूप मे हैं जो वहाँ से भागकर आए थे। किंतु यह निश्चय ही उस प्रश्न का उत्तर नही है। हड़प्पा में आगे चलकर बाहर से आनेवाले के लिए प्रतिबध लगाने का प्रमाण मिलता है। इससे यह मालूम पड़ता है कि शायद इस शहर में आक्रमणकारी से रक्षा करने का

१६. आर्नल्ड, टॉयन्बी, ए स्टडी ऑव हिस्ट्री, वॉल २, पृष्ठ ३१ एफ०

प्रबंध किया गया था। मोहेंजोदड़ो पर अंतिम आक्रमण के फलस्वरूप जो लोग मारे गए उनके शव आज भी उसी स्थान पर हैं जहाँ वे गिरे थे। आक्रमणकारी उन्हें छोड़कर चले गए, बचाव करनेवाले मर गए, भाग गए अथवा दास बना लिए गए। मृत शरीरों का अंतिम संस्कार करनेवाला कोई न बचा। सारा शहर मृतक बन गया। ई० पू० १८०० से लेकर १५०० के बीच यह महान् सभ्यता पूर्णरूप से नष्ट हो गई तथा इसके बाद अगले दो हजार वर्षों तक इन दोनों महान शहरों से तुलना करने के योग्य भारत में कोई अवस्थापन कायम नहीं हो पाया।

परिच्छेद-५

आक्रमण-काल

ई० पू० २१०० और १८०० के बीच का काल संपूर्ण पच्छिमी एशिया और इसके अत्यंत समीपवर्ती देशो के लिए एक प्रकार से अति अशांति का काल था। विशिष्ट प्रकार के शस्त्र, जिनका प्रादुर्भाव ईसा के पूर्व २५वी शताब्दी में ऊर की राजकीय कब्रो के समय मे हुआ था, धीरे-धीरे पड़ोस के लोगों में फैलने लगे। [illegible], अक्कादियनकाल के अत तक, जिसमे अक्काद के योद्धा राजाओ ने उनकी सीमाओं को अधिकृत कर लिया था, जिससे अनातोलिया से इलाम तक के सभी जातियों के लोग और राष्ट्र आतकित थे। पूरी ई० पू० २२वीं शताब्दी में गुटी नाम के असभ्य लोग जो पूर्व से आए थे उन्होने सुमेर और अक्काद में राज्य किया और करीब-करीब इसी शताब्दी के अत से हम उन योद्धा लोगो की उपस्थिति का काल निर्धारित कर सकते है जो अपने मृतको को पत्थर के संदूक मे दफनाते थे। दक्षिणी रूस के उत्तरी भाग में हम उन बर्बर शासको का प्रमाण पाते हैं जिन्हें राजकीय कब्रो मे कुछ आडबर के साथ दफनाया जाता था। उनका समय ई० के पू० २१५० और २०५० के बीच है। मोटे तौर पर करीब-करीब इसी समय अलाका हुयुक मे दूसरी राजकीय कब्र थी और यहाँ हमे प्राचीनतम टूटी-फूटी तीन लंबी तलवारों का उदाहरण मिलता है जिनसे हमें पता लगता है कि इन समाधियो का काल करीब-करीब ई० पू० २००० होगा।[1] गिर्शमन बतलाते हैं कि किस तरह ये कब्र जिन्हे ऊले ने कारा हसन और वुनैड ने टिल बरसीब मे प्रस्थापित किया था। ये दोनों ऊपरी फुरात मे है और इस मिश्रित संस्कृति और ईरान मे गियान III और जमशीदी III से संबंधित हैं।[2]

इन सभी कब्रों से प्राप्त वस्तुएँ बतलाती हैं कि ये कब्र उन योद्धा लोगो की हैं जिन्होने अपने हथियारों का महत्त्वपूर्ण सचय किया था और हमारा मतलब मुख्यतः इन्हीं लोगो से है जो ईरान के ऊँचे पठार पर रहते थे। टेपे हिसार के पिरीअड III की तिथि और साथ ही तु ंग टेपे और अस्तराबाद के कोष की उसी प्रकार की

---

१. गॉर्डन चाइल्ड, प्रीहिस्टोरिक माइग्रेशन्स इन् यूरोप, ऑस्लो, १९५०, पृ० १७९ एवं फाइनल ऑफ्ज एज इन् द नीयर ईस्ट, प्रॉक० प्रीहिस्ट० सोस०, वॉल XIV पृ० १८४-५

२. फ्वाएले द सियाल्क, वॉल० II, पृ १००-१०१

वस्तुएँ अभी भी वाद-विवाद का विषय है। एक मध्यममार्ग जो ईसा पूर्व २०००-१५५० के बीच का है और जिसमें इस काल के तीनों पहलू आ जाते हैं, इसकी बहुत सिफारिश करते है और वास्तव मे केवल एक यही मार्ग है जो उस औजारों और हथियारो के प्रकार से सहमत होता है।[१] अगर टेपे गियान की संस्कृति के अनुक्रम मे अवरोध होता है तब यह गियान V के बाद नही बल्कि गियान IV के बाद आयेगा जो सूसा सी और डी के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है और इसके पूर्वाधि-कारी की तरह सामान्य परपरा मे है। गियान III गियान IV की अपेक्षा भिन्न संस्कृति का प्रदर्शन करता है और हिस्सार III भी II B की तुलना मे ऐसा ही करता है। ये दोनों नये आगन्तुक उस तरह के योद्धा लोगों मे है जिनका प्रादुर्भाव सपूर्ण पूर्वी अनातोलिया की अधित्यका, काकेशश, जगरोस और अलबुर्ज में हो रहा था। अगर हम स्वीकार कर लेते हैं कि एक ही तरह की घटना सभी समय घटित हुई तभी हम पश्चिमी एशिया मे घटनाओ का न्यायसगत तस्वीर पा सकते है जो एक साथ घटी और जिनसे कुछ मतलब निकल सकता है। इसमे कम सदेह है कि इस अशाति को उत्तेजित किया गया था और कुछ अश मे यह इंडो-यूरोपीयनो के पूर्व आगमन के कारण था। सुविधा के लिए हम इन्हे आर्य कह सकते हैं जो प्रकट करता है कि ये अर्द्ध-खानाबदोशो के समूह थे जो या तो आर्यभाषी नेताओ के साथ रहते थे या आगे चलकर इन्होने एक आर्यभाषा बनायी जिसमे पूर्णतया घरेलू बोली संमिलित थी। बारी-बारी से जैसे उनकी कहानी का विकास होगा इन्हे भारतीय या वैदिक आर्य बतलाया जाएगा।

पूर्व दिशा की ओर बढने मे इनलोगो को किस चीज से प्रेरणा मिली ? मकरान भी उस समय उजाड भयानक जगल नही था जैसा कि यह अभी है, सभवत. यह विस्तृत मरूद्यान की पक्ति से कुछ ही अच्छा था जैसा कि यह वर्त्तमान समय मे विद्यमान है। जरूर उनपर दबाव रहा होगा जिसने उन्हे पीछे से प्रेरित किया और आसानी से जमीन लेने और उसपर कब्जा करने का वादा रहा होगा जिसने उन्हे सामने से संकेत किया।

प्रश्न है कि इन आक्रामको के प्रथम टक्कर के पूर्व पश्चिमोत्तर भारत की अवस्था कैसी थी। सिंधु नदी की सभ्यता का क्षय हो रहा था और पेरियानो III के आदमी उत्तरी और मध्यबलूचिस्तान मे अपना अधिकार बढ़ा चुके थे। कुल्ली-सस्कृति सभवत कुल्ली, मेही और निकटवर्ती कुछ स्थानो मे बनी रही और उनके

१. गॉर्डन, डी० एच०, द क्रोनोलॉजी ऑफ द थर्ड कल्चरल पीरियड पेट टेपे हिस्सार, इराक, वॉल० XIII, पी-टी० I

साथ अवश्य सह-अस्तित्व की नीति काम करती होगी जिनके कुम्हारों ने नाल के सामान बनाये थे। कोलवा और माशकाई में दोनों के संभवत: अनेक अवस्थापन थे और सिंधु मे गेज घाटी के नीचे और सभवत: लासवेला मे उनका प्रभाव था और या अधिक सभव है कि ये सभी समुदाय निम्नश्रेणी के थे। बेबिलोन के प्रथम राजवश के प्रभाव से, यह सभव है कि सिंधु-घाटी के साथ फिर से व्यापार-संबध कायम हुआ। अगर ऐसी बात है तब उन्हे पूर्व दिशा की समृद्ध भूमि का ज्ञान ठीक-ठीक मालूम था।

इन जातियो की उपस्थिति का प्राचीनतम प्रमाण कुल्हाड़ी है जो पर्सियन मकरान मे खुरब की समाधि मे पाया गया है जो टिल बारसीब, वान और लुरीस्तान मे पाये गये पतली धारवाली कुल्हाडियों की ही जैसी है। अबतक इस वस्तु का वर्णन डंडे की तरह हुआ है यद्यपि स्टीन ने, जिन्हे यह मिला था, इसके विषय में बतलाया था कि यह "एक विलक्षण काँसे की वस्तु है जो कुल्हाडी के सर से मिलती-जुलती है जिसपर एक ऊँट बैठा हुआ है।"[१] गॉर्डन चाइल्ड के एक चित्र 'न्यू लाइट ऑन दि एसिएट ईस्ट' के नये सस्करण मे इसे डडाकार छिद्र जैसा बतलाया गया है और पिबडी-अजायब-घर के अन्वेषण से इसका असली रूप प्रकट हुआ है और इसके कुल्हाटी होने का असदिग्ध प्रमाण मिला है। वास्तव मे यह बहुत बडा है। ऊँट के सर से लेकर घाट के किनारे तक यह १८३ सी०मी० लबा है[२] (प्लेट XXIII, ए)।

स्थान मे मुख्य सबध जिसका वर्णन किया गया है वह यह है कि इन सभी कुल्हाडियो का किनारा किसी-न-किसी तरह से समरूप है और कुल्हाडी के छिद्र के कुंदे पर एक जानवर है। परतु खुरब मे कुंदे पर एक सिंह है। इस प्रकार की कुल्हाडी की, जिसके डडे मे छिद्र है, तिथि १८५० ई० पू० से पहले नहीं हो सकती, लेकिन दुर्भाग्यवश खुरब मे इससे सबधित बहुत कम ही चीज है जिसकी निश्चित तिथि हो, तो भी बलूच-मकरान के केज-घाटी मे शाही टंप के टीले से बहुत कब्र खोदने पर मिली है जो बहुत सहायक हैं। ये कुल्ली-अवस्थापन से खोदे गये, जिसे नवआगन्तुकों द्वारा कब्रिस्तान बनाने के बहुत समय पहले उजाड बना दिया गया था।

---

१. आर्क्योलॉजिकल रिकोनाइसाँ इन् एन० डब्लू० इंडिया एंड एस० ई० ईरान, पृ० १२१ एवं प्लेट XVIII

२. गॉर्डन, द पॉटरी इ डस्ट्रीज ऑव दि इंडो-ईरानियन बोर्डर, एंसिएंट इंडिया, नं० १० एव ११; मैक्सवेल-हिस्लॉप आर०, नोट ऑन अ शैफ्ट-होल एक्स-पिक फ्रॉम खुरब, मकरान, इराक, वॉल० XVII १५१ पी-टी २, १९५५

शाही टप के कब्रिस्तान—विभाजित विशिष्ट चिह्न, काँसे के कुल्हाडी के हड्डे का छिद्र, ईरान से पाये गये अभिप्राय-युक्त मिट्टी के बर्त्तन और एक त्रिपाद कटोरा ये १८०० ई० पू० के कुछ ही बाद का समय निश्चित रूप से बतलाते हैं। काँसे का विभाजित विशिष्ट चिह्न एनाऊ III और हिसार III के समरूप है,[१] कुल्हाडी के हड्डे का छिद्र यद्यपि पच्छिमी एशिया मे लोग इसे अच्छी तरह जानते हैं, बलूचिस्तान और सिंध में इसका अस्तित्व नही था जबतक ये आक्रामको ने यहाँ इसे नही लाया और त्रिपाद कटोरे की तुलना सियाल्क के नेक्रोपोल A से किया जा सकता है। दुर्भाग्य-वश उनके निवासस्थान का निश्चित पता नही मिला है जो अपने मुर्दों को शाही टप पर दफनाते थे यद्यपि जय डब, सार पारोम और निहिंग-घाटी के नजराबाद मे शाही टप की वस्तुएँ पायी गयी है, और ईरानी पठार के इन आक्रामको के बारे में बाद मे अधिक जानकारी होना संभव हो सकता है।[२]

उनके अवशेषो की दुर्लभता के विभेद के साथ ही इन आक्रामको ने क्या-क्या किया, इसके विषय मे सभी तरह के प्रमाण वर्त्तमान है। सपूर्ण बलूचिस्तान मे कुल्ली, नाल और पेरियानो III सस्कृतियो के चित्रित बर्त्तनो का आकस्मिक अत हो गया। अवशेषों के छोटे अवस्थापन, जिससे पेरियानो III के लोगो का पता चलता है जो नाल के सोर डब की चोटी पर रहते थे, जलकर राख हो गया जब इन आक्राताओ ने इनकी छतो मे आग लगा दी। जोब के उत्तर मे सभी गाँवो की वही हालत हुई। बृहद् पैमाने पर इस आक्रमण से चारो तरफ बहुत अधिक विनाश हुआ। वे अपने आक्रा-मकों के समतुल्य नही थे। ये आक्राता हडप्पावासियो-जैसे सीधे-सादे नही थे, जिनके साथ वे व्यापार कर चुके थे बल्कि वे दृढ़ बर्बर लडाकू थे जिन्होने समृद्ध भूमि की खोज शुरू कर दी थी जहाँ वे अपने रहने की व्यवस्था कर सकें जिस तरह दूसरे लोगों ने सुमेर मे या ऊँची अधित्यका पर, वहाँ के आदिमवासियो को खदेड-कर या उनपर कब्जा कर, अपने रहने की व्यवस्था कर ली थी।

इन आक्राताओ को बलूच पहाडी की पतली घाटी की चाह नही थी बल्कि इन्हे सिंध और पजाब की उपजाऊ भूमि की अपेक्षा थी। यही झकरलोगो के भग्ना-वशेषों में, जो झकर के नगरो, लोहुम्जोदरो और चन्हुदरो मे मिलते हैं, जहाँ से उन्होने हड़प्पावासियो को खदेडा था और जहाँ उन्होने अपनी झोपड़ी बनानी प्रारभ की थी, हमें इनके आगमन का प्रमाण मिलता है। अन्य लोगो की अपेक्षा इन झकरलोगों

१. पीगॉट, डेटिंग द हिस्सार सीक्वेंस—द इंडियन पबिडेस, ऐंटीक्विटी, दिसम्बर, १९४३

२. स्टीन, ऐन आर्क्योलॉजिकल टूअर इन गेड्रोसिया, मेम०, ए० एस० आई० न० ४३, पृ० ४९, ५०, ८४ एव ८८-१०३

ने काफी तायदाद में सामग्रियाँ छोड़ी हैं जो आक्रमण-काल का प्रतिनिधित्व करती हैं। चन्हुदरों में एक कुल्हाड़ी के डंडे का छिद्र और विभाजित मुहरें मिली हैं जो शाही टंप मे पायी गयी वस्तुओं के समतुल्य हैं और एक फंदेदार कील जो हिस्सार III में पायी गयी वस्तुओं और एनाऊ III में पायी गयी छोटी चिमटी के समान है. जिसे पीगॉट ने दिखलाया था, ये झकर-अवस्थापन की वस्तुएँ हैं।[1] उसने एक गदाशीर्ष-जैसी वस्तु को जिसे प्रारंभ मे कोहल-घडा कहा जाता था, और जिसे झकर-काल के भग्नावशेषों मे पाया गया था जो स्पष्टत उसी काल की वस्तु है, हिसार III मे पाये गये उसी तरह के एक गदाशीर्ष का सारूप्य बतलाया है (प्लेट XIV मध्य)।[2] लोहुमूजो-दडो मे झकर सतह से पाये गये एक चक्राकार गोला, हिसार III और एनाऊ III के दूसरे चक्रदार गोलों के समान है और टिकट की मोहरे, बहुत हद तक दूसरी शहस्राब्दी ईरान के समान है। एक झकर-मुहर जो माल्टी अर्गल-पद्धति की है, एनाऊ III के काले भूरे चिकने पत्थर के समान है और निरतर फंदा और पंक्षी के आकार की प्रणाली, अलका हुयूक के हिटाइट-काल की मुहरो के समान है। ये बिना अभिलेख की वस्तुएं है क्योंकि ये आक्राता अशिक्षित थे। (प्लेट XIV)

झकर के मिट्टी के बर्त्तनो पर साहसिक पद्धति की चित्रकारी है जिसे अधिक या कम मात्रा मे हड़प्पा-सबधित कह सकते है (प्लेट XV)। लाल और पीलापन लिए हुए सफेद रग के उनके व्यवहार से सभी मिट्टी के बर्त्तन विशिष्ट हो जाते हैं, और पेरियानो गु डाई के कटोरे जिसपर पृथक लहरदार लकीरो की साधारण सजावट है और जिनपर पीलापन लिए हुए सफेद और चौडे लाल रग की चित्रकारी है जो उन्हे झकर के बर्त्तनो से अलग करती है, उनलोगो के मिट्टी के बर्त्तन हो सकते हैं जिन्होने १८०० के आक्रमण मे इन अवस्थापनो को जला दिया।

यद्यपि इन झकरलोगो ने छोटे-छोटे शहरो को हथिया लिया, तो भी आक्रामकों के विरुद्ध मोहेजोदडो का अस्तित्व अक्षुण्ण रहा। केवल यही एक विवृति है जो आर्यों के आक्रमणो के तथ्यो की पुष्टि करती है जैसा कि ऋग्वेद मे बतलाया गया है। इससे हमलोग जानते है कि आर्यों का असुरो के साथ सबंध था जिन्हे जादूगर और व्यवसायी पनीज समझा जाता था और ये किलाबद नगरों मे रहते थे जिससे सभवतः इन्हें जगल मे रहनेवाले आदिमवासी नही कहा जा सकता। यह सभव हो सकता है कि हड़प्पा जहाँ हमें रक्षात्मक स्थितिवाला एक शहर का प्रमाण मिलता है, सर्वप्रथम

१. नोट टू इवोलर्स द रेकर्डिंग ऑव स्ट्रेटीग्राफी, एंसिएंट इंडिया नं० ३, पृ० १४५

२. नोटस ऑन सर्टेन मेटल पिंस एंड अ मेस-हेड इन् द हड़प्पा-कल्चर, एंसिएंट इंडिया, न० ४

इनके हाथ लगा हो। अनेक आर्य और अर्द्ध-आर्यजातियो के बीच के झगड़ो के कारण यह संभव है कि झकरलोगो ने ऐसे समय में उत्तर से आक्रामको के आक्रमण के कारण मोहेंजोदड़ो के नागरिको से मेल कर लिया हो, जिन्हें झकरलोग निश्चत रूप से समझते थे कि वे इन्हे इनके अधिकारो से वचित करना चाहते है जिसे इनलोगों ने अपनी विजित नयी भूमि मे बसाया है।

जब मोहेंजोदड़ो एक आक्रामक शक्ति के हाथ मे आ गया तब से कभी भी अधिकृत नही किया गया। झकरलोगो या हड़प्पा के रावीलोगो की तरह किसी प्रकार का अवशेप मौजूद नही है। तो भी उन शवो के अतिरिक्त जिन्हे उनलोग ने मारा था, आक्रामको के साथ सबध का प्रमाण उन स्थानो पर मिलता है। टेपे हिसार मे पाये गये बसूले की तरह एक बसूला और अस्तराबाद का खजाना जिसका समय c १८००—c १६०० ई० पू० हो सकता है, एक ऊँची सतह से खोदकर निकाला गया और दो कटार और दो छूरे जो हड़प्पा-प्रणाली से मेल नही खाते है, जमीन के नीचे कुछ ही दूरी पर पाये गये। उनकी विशेषता एक घना मध्य शिरा या कील है जो इसकी धार या नोक पर अवस्थित है।

परिणाम निकाला जा सकता है कि ४८ फुट का एक सचय जिसमे छोटी कटार सम्मिलित है, आक्रामको मे से एक के द्वारा लूट लिया गया होगा और फिर छोड दिया गया होगा या आक्रमण के समय ये चीजें छिपाने का एक स्थान होगा जिसे अतिम आक्रमण के कुछ दिन पूर्व विकसित किया गया होगा। किसी भी हालत मे ऐसा नही प्रतीत होता है कि यह अस्त्र एक आक्रामक का था, यह भी कोई जरूरी नही है कि इनमे से कोई भी पश्चिमी अस्त्र जिसे अतिम सतहो मे पाया गया है, अतिम विजेताओ का हो। बसूला और कटारे, जिसमे कटारे मध्य २००० और १९०० ई० पू०[१] के सीरिया और फिलिस्तीन के समान हैं सभवत. या तो पश्चिम वासियो से प्राप्त की गयी, जिनके साथ मोहेजोदडो नगर का सैकडों या अधिक वर्षों से सबध था या पश्चिम वासियो के थे जो नगर मे सभवत: स्वार्थ-वश निवास करते थे।

तीन छिद्रवाली कुल्हाडी जिसका वर्णन इन आक्रामको के पाश्चात्य स्रोत की तरह किया गया है, अपनी दुलर्भता द्वारा यह बात स्पष्ट करती है कि प्राचीनकालीन भारत मे ऐसी कुल्हाडियो का इस्तेमाल कभी नही हुआ। यद्यपि २४०० ई० पू०

१ गॉर्डन, अर्ली यूस ऑव मेटल्स इन इंडिया ऐंड पाकिस्तान, जे० आर०ए० आई०, वॉल० LXXX, पृ० ५७

चित्र ६. अंधकारयुग की कालक्रमिक तालिका

के बाद विविध भारतीय समुदायो के लोग कुल्हाडी के छिद्रों के सिद्धांत से परिचित थे और तकनीकी रूप से इस विधि के द्वारा औजारों और शस्त्रों को बनाने में समर्थ थे, तो भी उनलोगों ने ऐसा नही किया। तांबे, कांसे और लोहे की चौड़ी कुल्हाड़ियों का चतुर्दिक प्रचलन था और जब हम पूर्वऐतिहासिक काल में तलवारो तथा छिद्रो में अवस्थित भालो का प्रचलन देखते है, पर छिद्रोवाली कुल्हाडी का इस्तेमाल नहीं किया गया।

रावीलोगो का वर्णन किया गया है जिनका नामकरण उनलोगो के कारण हुआ जो अपने मृतको को हड़प्पा के कब्रागाह 'H' मे दफनाते थे, लेकिन वे रावी के किनारे रहते थे कब्रागाह मे नही, इसलिए उन्हे अन्य नामो की तरह इस नाम से भी पुकारा जा सकता है। दुर्भाग्यवश इन कब्रगाहो के अलावा जिनमे वस्तुत केवल श्राद्ध-क्रिया-सबधी मिट्टी के बर्त्तन ही रहते थे, हमे इनलोगो का कुछ पता मिला है और सिर्फ मिट्टी के बर्त्तनो के टुकडे और अकुशलता से बनी दीवारो के अवशेष मिले हैं। उनके व्यवसाय के स्तर को, जो हडप्पा मे सबसे बढकर था, अधिक तायदाद मे ईटो की लूट और खुदाई से काफी नुकसान पहुँचा है जो मुख्यत रेल की गिट्टी के लिए किया गया है। हडप्पा के अलावा, रावी-सस्कृति के सारूप्य का दावा विविध स्थानो मे किया गया है जिनमे बहावलपुरराज्य के दो स्थान भी सम्मिलित है, लेकिन उनके विषय मे निश्चित रूप से कुछ भी मालूम नही हुआ है। रावी-शवाधान के कालो का कब्रिस्तान 'H' मे निरीक्षण किया जा सकता है जो नीचे है। रावी I मुख्यत पूर्ण शवाधान है जिसका या तो विस्तार हुआ है या जिसे आकुचित किया गया है यद्यपि कुछ हालतो मे यह सभव है कि ये भिन्न थे, अगर अशाति के कारण, ये विभाजित न हो। रावी II के ऊपर बर्त्तनो का शवाधान है जिनके अनावरण और दाह दोनो का प्रमाण बर्त्तनो मे अवशेषो के सचय के पूर्व ही मिल जाता है (चित्र ६)।

तो भी इन लोगो के बारे मे अधिक सभव सूचनाएं अभी तक के सचित प्रमाणों से सग्रहीत करनी चाहिए। सिधु-घाटी की सभ्यता के पतन के पश्चात् उनलोगो ने हडप्पा पर अधिकार जमा लिया। उनके गदे अस्थायी मकानो की शृखलाओ के अवशेष दुर्गों के उँचे शिखर पर मिलते है। यह विचार कि रावी मकानो के नीचे के उनके स्थानीय टूटे टुकड़ों के अवशेष जो हडप्पा के पश्चिमी द्वार पर पाए गए हैं यह सूचित करते है कि वे लबी अवधि के हैं—यह सभवतः ठीक नही है। एक बार जब नगर आक्रामको के हाथो में आ गया तब इसका पतन तेजी से हुआ होगा। टूटे हुए टुकड़ो के अनेक कारण

हो सकते हैं। सही यह बात है कि टीले की ऊपरी सतह इस तरह से गड़बड़ है कि किसी भी तरह की सही व्याख्या करना अति असंभव है। तो भी उनका दखल विस्तृत रहा होगा क्योंकि चित्रित हड़प्पा के बर्त्तनों-जैसे रावी-बर्त्तनों के टुकड़े मिले हैं, भले ही ये अधिक नही हैं। ये लोग हड़प्पावासियो के अन्यवहित उत्तराधिकारी थे।

कब्रगाह 'R' ३७ मे दफनाये गए हड़प्पावासियों से उनकी कब्रों का सबध स्पष्ट हो जाता है यदि वैट्स द्वारा बतलाए गए उनके स्थानों और १९४६ के ह्वीलर विभाग की खुदाई मे सबध स्थापित करता है।[१] हड़प्पा के कब्रिस्तान दुर्ग के दक्खिन की ओर मुख्यत: कुछ ऊँची सतह पर थे। इन शवाधानों के कुछ समय के बाद, एक गढा जो गाडी के पहियो के निम्न बिन्दुओं से धीरे-धीरे भर रहा था, जमीन मे खोदा गया जो सात फुट तक के लबे मिट्टी के बर्त्तनो के टूटे टुकड़ों से भर गया था और पानी के लगाव या कटाव के कारण उसके ऊपर कुछ दूर तक मिट्टी बैठ गई थी। हम पाते हैं कि कब्रिस्तान 'R' ३७ की कब्रें छिछले सचयन के कारण बद हो गई थीं जो भरे हुए टूटे टुकडों से पहले ही पाट गई थी जबकि जमीन के पाँच फुट नीचे कब्रगाह 'H' में रावी I के लोगो के विस्तृत शवाधान टूटे टुकडो के ही दो तीन फुट ऊपर खोदे गए। कब और कैसे यह गढ़ा भरा गया, यह नही जाना जा सकता है, लेकिन यह हड़प्पावासियो द्वारा ही उनके अधिकार की समाप्ति के कुछ समय पूर्व भरा गया होगा। अगर यह कूड़े का ढेर होता तब यह सौ वर्षों का संचय होता, यदि यह बलपूर्वक कराए गए लोकनिर्माण-कार्य के जैसा होता, तब एक वर्ष या इससे कम ही पर्याप्त होता। यदाकदा इसके बद होने के कारण सामान्य धारणा यही बनी है कि यह अधिक समय तक कूड़ों के पाटने का परिणाम था।

तब यह सभव है कि रावी के लोगों ने हड़प्पा नगर की समाप्ति के लबे अरसे के पश्चात् इसे अधिकृत किया और ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार उसके बाद बौद्धों का काल आया। इस समय स्पष्ट प्रमाण का अभाव है; लेकिन हमलोग कह सकते है कि रावी के मिट्टी के बर्त्तन उत्तरी भारत के किसी भी बर्त्तन से आशिक रूप मे भी नही मिलते-जुलते है जो प्रारभिक ऐतिहासिक काल के कुछ ही पहले के थे और जिसकी अवधि ई० पू० ६५० हम निश्चित कर सकते हैं। इसके बावजूद कि तैयार कपड़े और अधिकतर आकार और अभिप्राय, हड़प्पा की संस्कृति से भिन्न हैं तो भी पुराने चित्रित बर्त्तनों से कुछ समानता है। (प्लेट XVI, ए) कुबड़वाले साँड़, मोर,

१. वैट्स, एक्सकेवेशन्स ऐट हड़प्पा, प्लेट XLIII एव XLV; ह्वीलर, हड़प्पा, १९४६, एंसियंट इंडिया न० ३, प्लेट XV

मछली और मृग सभी हड़प्पा के बर्त्तनो और भारत-ईरानी सीमा के बर्त्तनों की तरह, रावी के बर्त्तनों की सजावट मे चित्रित किए जाते थे, लेकिन उसके बाद के समय मे इनका चित्रण बहुत कम हुआ। अनेक जगमगाते तारो की आकृतियाँ हड़प्पा के सारूप्य हैं और एक घेरे से जगमगाती निकलती हुई पत्तियों की आकृतियाँ रावी और सामान्यत चन्हुदडो दोनो के बर्त्तनो के टुकडो मे मिलती है। अध्यारोपित हुई 'आँख-आकार' जिनसे विभाजित खड़ी रेखाएँ बनती है हड़प्पा की सभी जगहो के चित्रित बर्त्तनो मे सामान्य हैं यद्यपि ये रावी के बर्त्तनो मे कम मिलती है और वृक्षो द्वारा बनाए गए मेटोप मे खडे जानवर जो उन स्थानो मे सिग्मा के रूप मे चित्रित है, तीव्रता से कुल्ली का स्मरण कराते है। पीठस्थ स्तभ जो हड़प्पाकाल मे प्रचलित था, रावी और झकर दोनो के लोगो द्वारा व्यवहृत किया हुआ प्रतीत होता है और सिंध मे आदमी के सर-जैसा जानवर सभवत रावी II के शवाधान-कलश पर चित्रित किन्नर का स्मरण दिलाता है।

एक शवाधान-कलश मे जो रावी II के प्रतिरूप है, दो त्रिभुजाकार मिट्टी के बर्त्तन के टुकडे, हड़प्पा के बर्त्तन का एक नुकीला टुकडा, एक थाली, एक पकी हुई मिट्टी का गोला (जैसा कि दूसरे शवाधान-कलश मे पाया गया था) चूडी के टुकडे और पत्थर का मूसल वैट्स को प्राप्त हुए थे। ये सभी वस्तुएँ झुलसी हुई हड्डियो और सामान्य राख के पदार्थों से मिली हुई थी, अत. इनमे मौलिक शवाधान-सग्रह का निरूपण था। हड़प्पा के इन सब वस्तुओ की उपस्थिति कुछ भी प्रमाणित नही करती है, लेकिन बर्त्तनो पर चित्रित आकारो द्वारा दिए गए लक्षणो पर एक साथ विचारने पर यह सभव प्रतीत होता है कि रावी के लोग वे ही थे जिन्होने हड़प्पावासियो के स्वत्व का हरण किया था। इस सस्कृति के दोनो रूपो मे ध्यान देने योग्य विभेद मुख्यत शवाधान की रीति ही है। रावी I के शवाधान से सग्रहित कटोरे और पीठस्थ कलश पर उसी प्रकार की सजावट है जिस प्रकार रावी II के शवाधान-कलश पर मिलता है और यह सभव है कि उनलोगो के द्वारा, जो मुख्यत. एक ही तरह के प्राणी थे, इसका व्यवहार दोनो रूपो मे हुआ था। इसलिए सही रूप मे हम कह सकते है कि रावी-सस्कृति के दो रूप केवल रीति-रिवाजो मे ही परिवर्तन दिखलाते है और लंबे सर के आकार के ऊँचे शीर्षवाली श्रेणी के साथ शवाधान-कलश मे एक छोटे निम्न सरवाले आकार की उपस्थिति, जो हड़प्पा से बहुत कम अंतर दिखलाता है, का कोई विशिष्ट सास्कृतिक महत्त्व नही है। रावी के लोगों के बाद के रूपो से वैदिक आर्यों का सारूप्य निरूपण करना संभव हो सकता है और इस प्रकार के सारूप्य की शवाधान-कलशो पर चित्रित धार्मिक विषयों के आधार पर वैट्स द्वारा प्रेरणा प्राप्त होती है। (प्लेट XVI बी)

अभी हाल की खुदाई के अन्वेषण से कुछ काम की वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं जिनकी महत्ता स्वीकार नहीं की गयी हैं। पूर्वी पंजाब के अंबाला जिले के ऊपर और उसके अड़ोस-पड़ोस की जगहों में हड़प्पा-अवस्थापन था, यह स्पष्ट है। परंतु कुछ प्रकाशित ठीकरों से यह जाहिर होता है कि रूपर के स्तरों के कुछ चित्रित बर्त्तन, जिन्हे हड़प्पा का बतलाया गया था, हड़प्पा-संस्कृति से कोई संबध नही रखते है और संभवत. वे अव्यवस्थित तत्त्व हों और दूसरी जगहों मे पाये गये ठीकरे स्पष्टत: रूपर से पाँच मील दक्षिण बारा टीलें मे प्राप्त बर्त्तनो-जैसे हैं। यहाँ प्रकाशित ठीकरों मे किसी का ढांचा ऐसा नही दीख पडता है जिससे इन्हें हड़प्पा का माना जा सके। वास्तव मे इनकी सख्याएँ थोडी भी समानता नही रखती है।

दुर्भाग्यवश अभी तक बहुत कम ठीकरे प्रकाश मे आए हैं, लेकिन इनमे कुछ आकार सम्मिलित है जो निर्विवाद-जैसे निष्कर्ष की ओर सकेत करते है। रूपर मे पाये गये ठीकरो मे दो पर टेढी-मोटी लकीरे खींची गयी हैं जो हडप्पा मे पाये गये ठीकरो से कुछ भी मेल नही रखती और बारा मे पाये गये एक घडे का करीब-करीब संपूर्ण ऊपरी भाग रूपर मे पाये गये ठीकरो के ढाँचे से मिलता-जुलता है।[1] (चित्र १०,१३ और १५) इस हालत में हडप्पा मे पाए गए अनेक प्रकार के ठीकरे जिनका वर्णन कही नही किया गया है, का प्रश्न नही उठता। ये सभी ढाँचे एक पूर्ण तथा भिन्न परंपरा मे संबध रखते है। लेकिन ऐसे ठीकरों के अतिरिक्त, जो भिन्न है और जिनकी समानता अज्ञात है, दूसरे ठीकरे है जो रावी मे पाये गये ठीकरो से पूर्णतया मेल खाते है।

अब हम रूपर और बारा मे पाये गये ठीकरो पर विचार करे जो इस निष्कर्ष का प्रतिपादन करता है। इसका सबसे महत्त्वपूर्ण उदाहरण बारा मे पाये गये ठीकरे है जिनपर एक जोडें सींग के बीच लबवत एक तीर के सिरे का चिह्न है, जो रावी के बर्त्तनो पर पाये गये सींगो के बीच दो काँटेवाले तीर के सिरा और सींगो के बीच मे बने तीर की आकृतियो से पूर्णतया मिलता-जुलता हैं।[2] (चित्र १०; ६ से ८) बारा के बर्त्तनो पर पाये गये मछली की तरह एक वस्तु जिसपर लबवत रेखाएँ हैं और काँटेदार पूँछ है, रावी के बर्त्तनो पर भी पाए जा सकते है। बारा की तरह रावी के बर्त्तनो पर चक्राकार सजावट और अनेक त्रिभुजाकार चिह्न मिलते हैं। रावी-

---

१. रूपर, इंडियन ऑक्यॉलॉजी, १९५३-५४, प्लेट IV ए एवं बारा, इंडियन ऑक्यॉलॉजी, १९५४-५५, प्लेट X (नीचे बाँये)

२. बारा, इंडियन ऑक्यॉलॉजी, १९५४-५५, प्लेट X (ऊपर बाएँ), वैटस, एक्स्केवेशन्स ऐट हड़प्पा, प्लेट LXII, ४ एवं १०

चित्र १०. हडप्पा, रूपर एव बारा (पूर्वी पजाब) के शवाधान के चित्राकित मृद्भाड

पद्धति में सात बिन्दुओंवाला लंबा अव्यवस्थित तारा बहुत सामान्य रूप में मिलता है और यह तारा रूपर मे पाये गये दो ठीकरों पर भी मिलता है, लेकिन इनमें से कोई भी हड़प्पा की आकृति की नही है। (चित्र १०; २ से ५ और ९ से १२) बारा से और अनेक दूसरे स्थानों से हड़प्पा के बर्त्तन बीकानेर में लाये गये हैं, जिनमें अनेक मिट्टी के बर्त्तनों पर छिन्न-भिन्न सजावट है।

सजावट की यह पद्धति, जो झकर के बर्त्तनों मे सामान्य रूप से मिलती है बहुत विरल है, पर हडप्पा के निश्चित स्तरो मे ये उपलब्ध हैं, और यहाँ फिर भिन्न-भिन्न तरह के लोगों के होने की पुष्टि अच्छी तरह हो सकती है। सिधु-पद्धति के अंकित आधारवाले जामपान का प्रमाण भी, जैसा कि हमने रावी के शवाधान-कलश पर पाया है, महत्त्वपूर्ण है। ये रूपर के निम्नतम स्तरो मे अल्प सख्या में मिले हैं और हडप्पा के ऊपरी स्तरों और बारा के टीले मे, जिसके नीचे केवल कुछ टुकड़ो का पता चला था, करीब-करीब न्यून हैं (चित्र १०, १)। यह जामपान हडप्पा और मोहेंजोदडो के परिनिष्ठित स्थानो मे अभी हाल मे पाया गया है और इसका प्रचलन मुख्यत. २००० से १५५० ई० पू० तक रहा होगा जिसमे आक्रमण-काल का अधिक समय आ जाता है, ऐसा प्रतीत होता है।

त्रिभुजाकार मिट्टी के बर्त्तनो के टुकडे रावी के शवाधान-कलश मे भी पाये गये है, लेकिन रूपर मे हडप्पा के ऊपरी स्तरो और बारा में भी ये अल्प सख्या में पाये गये हैं। ये सभी प्रमाण कुछ आक्रामक लोगो की ओर सकेत करते हैं जो बाद मे रूपर मे हडप्पा-अवस्थापन के अनुगामी थे, जिन्होने बारा के समीपवर्ती जगहो को भी अधिकृत कर लिया था और सभवत हडप्पा के रावीलोगों के समकालीन थे और सभवत. उनके मित्र थे। वे वैदिक आर्यों के सिवा दूसरे नहीं हो सकते है।

इस स्थान पर एक बेलनाकार मुहर की प्राप्ति का वर्णन करना समुचित होगा जो अभी नागपुर के अजायबघर मे है। यह वस्तु मध्यभारत मे पायी गयी थी। इससे १८३०-१५३० ई० पू० बेबिलोन के प्रथम राज्यवश के समय मे मेसोपोटामिया के साथ के सबधो का पता चलता है जो आक्रमण-काल से मिलता-जुलता है। वास्तव मे यह असली मुहर है, परंतु सग्रहाध्यक्ष से प्राप्त सूचना से मालूम हुआ है कि यह मुहर कैसे, कब और किससे प्राप्त हुई। किसी भी तरह भारत के साथ इसका संबध जोडना थोड़ा भी तर्कसगत नहीं लगता है और यह संभव है कि यह अजायबघर में किसी के द्वारा दी गई हो जो या तो इराक मे काम करते समय या भ्रमण करते समय किसी ने इसे पाया हो।[१]

१. लाल, बी० बी०, प्रोटोहिस्टोरिक इनवेस्टीगेशन्स, पृ० १०१, एवं प्लेट XXIV ४; एंसिएंट इंडिया, नं० ९, १९५३

आक्रमण-काल और अनेक आक्रामकों के बीच का झगडा अधिक समय तक चलता रहा और आर्यों का समूह या आर्यों के नेतृत्व मे लोग पूर्व की तरह अनेक आक्रमण के लिए उत्तेजित किए गए होंगे जो बाद के ऐतिहासिक काल के उसी तरह की घटनाओ से बहुत मिलता है। बैक्ट्रियन-ग्रीक, शक, पार्थियन और कुशानो का कालक्रमिक आक्रमण २५० वर्षों तक रहा; लेकिन मुसलमानो का आक्रमण ७११ ई० से प्रारंभ हुआ, जब मुहम्मद-बिन-कासिम ने ११९३ ई० तक सिंध पर आक्रमण किया जब कुदबुद्दीन एबक ने दिल्ली को अधिकृत कर लिया और करीब ५०० वर्षों तक चलता रहा और आर्यों का आक्रमण १७५०-१३०० ई० पू० तक चलता रहा होगा। इन समय और स्थानो का बहुत गहरा सबध है। व्हीलर ने बहुत स्पष्टता और सूक्ष्मता से इन बातो का वर्णन किया है। वे कहते है—"पश्चिमी ण्ठार की छोटी भूमि से आक्रामको का क्रम ऐसी विस्तृत जगहो मे नही फैल सकता है। यहाँ सकुचित उपत्यका और इसके प्राकृतिक सीमाओ के गिरिपीठों को अधिकृत करने का प्रश्न नही है। यह साधारणतया आगे बढते जाने का प्रश्न है जबतक सवेग समाप्त न हो जाय और निष्क्रियता न आ जाए। यह एकमात्र सीमा-आक्रामको के आतरिक बल और अनुशासन पर आधारित था।" इसके बाद व्हीलर कहते है कि "इसलिए इस कहानी का तत्त्व आदमी के दुर्बल प्रयासो पर सिर्फ भूमि के क्षेत्रफल की विजय है।"[१]

यदि ये झकर और रावीलोग आर्य-आक्रामको के मूल थे तब वे एक छोटी सास्कृतिक रिक्तता को ही भर सकते है जो अभी तक सिंधु-सभ्यता के लोप और भारत मे सिकन्दर के आगमन के बीच तक वर्तमान रही है। इसके अतिरिक्त पश्चिमोत्तर से बहुत कम मिट्टी के बर्त्तन प्राप्त हुए है जिनसे कुछ सकेत मिलते हैं और इनकी व्याख्या अभी तक अति विवाद का विषय है। इनमे जिनकी सबसे अच्छी जानकारी है वे चित्रित बर्त्तन है जिन्हे त्रिहनी-बर्त्तन कहा जाता है जो त्रिहनी के निकट लाल चाटो टीले पर, शाह हसन और लोहरी मे मछार झील के चारो ओर और चन्हुदडो मे पाये गए है और झगर-बर्त्तन झगर और चन्हुदडो मे पाए गए हैं। ये सभी स्थान सिंध के बीच मे है।[२] यह मान लेना तर्कसगत होगा कि चन्हुदडो मे विस्तृत खुदाई के परिणामस्वरूप निश्चय रूप से यह कहना सभव हो सकता है कि इन दोनो उद्योगो मे कौन प्राचीन है, लेकिन ऐसी बातें नही हैं। ये

१. एडिटोरियल (नोट्स), एंसिएट इंडिया नं० ४, पृ० ३

२. मजुमदार, एक्सप्लोरेशन इन् सिंध, मेम० ए० एस० आई० नं० ४८; चन्हुदड़ो एक्स-कैवेशन्स।

दोनों बर्त्तन एक ही जगह नहीं पाए गए थे और जहाँ पर त्रिहनी-बर्त्तन पाए गए हैं वहाँ पर टीले का स्तरीकरण नही किया गया है। (प्लेट XVII)

मजुमदार ने त्रिहनी मे लाल चाटो के छोटे टीले पर अनेक खाइयाँ खोदकर विस्तृत गवेषणा की है। उन दो मुख्य खाइयों में त्रिहनी-बर्त्तन और साथ ही बहुत-से चर्ट पत्ते मिले हैं जो निश्चय रूप से एक पुरानात्त्विक प्रसंग के हैं और इसके साथ ही एक झकर-बर्त्तन का ठीकरा भी है जिसके बारे मे किसी भी तरह का सदेह नही है। (प्लेट XVII) शाह हसन मे भी त्रिहनी-ठीकरे और साथ-साथ चर्ट-पत्ते प्राचीन हडप्पा की अधिकृत जगहो के ऊपर स्तरीकृत पाए गए थे। मजुमदार ने झगार मे एक छिन्न-भिन्न भूरे बर्त्तन का प्रमाण पाया था जिसे अब झंगार-बर्त्तन कहा जाता है। उन्हें एक दुरगे बर्त्तन का भी प्रमाण मिला था जिसपर साधारण चित्रकारी की गई थी, जिसका कही भी वर्णन नहीं किया गया है; लेकिन वह भूरे बर्त्तन का समकालीन था। चन्हुदडो के ऊपर भी झगार-बर्त्तन पाया गया था जिसमे विचित्र तरह का त्रि-घडा है जो शाही टप, सियाल्क VI और ईरान के शाही टंप मे पाए गए त्रि-घडो के समान है। यह निश्चित रूप से आक्रमण-काल से सबधित है। (प्लेट XVII)

तो भी इन तथ्यो से सबधित बात यह है कि झंगारकाल के चित्रित बर्त्तनों और चर्ट-पत्तो की तुलना जब हम त्रिहनी से करते हैं तो उनमे असमानता दिखलाई पडती है और जब कि त्रिहनी कुछ हद तक झकर के समकालीन है, झगर नही है—इसकी थोडी-सी पुष्टि हो सकी है। ऐसा कहने से यह स्पष्ट हो जाता है—"यह मान लेना तर्कसगत जान पडता है कि झगर एक सस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है जो मचरप्रदेश में त्रिहनी और शाह हसन के झीलवासियो के बाद उत्पन्न हुआ। मजुमदार का यह विचार यथार्थ है। अगर त्रिहनी का काल-निर्धारण हजार वर्ष पीछे करने की अपेक्षा हम १४००-१२०० ई० पू० करते हैं तो हम उसी दिशा मे जाएँगे जिसका निश्चय रूप से प्रमाण मिला है।

जोब मे उन बर्त्तनो को पहचाना जा सकता है जिनपर साहसपूर्ण पद्धति की चित्रकारी है जो कही-कही बहुरंगा है और जिनपर अनेक प्रकार की आकृतियाँ हैं जिसे लोरालाई V और पेरियानो IV की श्रेणी में रखा जा सकता है। डाबरकोट, ईसकान खान और स्पीना गुडाई और मनजाकाई के ठीकरे त्रिहनी से मिलते-जुलते हैं। स्पीना गुडाई के ठीकरो पर गुलाबी और भूरे रग की सजावट है और डाबरकोट के ठीकरे भी ऐसे ही प्रतीत होते हैं। इस तरह दोनो की पद्धति और रग त्रिहनी-जैसे ही हैं। इन सभी बर्त्तनो या किसी एक के लिए अर्द्ध-द्वितीय सहस्राब्दी की तिथि को अस्वीकार करने के पूर्व यह ध्यान रखना चाहिए कि राणा गुंडाई के तीनों स्तरों 'ए', 'बी' और 'सी' के बर्त्तन जो डाबरकोट, स्पीना गुंडाई और

पेरियानो गुंडाई में पाए गए बर्त्तनो के समान ही अचित्रित है, उन्होंने लोरालाई V और पेरियानो IV के चित्रित बर्त्तनो के स्थान ले लिए थे और इससे अधिक अवधि के समय की सूचना मिलती है। (चित्र २२, १ से ६)

शाही टंप और चन्हुदडो मे पाई गई पतली धातु के अतिरिक्त दो वस्तुएँ और मिली है जिनका सबध किसी भी तरह खुदाई से नही है जिसे कुर्रम में पाए गए ट्रूनियन या गंडेदार कुल्हाडी और फोर्ट मुनरो के आसपास पाए गए छुरे के समय का माना जा सकता है।[1] यह ताँबे की चौडी कुल्हाडी है जिसके प्रत्येक किनारे पर छोटा-सा 'लग' या प्रक्षेप लगा हुआ है। यह उस तरह की कुल्हाडी है जिसका पश्चिमी एशिया मे c २००० ई० पू० से प्रथम शहस्राब्दी की ई० पू० तक अधिक प्रयोग होता था। यह विशिष्ट उदाहरण छोटा है। यह १२·३ सी० मी० लबा और हल्का है और इस कुल्हाडी के दोनो छोरो पर कटाव है और इसका समय १७०० से १२०० ई० पू० के बीच किसी भी समय हो सकता है। इसके अतिरिक्त कि इसका प्राप्ति-स्थान शालोजान है जो कुर्रम के पश्चिम छोर पर पाराचिनार की घाटी में है, ऋग्वेद मे वर्णित ऋमु से यह मालूम होता है कि यहाँ पर उन प्रवासियो का विश्राम-स्थान था जो भारत मे गये लेकिन इससे बहुत थोडा निष्कर्ष निकलता है।

तब भी यह छूरा कम उपयोगी है। यह एक पहाडी बलूच, सभवत एक गडेरिये को, फोर्ट मुनरो के बाहर की अनुपयोगी भूमि मे, जो डेरा गाजी खान और झोब के बीच की सडक पर है और जो प्राचीन जगह नही है बल्कि जब सडेमन के नेतृत्व मे बलूचिस्तान मे शाति-स्थापन की नीति अपनाई जा रही थी तब सुविधा के लिए बनाया गया था, मिली। इस छूरे को पजाबी छूरा कहा जाता है जिससे राजनीतिक तौर पर यह पजाब मे भ्रम का कारण बन गया है, लेकिन भौगोलिक दृष्टि से फोर्ट मुनरो के सुलेमान-इलाके के बलूच-गिरिपाठ मे है। यह काँसे का १७३/४ इ च लबा एक अस्त्र है जिसकी मूठ पर पखे के आकार की सजावट है और यह लुरीस्तान और सियाल्क VI मे पाए गए छूरो के समान है जिसका काल c ११५० ई० पू० है।

आक्रमण-काल के भौतिक प्रमाणो को छोडने के पहले गुजरात और काठिया-वाड के उन स्थानो की समस्या की जाँच करनी पडेगी जिसे हडप्पा-सस्कृति की

१. गॉर्डन, अर्ली यूस ऑव मेटल्स इन् इंडिया एंड पाकिस्तान, जे० आर० ए० आई० वॉल० LXXX पृ० ५८

तरह माना गया है । इसमे कोई संदेह नहीं है कि अहमदाबाद के धोलका-तालुके के लोथल में किसी-न-किसी तरह का हड़प्पा-अवस्थापन था। खुदाई के समय सामान्य हड़प्पा-संस्कृति के बर्त्तनो के अलावा पाँच विशिष्ट हड़प्पा-संस्कृति की मुहरें और १०७ मिट्टी की मुहरें प्राप्त हुई । चित्रित ठीकरे जिनका अभी तक वर्णन हुआ है, उनमे साधारण पद्धति के अतिरिक्त जिसमे करीब-करीब सभी चित्रित बर्त्तनें हैं, कुछ भी हड़प्पा-संस्कृति की प्रणाली के नही हैं। लोथल मे वास्तविक हड़प्पा-संस्कृति की अधिकृति थी, इसमे संदेह नही किया जा सकता है, लेकिन सिंधु-सभ्यता के लंबे जीवनकाल मे कब इसकी स्थापना हुई, कब और किस संस्कृति से यह परिवर्त्तित हुआ, यह अभी तक स्पष्ट नहीं है।

रंगपुर का स्थान, जो लोथल के दक्षिण-पश्चिम के कोने मे २५ मील की दूरी पर है, दूसरा ही चित्र प्रस्तुत करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसके निम्न-स्तर में प्राक्-लघुपाषाणिक बर्त्तन उद्योग था जो मध्यभारत और पश्चिमोत्तर डेकन के स्थानों मे पायी गयी पद्धतियो की तरह है। जबतक एम० जी० दीक्षित द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट के प्रवर्द्धन मे दूसरी रिपोर्ट प्रकाशित नही होती है तबतक अधिकृत टुकडो का कालो मे बँटवारा और उस काल के क्रमिक स्तरो मे पाये गये बर्त्तनों का बँटवारा अस्पष्ट रहेगा । यहाँ पर उलझन को मिटाने के लिए दीक्षित द्वारा स्वीकृत तीन कालो को मान लिया गया है।[१]

रंगपुर प्रथम का प्रारंभिक काल अधिक दिनो तक रहा और इसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के बर्त्तन उत्पन्न हुए है। प्रकाशित पाडु ठीकरे[२] दीक्षित द्वारा ठीकरे वर्णित पाडु या पीले क्रीम की तरह लगते है जिन्हें स्तर दस मे पाया गया था जो करीब-करीब उसके वर्ग के सबसे नीचे था जिसपर क्रीम रग की लकीरे और भूरे और बैंगनी रग के चित्र हैं। कम-से-कम यह उनका वास्तविक रूप है। ये क्रीम रग के बर्त्तन जिनमे घडे विशिष्ट है उनके चारो ओर घेरा है। यह विशेषता आमरी-बर्त्तनो मे अज्ञात है और हडप्पा मे भी बाद के स्तरो मे पाये गये बड़े घड़ो के अतिरिक्त यह अधिक सामान्य नही है । एक पीठस्थ कटोरे का जिसपर एक मोर का चित्र है, वर्णन किया गया है जिसके आकार कुछ तैथिक महत्त्व के हो सकते है लेकिन सांस्कृतिक महत्त्व के नही।[३] इन क्रीम रंग के बर्त्तनो के नीचे अपने दो निम्न स्तरो मे दीक्षित ने एक कच्चा, ककड़ीला, बुरी तरह से जला हुआ बर्त्तन पाया था जिसपर

---

१. दीक्षित, एक्सकेवेशन्स ऐट रंगपुर, १९४७

२. इंडियन आॅक्योंलाॅजी—अ रिव्यू, १९५३-५४, पृ० ७ एवं प्लेट VII

३. इंडियन आॅक्योंलाॅजी—अ रिव्यू, १९५४-५५, प्लेट XII (ऊपर)

भूरी पांडु लकीरें थी, जिसे भूरे बर्त्तनो की श्रेणी में रखा जा सकता है। लेकिन यह रंगीन नही है।

हो सकता है कि ये स्तर प्राचीन हों भले ही अतिप्राचीन न हों; क्योंकि स्तर दस मे हम उस तरह के कटोरे और थालियाँ पाते हैं जिनका व्यवहार उन स्थानों पर हमेशा होता था और एक लाल रंग का ठीकरा भी पाते है जिसके साथ काले रग का नष्ट किया हुआ एक तालपत्र भी है। स्तर आठ और नौ मे, जो बर्त्तनो के अत्यधिक व्यवहार के लिए मशहूर है, हमे लाल रग के कटोरे और बीकर मिलते है जिनका घेरा सामान्यत: थोडा-सा उलटा हुआ है। इनसे आकार और सजावट मे थोडा-सा भिन्न एक अधिकृत अवस्थापन की तरह रगपुर मे जबतक इसका अस्तित्व रहा, बनता रहा। ये उसी तरह के कटोरे और थालियाँ थी जिनका वर्णन हो चुका है।

रगपुर द्वितीय और तृतीय के अधिकतर बर्त्तन काले रग के है जिनपर लाल लकीरें चित्रित है और इस तरह की विशिष्ट सजावट पूरे सिंध मे कही नही मिलती है, लेकिन ये, जैसा कि परिच्छेद सात मे दिखलाया जाएगा, प्रथम सहस्राब्दी ई० पू० के प्रारंभिक समय के पच्छिमी भारत के ताम्रपाषाणिक युग के बर्त्तनो से पूरी तरह सबधित है। इनमे और रावी-पद्धति मे, खासकर मृगो के चित्रो मे थोडी-सी समानता है और दुरगे बर्त्तन जो दीक्षित के स्तर आठ की दूसरी तह मे मिलते है, त्रिहनी और झगर के समकालीन हो सकते है जिनसे १२५०-११०० ई० पू० मे दुरगी चित्रकारी का प्रचलन सूचित होता है।

रगपुर का, खासकर निम्न स्तर ग्यारह और बारह का ठीक कालक्रम कुछ अस्पष्ट है। ताँबे की कुल्हाडी, फेएन्स, सेलखडी के दानेदार काम और पकी हुई मिट्टी की मूर्ति की प्राप्ति से ठीक-ठीक हडप्पा-सस्कृति की अधिकृति का प्रमाण नहीं मिलता है। बर्त्तनो की मिट्टी को छोडकर ये सभी वस्तुएँ पच्छिमी और मध्यभारत ताम्रपाषाणिक युग की देन है जिनका ऊपर वर्णन किया गया है और सिंधु-घाटी से उनकी प्राप्ति सभवत. लोथल-जैसे अवस्थापन से सबध के कारण है जिसका काल हडप्पा-सस्कृति के बाद का हो सकता है। त्रिकोणत्मक बर्त्तनो के टुकडे भ्रमात्मक है, लेकिन ह्वीलर का कथन कि इनका उपयोग शौचगृह मे होता था, निश्चय रूप से सत्य है।[1] कपडो को खराब होने से बचाने के लिए पेशाब के बूँदो को पत्थर पर सुखाने की एक सामान्य आदत है, जो अभी तक भारत और पाकिस्तान मे प्रचलित है। सिंध के अधिक भागो मे और गुजरात मे पत्थर तथा बर्त्तनो के टुकडे नहीं है

१. ह्वीलर, दि इंडस सिविलाइजेशन, पृ० ७०

जो अच्छी तरह इस काम को कर सकें। यह उपयोगितावादी काम है जो हड़प्पा के संपर्क से फैला और यह फैलाव पिछले सौ वर्षों या हडप्पा-सस्कृति के अस्तित्व के वर्षों मे हुआ होगा।

अगर रगपुर की प्रथम तह के भागो के बर्त्तनो का काल-निर्धारण १७५०-१२०० ई० पू० किया जाय और रगपुर २ के दुरगे बर्त्तनों का मेल ११५० के करीब के झंगर से दिखलाया जाय, तब तह द्वितीय और तृतीय का समय १००० से ७०० ई० पू० होगा और दक्षिण तक इस सस्कृति का प्रचार मालूम होगा जिससे यह ७५० ई० पू० तक ऊपरी गोदावरी के प्रदेशो तक फैली। दीक्षित की रिपोर्ट में दिखाये गये कटोरे और इसके मडलाधार सायोगिक योग को संकलिया द्वारा वर्णित जोरवे से करने पर दोनो मे बहुल समानता पायी जाती है।[१] चौडी प्रतिरेखाओं का समूह, पतली खडी प्रतिरेखाएँ, पाराकार रेखाएँ, प्रतिरेखित लोजेन्जेज, पूँछ की कुछ निम्न बिंदुएँ रगपुर और ऊपरी गोदावरी के समूह, दोनो मे सामान्य हैं। (चित्र ११, १ से ५)

रगपुर के सबसे ऊपरी स्तरो मे लाल और काले बर्त्तनो की खोज से इसके सबध मे एक विचार उठता है कि इसका समय और प्राप्ति-स्थान दक्षिणभारत होगा जिसका बहुत ही सास्कृतिक तथा तैथिक महत्त्व है जैसा कि अतिम परिच्छेद मे मिलता है। ये लाल और काले बर्त्तन अहर मे भी मिले हैं जो राजपुताना मे उदयपुर के निकट है और सभवत· कठियावाड़ मे भी मिले है यद्यपि रिपोर्ट की परिभाषा के सबध मे अस्पष्टता उत्पन्न होती है।[२] यह बतलाया गया है कि ये लाल और काले बर्त्तन दक्षिणभारत के लाल और काले बर्त्तनो से प्रत्यक्ष रूप से सबधित है और इनकी उत्पत्ति हडप्पा-काल की है।[३]

इन सभी समस्याओ का वर्णन आठवे परिच्छेद मे पूर्णरूप से किया गया है; लेकिन यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि उत्तरी पद्धति मे बहुधा उजले रग की सजावट रहती है जो किसी भी दक्षिणी उदाहरणो मे नही मिलती है और काली रँगाई का वर्णन भूरे से आरंभ किया हुआ बतलाया गया है जो दक्षिणी लाल और काले

---

१. दीक्षित, एक्सकेवेशन्स ऐट रंगपुर, १९४७, प्लेट V, ८; संकलिया एंड देव, रिपोर्ट ऑन एक्सकेवेशन्स ऐट नासिक एंड जोरवे, चित्र, ६५, ३६ ए

२. यह एक प्रबल तर्क है कि उलटकर पकाने से जो बर्त्तन बने उनकी सतह काली और लाल या भूरी थी। इसे लाल एव काला बर्त्तन कहते है। लाल बर्त्तन पर काले रगवाले लाल बर्त्तन को काले रंगवाला बर्त्तन कहते हैं। इससे बहुत-सी गड़बड़ी दूर हो जाएगी।

३. इंडियन ऑक्योंलॉजी १९५५-५६-ए रिव्यू विथ रेफरेंस टु अमरा, डिस्ट्रिक्ट हलार
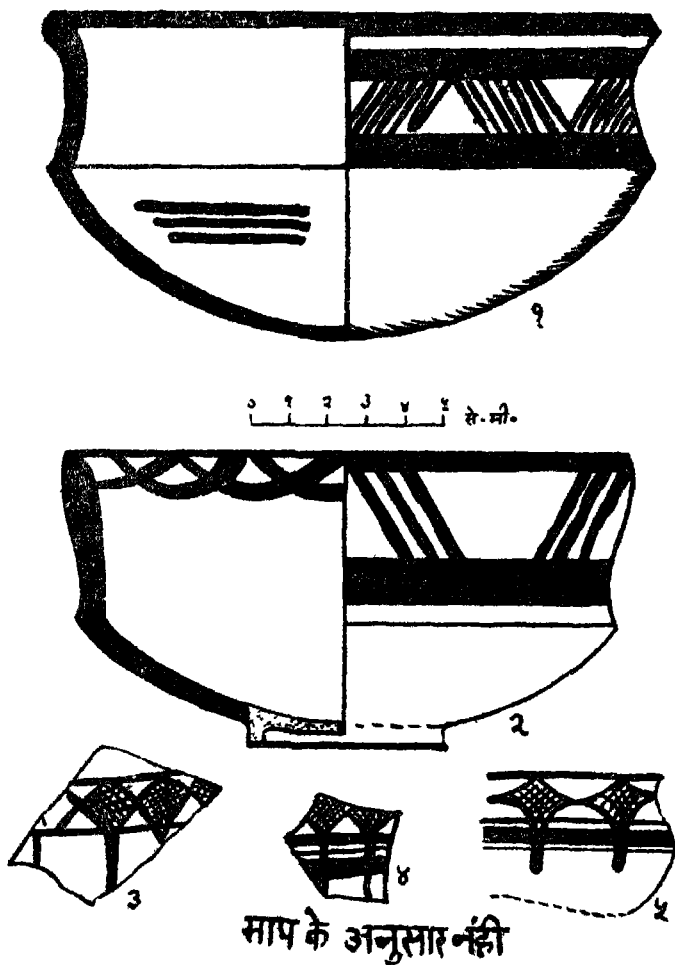
चित्र ११ जोरवे से प्राप्त कटोरों और उनके खण्डों की तुलना

बर्त्तनों मे नही मिलती है । किसी भी तरह ये बर्त्तन बाद के लगते हैं और इन्हें हड़प्पा-काल का बतलाने के लिए फिर से प्रमाणित करना आवश्यक है । कठियावाड के अनेक स्थानों को हड़प्पा की तरह बतलाया गया है जिससे लोगों के दक्षिणी किनारे की ओर का फैलाव मालूम होता है। जबतक हमारे पास अध्ययन के लिए काफी प्रमाण नही होगे तबतक मताग्रही आलोचना उपयुक्त नहीं होगी; लेकिन यह अधिक संभव प्रतीत होता है कि रगपुर की गूढ सस्कृति से उनका वास्तविक संबध है ।

आक्रमण-काल के इस परिच्छेद को समाप्त करने के पहले प्राचीन आर्यों के बारे मे एक बात बतलानी पडेगी । कभी-कभी इन अतिउपद्रवी आर्यों के साथ सपर्क बनाने पर लोग निराश हो जाते है । हम जानते हैं कि आर्य या इडो-यूरोपीयन एक बोली थी और है, और यह बोली हिटाइट मे पायी जाती है जो हिटाइट की मान्य सरकारी भाषा है । इसे मितानी के शासको की बोली मे, केसाइट राजाओ के नामो मे और सीरिया और फिलिस्तीन के शासको मे भी पाया जाता है, लेकिन अधिक मामलो मे हम पाते है कि उनकी प्रजा की भाषा एसिएनिक थी । जब यह भौतिक सस्कृति के अवशेषो मे आती है जो १३०० ई० पू० पहले की एक आसान तिथि है, और सभी प्रकार के आर्यो की बतलाई जाती है, तब कोई भी उनके अस्तित्व के सबध मे सदेह करना प्रारभ करता है । लेकिन बात यह है कि द्वितीय सहस्राब्दी ई० पू० के सपूर्णकाल मे, सपूर्ण अनातोलिया, काकेशश और ईरान की अधित्यका की अनेक सस्कृतियाँ पूर्ण या आशिक रूप से आर्य रही है ।

आर्येनम-वैजो जो अविभक्त आर्यों का परपरागत अवेस्तन निवासस्थान था, ईरान की अधित्यका या रूसी-तुर्किस्तान और रूसी स्टेप के बीच, बाल्टिक और उत्तरी ध्रुव तक है । समस्या यह है कि अनेक पुस्तको से बहुत कम बात मालूम हुई है, लेकिन ऐसा लगता है कि मुख्यत भाषा के आधार पर कोई भी आदमी मनमाने ढग से इसकी व्याख्या कर सकता है जिसे किसी बात को प्रमाणित करना है । इस तरह यह स्वय सिद्ध है कि जहाँ तक भारत और इसकी सीमाओ का सबध है, भारतीय आर्य ईरान से आए, उनके पहले का निवासस्थान कही भी रहा हो—यह महत्वहीन है । वे अशत उत्तर से हेरात होकर आए और किरमान से किला-ए-बिस्त होकर आए और कधार मे अभिविदुग हो गए । वे अशत , जैसा कि शाही टप के अवशेषों से पता लगता है, पर्सिया और बलूच-मकरान होकर आए । अनेक पर्वत-शृखलाओ से बचने के लिए जो काबुल के प्रदेशो मे पखो की तरह फैली हैं, उनके आगमन का पथ तोची, गोमल और कुर्रम घाटो से रहा होगा, जिनमे से दो का वर्णन ऋग्वेद मे किया गया है ।

ऋग्वेद के श्लोक, जिनकी तिथि द्वितीय सहस्राब्दी ई० पू० है और कम-से-कम सामान्य रूप से मान्य है, एकमात्र सूत्र है जिससे आर्यों के आक्रमण के बारे मे जानकारी प्राप्त होती है। फलत', उनसे विचारात्मक व्याख्या होती है, लेकिन इन कवित्व-शक्ति के उदाहरणो से पूर्ण ऐतिहासिक तथ्य निकालना पूर्णतया असभव है। ऋग्वेद के प्रकरण दो से सात तक, अनेक ऋषियों और महात्माओ द्वारा लिखे गए हैं जिन्होने पारिवारिक पुरोहितो-जैसा काम किया था, लेकिन वशिष्ठ और विश्वामित्र का व्यक्तित्व व्यापक और करीब-करीब सभी व्यावहारिक बातो मे स्थिर लगता है। वे कवित्व-प्रतिद्वन्द्विता के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण रहे है जिनका कुलवैर वशिष्ठ और विश्वामित्र के उत्तराधिकारियो तक चलता रहा और उसकी तीव्रता मे कमी नही आयी।

कुछ कबीली गुटबदियाँ मानी जा सकती है। एक अप्रसिद्ध छोटी जनजातियो का समूह उत्तर-पश्चिम की पहाडी-घाटियो मे रहता होगा जैसा कि अधिकतर लोग आज भी रहते हैं और इनमे से पखतासो को आधुनिक पखतून या पठानो के साथ समीकृत किया गया है। उत्तरी सिंध और पजाब के दक्षिण-पच्छिम मे यदु, तुरवासा और ब्रीचवत थे, जिन्हे मुनि विश्वामित्र के साथ असुरो की श्रेणी मे रखा गया है, यद्यपि इसमे बहुत कम सदेह है कि वे ईरानी थे और अधिकतर आर्य थे। त्रीत्सु और स्र जायालोग मध्यप्रदेश के स्थलो मे सरस्वती और यमुना के बीच में रहते थे। प्रारभ से ही पूर्वी और पश्चिमी जातियो मे एक लवे काल का कुलवैर प्रतीत होता है जब तुरवासा और ब्रीचवत, हरियुपिया मे, जिससे हडप्पा का बोध होता है स्र जाया से दस राजाओ की लडाई मे लडे थे जब सभी जातियो के राज्य-सघ को सुदाज ने, जो त्रित्सु और स्र जाया का नेतृत्व करता था, हरा दिया, एक पराजय जिसने पूर्ववासियो को सतलज के पार उनके शत्रुओ, तुरवासा, घ्रुहपु और यदु के किसी भी प्रकार के आक्रमण से सुनिश्चित कर दिया।

इसमे बहुत कम सदेह है कि पच्छिमी जनजाति के लोगो ने पनीस और सिंधु-घाटी और दक्षिणी पंजाब के असुरो से समझौता किया था। ऋषि विश्वामित्र और भृगु का नाम असुरो के साथ जुडा हुआ है। वरचिन, जिसका ब्रीचवत के साथ कुछ सबध प्रतीत होता है, एक दास और असुर था। कहा जाता है कि तुरवासा और ब्रीचवत समुद्र-पार से इद्र द्वारा लाए गए थे जिससे समुद्र को इंडस से सबोधित करते हैं और ये झकरलोगो के ही वंशज हो सकते हैं। सिंधु-घाटी के असुरों का इतना व्यापक प्रभाव था कि उन्होने वैदिक आर्यों की धार्मिक भावनाओ को कम कर दिया। मध्यदेश की जनजातियो को इससे सबंधित किया जा सकता है। जैसा कि हटन अपनी पुस्तक 'कास्ट इन् इंडिया' मे कहता है—"अगर यह सस्कृति सिंधु-घाटी से पूर्णतया विलीन हो जाती है, तो भी ऋग्वेद के आर्यों पर पूर्ण ताकत से प्रतिक्रिया

करने के लिए, जिनकी धार्मिक भावनाओ का इसने अपने दर्शन मे निमज्जित कर लिया, कायम रही है" और फिर "स्पष्टत. ऋग्वेद के आर्यों के पहले यहाँ ब्राह्मण लोग थे।"[१]

डी० डी० कोसाबी इस विषय पर सुन्दर ढग से अनेक आलोचनाएँ करते है। वास्तविक मनुष्यजाति या मनुष्यो से असुरो की समरूपता के सबध मे अनेक विद्वानो ने सदेह प्रकट किया है। उनका दृढ़ विश्वास है कि ये असुर अहितेच्छु पौराणिक जीव थे, किसी भी तरह मनुष्य नही थे। इनके विषय मे कोसाम्बी कहते है—"असुरो को मनुष्य के जैसा समझना अच्छा रहेगा, अगर असीरियन नही मानते है, जैसा कि ऋग्वेद मे (X.१३८.३, II.३०.४ और VII ९९.५ मे) कहा गया है। आलोचको की यह व्याख्या कि असुर देवताओ द्वारा पूजे जाते थे, सर्वथा असगत है। उनकी परपरागत द्वद्व-गीत 'हेलाओ हेलायेह्' को पतंजलि ने बर्बरतापूर्ण बातो का एक उदाहरण माना है।"[२] इसके अतिरिक्त तैत्तिरीय संहिता (II.५.१) बतलाता है—"विश्वरूप, जो त्वस्त्र का पुत्र था, देवताओ का पुरोहित और असुरो का भानजा था।" ऋग्वेद के श्लोक १ १०८ मे यदु और तुरवासा को इंद्र का दुश्मन बतलाया गया है। वे ययाति के पुत्र बतलाए गए है जो देवयानी से पैदा हुए थे जो शुक्र की ब्राह्मण की लडकी थी और शुक्र असुरो का गुरु था। कोसाबी स्पष्टता-पूर्वक कहते है कि "यदि हम मानते है कि सभी ब्राह्मण प्रारभ से ही आर्य थे और वे पुरोहित थे जिसका विकास उनके अदर से ही हुआ था तो इस व्याख्या से हमे बहुत कम मालूम होता है, सिवा इसके कि हमारी पौराणिक कथाएँ अर्थहीन है।"[३]

हम अच्छी तरह जानते है कि आर्यों की कोई भी विजय सुगमतापूर्वक नही हुई, न उनके पास आदिमजातियो से सर्वोत्तम वस्तुएँ और संस्कृति ही थी। हड़प्पा-वासियो की जमीने दखल कर ली गयी लेकिन साथ-ही-साथ कुछ आक्रामको ने दूसरे लड़ाकू-आर्यो के विरुद्ध उनसे सधि भी की, क्योकि जैसा कि कोसाबी बतलाते है, "ऋग्वेद के छठे परिच्छेद मे तीन बार और सातवें परिच्छेद मे एक बार आर्यों और उनके शत्रु अनार्यो, दोनो को रक्षा के लिए वैदिक देवताओ की प्रार्थना करते हुए वर्णन किया गया है।"[४] मोहेजोदडो के अन्तिम पतन पर प्रकाश डालते हुए कोसाबी न दूसरा महत्त्वपूर्ण सुझाव भी दिया है। उस श्लोक मे जहाँ इद्र, नदी को

१. हटन, कास्ट इन् इंडिया, पृ० १३१ एवं १३२
२. कोसांबी, ऑरिजिन् ऑव ब्राह्मण-गोत्र, पृ० ३१
३. वहीं, पृ० ४०, ४४ एवं ३४
४. कोसांबी, ऑरिजिन ऑव ब्राह्मण-गोत्र, पृ० ४६ एवं ४७

जिसे बाँधा गया था, आजाद करता है, वह दावापूर्वक कहता है कि इद्र के द्वारा हटाया गया बाँध कृत्रिम है, प्राकृतिक नही और वे मार्शल द्वारा वर्णित मोहेजोदडों के पच्छिम की नद के बाँध के बारे मे बतलाते है और कहते है कि इन बाँधो को तोड-कर आक्रामको ने नगर की मुख्य कृषि को बरबाद कर दिया। यह पूर्णतया परिकल्पित है और वर्षा बरसानेवाली परिकल्पित कथा की अपेक्षा इस व्याख्या के अनेक अर्थ है।

प्रारभिक सिंध-आर्यो की सास्कृतिक व्यवस्था और चुचीलेन के योद्धा-युग और आयरलैड के फियान के बीच बहुधा सारूप्य पाया गया है। पशुओ की चढाई, आखेट और भोजन की कहानियाँ बहुत सामान्य है। बर्बरतापूर्ण गदगी, बर्बरतापूर्ण फिजुलखर्ची और जनजाति के प्रधानो के दिखावे की पार्श्वभूमि भी समान है। आयरलैड के महाराजा का दूनसचित कराल मे थोडा ही अच्छा है और इसलिए इसमे मुझे सदेह नही है कि महाभारत के महाराजाओ के प्रासाद जो महाकाव्यो मे नि सदेह उनका प्रतिबिब प्रतिबिबित करते है और जो प्राचीन ऐतिहासिक काल के लेखको और सग्रहकर्ताओ को ज्ञात है, केवल उनके स्वामियो की ख्याति को बढाने के लिए अधिक आश्चर्यजनक बताये गये है।

जहाँ तक जुआ का सबध है, पासा हमेशा गभीर झगडे की जड हो जाता था। वैदिकयुग के पासे का प्रकार सायोगिक है, जिसमे किसी को भी अभी तक प्रकाश मे नही लाया गया है, लेकिन घनाकृति और सारणिक पासे का अस्तित्व हडप्पा-सस्कृति मे और प्रारभिक ऐतिहासिक युग मे वर्तमान था। महाभारत मे शकुनी ने, जो गधार का राजकुमार था, अपने पासे के कौशल से द्रौपदी को जीत लिया था और यह सभव है कि हड़प्पावासियो के काल मे ही जब इसका चलन हुआ अनेक तरह के पासे व्यवहृत होते रहे। निशान लगाने की पद्धति दिलचस्प है। मोहे-जोदडो मे प्राप्त एक पासे मे सुमेरियन पद्धति से १-२, ३-४, ४-६ निशान लगाये गये थे जो विरोधीदल के लिए थे। हडप्पा-पद्धति १-२, ३-४, ५-६ थी। प्रारभिक युग के घनाकृत पासे आधुनिक व्यवहारो को मानते है जिसके द्वारा विरोधीदल मिलकर सात बन जाता है, दूसरी तरफ सारणिक पासे जो सार धेरी, तक्षशिला और मास्की से मिले है जिनमे चार के अकित रूप है और विरोधीदल के लिए १-३, २-४ है। यह हडप्पा की सारणिक पासे के बहुत अनुकूल है, जिसपर दो देशान्तरीय रेखाओ से १-३, २ अकित किया गया है, लेकिन इस दताकार वस्तु पर इतने अधिक अकन है कि सभव है इसे विविध प्रकार के कार्य करना पडता रहा हो, संभवत कुछ का शकुन-विचार के लिए उपयोग किया जाता हो।

आर्यो और दासो मे प्रभेद करने की अपनी कुछ कठिनाइयों के लिए हमे

पारिवारिक भाटो को दोष देना चाहिए। यहाँ हमे कैल्टिक विश्व से पूर्णरूपेण समानता मिलती है। भाट-सरदार और उसकी जातियो के क्रियाकलापो को लिखने, सरदार की वंशावली और उसके दिवगत पूर्वजो की वीर-गाथा गाने के लिए रखे गये थे। शत्रुओ को शाप दिया जाता था और भाटो द्वारा शाप देना बहुत भयावह बात थी। जातिगत शत्रुओ को शाप दिया जाता था, प्रतिद्वन्द्वियो को शाप दिया जाता था और ये भाट थोडा भी अपमानित होने पर या अनिच्छा से भी बहुत भयकर शाप दे दिया करते थे। तब इसमे कोई आश्चर्य नही है कि अपने कवित्व-क्रोध मे ऋषि लोग सभी को या कई-एक को दास कह देते थे। इस प्रकार के विशेष नाम-जैसे, अनास, चौडी नाकवाला, अवैधिक मृध्रावाचा, स्खलित उच्चारण, बहुधा अपशब्द हैं। यूनानियो के लिए सभी विदेशी बर्बर या स्खलित उच्चारणवाले थे। काली त्वचावाले भी उनकी कवित्व-शैली मे निंदनीय थे। सभी आर्यों के लिए काली वस्तु किसी भी हालत मे बुरा अर्थ रखती थी। इससे यह नही समझना चाहिए कि जिनलोगो को काला छोटी चिपकी नाकवाला दास कहा जाता था वे वास्तव मे आस्ट्रालायड आदिमजाति थे, बल्कि द्वेष के कारण विशिष्ट कवित्व-उद्‌गार से उन्हे सिर्फ इस वर्ग मे रखा गया था।

जब वैदिक आर्यों ने उत्तरी भारत पर अपना प्रभुत्व जमा लिया, तब उन्हे नव-प्रस्तरयुग की सस्कृति के वास्तविक आदिमजाति—निषादो और सावारो के साथ मुठभेड करनी पडी, जिसका वर्णन द्वितीय परिच्छेद मे किया गया है। जब वे इस देश मे सतलज और यमुना के बीच, प्राचीन कुरुक्षेत्र मे दृढतापूर्वक जम गये, तब वे नीचे की ओर यमुना-गगा के दोआब से हस्तिनापुर और कान्यकुब्ज और बाद मे कौशाबी और अयोध्या की ओर खदेड दिये गये। यादवो द्वारा दक्षिण मे भी एक आन्दोलन हुआ जो पहले-पहल उन्हे नर्मदा तक ले आया और बाद मे अस्माका और विदर्भ परिमडल तक, जो प्रथम ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दी तक आर्यों का दक्षिणी विस्तार रहा।

परिच्छेद ६

प्रस्तर-चित्रकला और नक्काशी

पुरापाषाणिक प्रस्तर-चित्रकला का यह महत्त्व है कि उस तरह की कोई भी वस्तु जो इस प्राचीनतम वस्तु से सबध स्थापित करने मे सफल नही हो पाती, उस पर किसी भी तरह का विचार नही किया जा सकता है। यह दिखलाया गया है कि किसी भी तरह की भारतीय प्रस्तर-चित्रकला या नक्काशी जो अभी तक ज्ञात है, अति प्राचीन है। इसमे कभी भी न अधिक जिज्ञासा रही है और न यह विशेष अभिज्ञात है। यह जिज्ञासा ऐसी स्थिति मे पहुँच गई है कि इसकी चर्चामात्र विचारणीय और अभिनदनीय होगी।

प्रस्तर-चित्रकला का प्राचीनतम लेखनपत्र कारलियेल का था जो अलेक्जेडर कनिघम का परिश्रमी सहायक था। उसने कैमूर-शृ खलाओ की उत्तरी चट्टानो के प्रस्तर-आश्रयो मे कही प्रस्तर-चित्रकला की खोज की थी। उसने अपनी देखी हुई चित्रकारी का वर्णन इस प्रकार किया है—"वहाँ प्रस्तर-चित्रकला थी जो स्पष्टत: भिन्न-भिन्न युगो की थी। इनमे से कुछ अपरिष्कृत चित्रकारी बहुत कडे और प्राचीन ढग से, प्राचीन प्रस्तर-तराशो के जीवन के दृश्यो का वर्णन करते हुए प्रतीत होते है, कुछ जानवरो या मनुष्य द्वारा तीर-धनुष, भाले और कुल्हाडियो से जानवरो के शिकार का वर्णन करते है।"[1] यह सामान्य वर्णन, महादेव पहाडियो मे हम जो कुछ पाते है, उससे बहुत अधिक समरूपता स्थापित करता है।

कॉकबर्न ने प्रस्तर-चित्रकारी, जिसे उसने कैमूर की चट्टानो मे पाया था, कुछ ऐसे निरीक्षण के साथ जो अधिक सहायक नही है, चार प्रतियो मे प्रकाशित किया था। यह लेख्य विनसेट स्मिथ के द्वारा प्रस्तुत किया गया था जिसकी विचक्षण टीका कॉकबर्न की अति परिकल्पित उडान को कम करने मे बहुत सहायक सिद्ध हुई है। और उन्होने यह भी बतलाया है कि किस हद तक खोज की गई वस्तु उचित प्रकाशन के लिए असफल सिद्ध हुई थी।[2] प्रस्तर-चित्रकला के इन क्षीण प्रमाणो के बावजूद, कॉकबर्न द्वारा समर्थित इसकी प्राचीनता के विचारो को अधिक पहले

१. स्मिथ, पिग्मी फ्लिनट्स, ने रेव०आर० गैटी के नाम कारलियेल का पत्र उद्धृत किया है।
२. कॉकबर्न, जे०, 'केव ड्राइंग्स इन द कैमूररेंज', जर्न० रॉयल एशिआटिक सोसाएटी, १८९९

अप्रत्याशित समर्थन मिला था। यूरोप में अति प्राचीन चित्रकारी-कला की खोज की गई है और उससे भी अनेक पुराने चित्र अफ्रिका में पाए गए हैं। निस्संदेह पुरा-पाषाणिक कला का केंद्र बनने की अब भारत की बारी थी। यहाँ केवल सी० डब्लू० एडरसन के द्वारा रायगढ-राज्य मे सिंघनपुर-प्रस्तर-आश्रयो की खोज करना आवश्यक था जिससे कि इसे अतिरिक्त प्रोत्साहन दिया जा सके, जो आवश्यक था।

इसका प्रारभ एडरसन[1] के द्वारा चित्रो की प्रतियो का प्रकाशन और मित्र महोदय द्वारा उनकी पुस्तक 'प्रीहिस्टोरिक इडिया' मे इसके पुन. वर्णन के साथ हुआ। ये प्रतियाँ अच्छी है या नही, इसपर अच्छी तरह तर्क नही दिया जा सकता, लेकिन किसी भी तरह इन्हे मनोरजन घोष के निर्देशन मे काम कर रहे कलाकारो द्वारा पेश की गई प्रतियो मे तुलना की जा सकती है, जो उत्तम श्रेणी की है।[2]

यह अति दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि मित्र महोदय ने किसी तरह कोगल और अल्तामिर से इन चित्रो की प्रतियाँ प्राप्त की जिन्हे उन्होने 'सिंघनपुर-गुफा-चित्र' शीर्षक देकर प्रकाशित किया। सभवत पर्सी ब्राउन, जिसने सिंघनपुर-चित्रो और स्पेन की गुफाओ के चित्रो मे समरूपता देखी थी और तुलना के लिए स्पेन की गुफाओ के चित्रो को पेश किया था। उन दोनो मे से किसी को भी मित्र महोदय ने नही देखा, पर उन्होने निर्विकार भाव से सिंघनपुर के कुछ चित्रो की श्रेणी मे उन्हे सम्मिलित कर दिया।

पचमढी (मध्यप्रदेश) के चारो ओर घिरी महादेव पहाडियो मे चित्रित अनेक चित्र भारतीय प्रस्तर-चित्रो के यथार्थ स्वरूप के प्रतिष्ठापन मे समर्थ हो सकेंगे। ऐसा करने के लिए उन तरीको का सक्षिप्त वर्णन आवश्यक होगा जिसमे वर्णित चित्रो के क्रमो को सुलझाया गया था—इन्हे क्रमबद्ध किया गया था। प्रत्येक क्रम इसके क्रमानुयायियो से सबधित था और इसके कुछ पिछले क्रम निश्चित रूप से कालक्रमिक तत्त्वो के समरूप थे। यह उचित होगा कि हम अन्य स्थानो के कुछ महत्त्वपूर्ण ज्ञात चित्रो को लें और उन्हे भौगोलिक दृष्टि से न रखकर कालक्रमिक रूप मे रखें।

पचमढी और उसके निकट की अनेक चट्टानो मे हैरत मे डालनेवाले अनेक चित्र मिलते है और जो एक दूसरे से घोल-मेल है, चट्टानो की विस्तृत सतह पर छाये हुए है। उनमे अनेक छोटे-छोटे लोग पैदल और घोडे पर सभी दिशाओ मे दौड़ते हुए और कभी-कभी तीन गहराइयों मे चित्रित किए गए हैं (प्लेट XVIII)।

1. एंडरसन, सी० डब्लू० सिंघनपुर रॉक पेटिंग्स, जर्न० बिहार एंड उड़ीसा रीस० सोस०, VI, 1918

2. घोष, एम०, 'रॉक पेंटिंग्स ऐंड अदर एंटीक्विटीज ऑव प्रीहिस्टोरिक ऐंड लेटर टाइम्स, पृ० 19, 14 मेम० आर्के० सर्वे ऑव इंडिया, नं० 24, 1932

साधारण तौर पर छोटे-छोटे धनुषधारियो की उन्मत्त दौड़-धूप के चित्र दक्षिण-पूर्व स्पेन के प्रस्तर-चित्रो की तरह ही भाव प्रदर्शित करते हैं। लेकिन इन भारतीय उदाहरणों को निकट से देखने पर धनुषधारियो से मिले-जुले ढाल-तलवार के साथ जीनपोश घोडे पर सवार आदमियो के चित्राकन से हमारे कुछ अधिक अतिकल्पनाशील अन्वेषक भी खम खा जाएँगे। कुछ लोगो के द्वारा यह महसूस किया गया है कि मिधनपुर के चित्र रहस्यपूर्ण ढग से भारत के अन्य भागो के चित्रो से पूर्णतया भिन्न और पुराने है। पर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि ऐसी बात नही है। वास्तविक गूढता और आश्चर्य की बात यह नही है कि ये चित्र धातु के शस्त्र नही दिखलाते है या सभवत कुछ बातो मे अधिक पुराने है, बल्कि यह है कि इन दूरवर्ती महादेव पहाडियो के जगली प्रस्तर-आश्रयो मे युद्धो के चित्र होने चाहिए जो स्पष्ट रूप से खुले समतल मैदान मे योद्धाओ के सगठित समूहो मे युद्धो का वर्णन करते हो।

इन चित्रो के तिथि-निर्धारण करने के लिए महादेव पहाडियो मे प्रतिष्ठापित शृखला की ओर बहुत हद तक दृष्टिपात करना पडता है, तो भी कुछ जाँच-पडताल करने पर इसके गुण दिखलाई पडते है। इस नतीजे पर पहुँचने के लिए दो बडी चट्टानो मे २१७ चित्र या चित्रो के समूह दर्ज किए गए थे, जिनमे ६१ चित्रो को पुन चित्रित किया गया था और २९ अध्यारोपित दृष्टान्तो को स्पष्ट किया गया था। इन तथ्यो से प्राप्त स्पष्ट फलो को १३ और प्रस्तर-आश्रयो से प्राप्त लेखो मे मिलाया गया और चित्रो के समूह को चार मुख्य वर्गों मे रखा गया, जिनमे प्रत्येक मे प्रारभ और अत के चित्रो को रखा गया था। जब अन्वेषण का दायरा ४४ प्रस्तर-आश्रयो तक बढ़ा, जिनमे कुछ आश्रयो मे थोडे-से चित्र मिले और कुछ आश्रयो मे सैकडो भिन्न-भिन्न वस्तुएँ मिली, तब इन सामान्य जगहो मे किसी भी वस्तु को इनमे से किसी वर्ग के साथ तुलना करना सभव लगने लगा।

अभी तक करीब-करीब प्रत्येक चट्टान मे पाये गये समरूप चित्रों मे जानवरो और उजले गेरू मिट्टी मे आदमियो के चित्र मिले है जिनमे आदमियो के चित्रो को भिन्न-भिन्न क्रियाकलापो मे सलग्न दिखलाया गया है। इसके अतिरिक्त लाल और गुलाबी रग के चित्र है जो यद्यपि उजले गेरूवाले चित्र से अधिक सपरूपता दिखलाते है, जहाँ-जहाँ वे मिलते हैं, रेखाकित हैं। इन स्पष्ट सबधित चित्रो के क्रम बन गये थे जिनमे लाल और गुलाबी चित्र पहले के थे और उजले गेरूवाले बाद के। इसका वर्णन किया गया था कि उजले गेरू रग के अनेक चित्र थे जिनमे लाल रग के घेरे थे और ये चित्र बाद के थे। वास्तव मे इन चित्रो मे पहले के चित्र जो उसी पद्धति के थे जिनमे लाल घेरे के साथ उजले गेरू

रंग के चित्र थे। लेकिन बाद के चित्र यद्यपि अधिक विस्तृत तथा क्रमबद्ध थे, बहुत अस्पष्ट थे और ये मध्यकालीन युग के क्रमों का अन्त कर देते हैं जिसे हमलोग देखेंगे। लाल घेरे की अपनी कलात्मक परिपाटी से युक्त होकर ये चित्र एक वर्ग मे आ जाते थे।

ये दोनो क्रम स्पष्ट रूप से ऐतिहासिक काल का वर्णन करते हैं। लोग शिकारियों की अपेक्षा पशुपालक तथा कृषक थे। उनके पास तलवार, ढाल, भाला, कुल्हाड़ी, छुरे, धनुष और तीर, तुरही या युद्ध-बिगुल तथा ढोल आदि अनेक विस्तृत सैनिक सामग्रियाँ थी। वे जीनपोश घोडे तथा कभी-कभी हाथियो पर सवार होते थे। उनके पास बैल, बकरियाँ, गधे, कुत्ते तथा कलाबाजी करनेवाले बन्दर तथा भालू थे। वे नाचते थे, बीन बजाते थे, शिकार खेलते थे और जगली मधुमक्खियो के छत्तो से मधु सग्रह करते थे। हमलोग उनके विश्रामस्थलो, उनके कपडो को जो थोड़ा-सा सुन्दर था, उनके बर्त्तनो, टोकरियाँ, बेंचो, उनकी औरतो को पानी लिये, अनाज कूटते, सूत कातते तथा बच्चो की देखभाल करते हुए देख सकते है। वास्तव मे उनके जीवन की कोई भी विशेषता ऐसी नही है जो इन चित्रो मे चित्रित नही है। परतु ये स्पष्टत महान् युग की कृतियाँ नही है, इसीलिए ये अपनी महानता की ओर लोगो का ध्यान आकर्षित नही करते है।[1] कैमूर-चित्रो के सबध मे काकबर्न की एक उग्र टिप्पणी बहुत हद तक महादेव पहाडियो के सबध मे ठीक बैठती हैं। उन्होने कहा है कि "अगर इससे अधिक जानकारी प्राप्त नही होती है, तो भी निश्चित रूप से भरहुत-वेदिका की मूर्त्तिकला की तरह ही इससे जानकारी प्राप्त होगी।"

यद्यपि इन चित्रो मे अधिकांश, जिन्हे हम देखते हैं, ऐतिहासिक काल के है तो भी इनका प्रारभिक क्रम मौजूद है जिसपर ये योद्धा जनजाति के लोग अपने दैनिक जीवन के कृत्यो को चित्रित करना चाहते थे, जिसपर उनलोगो ने अपने उछलते घोडो, स्थिर बैलो और तेजी से दौडते हुए तलवार चलानेवाले और धनुषधारियो को अध्यारोपित किया था। जाँच करने पर स्वय इनका एक आयोजित क्रम बन जाता है जो सबसे प्राचीन है और एक ऐसे लोगों का, जिनका मुख्य पेशा शिकार जान पडता है, एक अधिक प्रकृतिवादी क्रम बन जाता है जो प्राचीनतम और ऊर्ध्व-

१. गॉर्डन, इंडियन केव पेंटिंग्स; द रॉक पेंटिंग्स ऑव द महादेव हिल्स; गॉर्डन एम० ई० एंड डी० एच०, दि आर्टिस्टिक सिक्वेन्स ऑव द रॉक पेंटिंग्स ऑव द महादेव हिल्स, साइन्स एंड कल्चर, V न० ६, १९३९, कलकत्ता
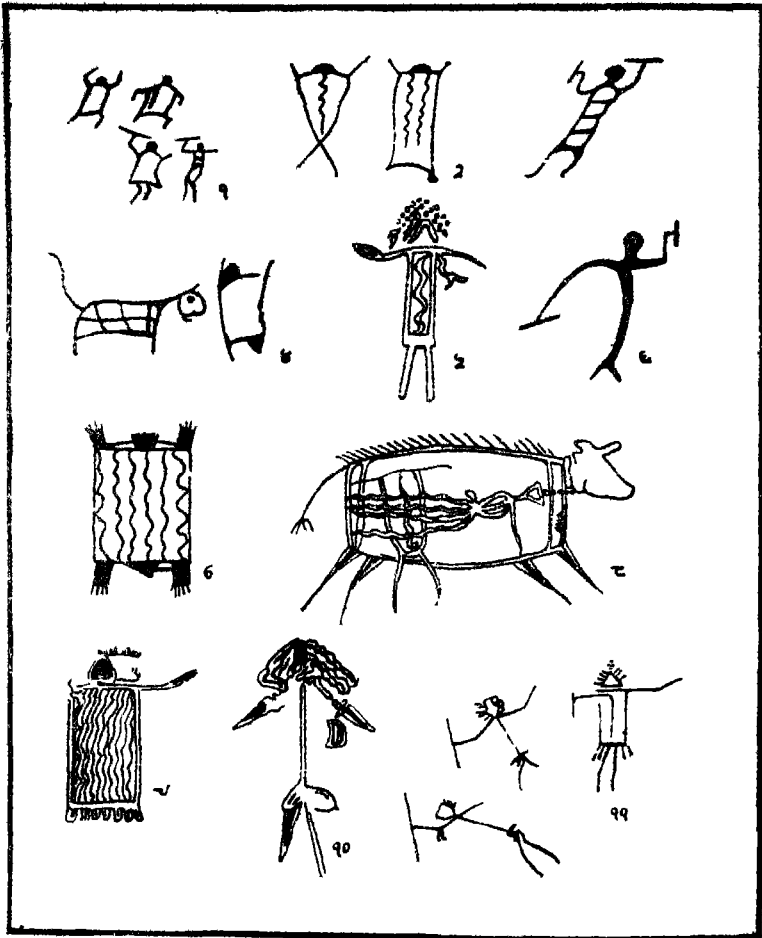
चित्र १२. प्रथम चित्रक्रम, महादेव पहाड़ियाँ, सिंघनपुर और काबरा पहाड़ से तुलना

शायी लाल और गुलाबी चित्रों के बीच में आता था। आयोजित चित्र प्रथम क्रम बना, शिकारी द्वितीय और एक तीसरा क्रम भी बना जिसका प्रारंभिक भाग लाल या गुलाबी था और बाद का उजला जिसने अपने समय मे लाल रूपरेखा अर्जित की और अंततः जो हमे प्राचीन और बाद मे चतुर्थ क्रम प्रदान करते हुए कलात्मक निष्पादन मे अपकर्षित हो गया।

ईस्वी सन् की प्रारभिक सदी मे जो जीवन का महत्त्वपूर्ण चित्र प्रस्तुत करता था, वह तृतीय और चतुर्थ क्रम हैं। लेकिन जो अभी तक के पाये गये दूसरी जगहो के चित्रो की सभावित तिथि का अदाजा लगाने मे महत्त्वपूर्ण है, वे प्रारभिक दोनो क्रम है। ये वे क्रम हैं जो रायगढ और मिर्जापुर के चित्रों से शृंखलाबद्ध करते है और छद्म पुरापाषाणिक विलगाव से इन्हे रोकते है और महादेव पहाडियों में प्राप्त अनेक चित्रो से इनका विच्छेद करते है।

प्रारभिक प्रथम क्रम के चित्रो मे जो महादेव पहाडियो मे सबसे प्राचीन खोज है और सभी जगहो मे, जहाँ यह पाया गया है, निम्न स्तर मे स्थित है, लाल और क्रीम रग मे परपरागत मनुष्य और जानवरो के चित्र है। दूसरे क्रम की तुलना मे ये कम हैं, लेकिन बाद के प्रथम क्रम के लाल हेमाटाइट मे छडी की तरह के चित्रो मे इनके सक्रमण का आसानी मे पता लगाया जा सकता है। वर्गाकार आकृति, टेढी-मेढी और लहरदार पक्तियो की सजावट और त्रिभुजाकार शीर्ष उनकी विशेषता है और यह भी हो सकता है कि उनको अलकृत वर्गाकार आकृति और नीचे की धारी पोचो की तरह के धारीदार या झब्बेदार मगजीवाले वस्त्र का प्रतिनिधित्व करती हो। (चित्र १२, ९) बाद मे हम परिवर्त्तन और सादगी पाते है। हम एक लाल और क्रीम रग के चित्र पाते है जो स्पष्ट रूप से बाद के प्रथम क्रम के छडी के आकार वाले चित्रो के अन्तर्कालीन चित्र हैं जो वर्गाकार शीर्ष और क्रीम तथा लाल रग से चित्रित बाल या सर के वस्त्रों के चित्र को प्रतिधारित करते हुए, छडी के आकार-के शरीर और अग के जोडो की विचित्र परपरा को प्रतिष्ठित करते है जो बाद के प्रथम क्रम के चित्रो के लिए अनोखा है। (चित्र १२, १०) प्रारंभ के प्रथम क्रम के सर के गुलाबी वस्त्र और केन्द्र के नीचे एक लहरदार पंक्तियों का वर्गाकार शरीर और त्रिभुजाकार सरवाले वर्गाकार शरीरवाले चित्रों को छडीवाले चित्रो के साथ वर्गीकृत पाया गया है।

सौभाग्य से अध्यारोपित चित्रो को पाना संभव था जिससे प्रारंभिक चित्रों का स्पष्ट क्रम ज्ञात हुआ जिनमें प्रारभिक द्वितीय क्रम के क्रीम रंग के चित्र थे, जिनमें विशिष्ट प्रकार की लहरदार पंक्तियाँ हैं जो कटि के बाद से आश्रित हैं, जिनमें

शरीर पर एक केंद्रीय लहरदार पंक्ति है जो प्रारंभिक बादवाले प्रथम क्रम के संक्रामी हैं, जिनमे प्रारंभिक प्रथम क्रम के जानवरो के विशिष्ट लाल और क्रीम रग के चित्र अधिचित्रित है। (चित्र, १२, ८) प्रारभ से बाद के प्रथम क्रम और प्रारंभिक द्वितीय क्रम का सक्रमण स्पष्ट है और प्रारंभिक प्रथम क्रम के चित्र जो अधिक महत्त्वपूर्ण है, उस समय के नही कहे जा सकते है जो अन्य सभी से अनेक सहस्राब्दियो से वियुक्त किये गये है।

अब हम सिघनपुर और काबरा पहाड के रायगढ चित्रो की जाँच करने मे समर्थ है। पहले चित्र की खोज एडरसन के द्वारा चरवारवल पर्वतश्रेणी के प्रदेशो मे कुछ पाँच या छह सौ फुट ऊपर एक प्रस्तर-आश्रय मे की गयी थी जो पूरब और पच्छिम से बगाल-नागपुर रेलवे के (अब दक्षिण-पूर्वी रेलवे) समानान्तर उत्तर की तरफ जाती है। अभी तक अधिकाश चित्र गहरे लाल रग मे है, कुछ लाल लिए हुए नारगी रग मे है और बाद के चित्र लाल और जमुनिया रग के है जो करीब-करीब काले मालूम पडते हैं। प्रस्तर-आश्रय स्वय बहुत हीन श्रेणी का निवासस्थान रहा होगा, जिसकी धरन बहुत पतली और समतल जगह बहुत सँकरी है। चित्रो की सख्या अधिक नही है और न अध्यारोपण का ही कोई प्रमाण है। प्रस्तर-आश्रय के सामने बाई तरफ के चित्र असबद्ध तथा अपरिष्कृत है और ये प्राचीन भी हो सकते है, केंद्रीय द्वार के चित्र बाद के हैं और दाहिनी ओर के वर्गीकृत चित्र दोनो के बीच मे आते है। अभी तक अधिकाश चित्र पूर्णतया असबद्ध है और इनमे अनेक सकेतो का प्रयोग हुआ है जिनका उनलोगो के लिए कुछ अर्थ था, जिन्होने खीचा था, लेकिन हमे यह कबूल करना आवश्यक है कि हमे उनसे कुछ भी अर्थ न मिलता।

दाहिनी ओर पहाडी आश्रय की दीवार सर्वथा चौरस है और चित्रकारी के लिए अधिक उपयुक्त है और इसी से शिकार का वर्गीकृत दृश्य सभव हुआ होगा। वर्गाकार आकृति के मनुष्य इनमे देखे जाते है और आश्रय के अन्य भागो मे भी करीब-करीब बिखरे पडे है। (चित्र १०, १ और २) वे कबरा पहाड के दूसरे रायगढ-आश्रय मे पाए जानेवाले है जो रायगढ सीटी के दक्षिण-पूर्व मे दस मील के करीब है। यहाँ के भी सभी चित्र लाल रग के भिन्न-भिन्न परिवर्तित रूप के है और इनमे अनेक जानवरो के चित्र है जिनमे बैल भी सम्मिलित है जो निश्चित रूप से जगली हो सकता है। काबरा पहाड के चित्रो मे आदमी का एक वर्गाकार चित्र जिसपर अनेक लहरदार पक्तियाँ हैं महादेव पहाडियों के प्रारंभिक प्रथम क्रम के चित्रो की ही तरह है (चित्र १२, ७)। प्रारंभिक और बाद के प्रथम क्रम के अत.कालीन चित्रो की तरह सिघनपुर के एक या दो लहरदार पंक्तियो के चित्र और

काबरा पहाड़ के अनेक जानवरो के चित्र, पंचमढ़ी के निकट तामिया गुफा के तेज लाल रंग के कुछ चित्रो के करीब-करीब समान है, जो संभवत: प्रथम क्रम के बाद के हैं।

सिंघनपुर के कुछ चित्र जैसे ऊपर उठे हुए हाथ जिसका मित्र महोदय ने 'वनमानुष' शीर्षक रखा है, महादेव पहाडियो के प्रथम क्रम के चित्रो से अधिक विकसित हैं और उसे प्रारंभिक द्वितीय क्रम के चित्रो मे रखा जाएगा। हम सभी कँगारू, जलपरी, ग्लीपरो डाटम, बौनो और आद्य सिंध-लिपि के चित्रो को विशुद्ध हवाई किले की तरह विसर्जित कर सकते हैं जिनसे कुछ लेखको के पन्ने सजाए गए है, जिन्होने इनका वर्णन किया हैं। "अब ये महादेव पहाडी के प्रथम और द्वितीय क्रम के समकालीन चित्रो की तरह अपना उचित स्थान ले सकते है। वास्तव मे हमे एक भी धनुषधारी का चित्र नही मिलता है, लेकिन केवल एक या दो को प्रथम क्रम मे रखा जा सकता हैं, बाकी सभी सहायको की तरह भाले लिए हुए है जिन्हे हम सिंघनपुर के शिकार के दृश्यो मे पाते है (चित्र १२, ३ और ६)।

अब हम अपना ध्यान द्वितीय क्रम की तरफ ले जा सकते है जिसमे हम भूरे या क्रीम रग के अपरिष्कृत परतु प्राकृतिक चित्र पाते है। जहाँ पर अध्यारोपण है ये स्पष्टत. अच्छी तरह वर्णित लाल या गुलाबी रग के प्रारभिक तीसरे चित्र के नीचे पाए जाते है। प्रारभिक द्वितीय क्रम के चित्र बहुत अपरिष्कृत है और इसका तत्त्व केवल प्रकृतिवादी है और लबी गर्दन, लहरदार बाल, अविशिष्ट सर, पतले और कभी-कभी पेंचदार पैर और झालरदार या बिना घेरेवाले वस्त्र, इनकी विशेषता है। बाद के द्वितीय क्रम मे कुछ समूहीकरण है और तीर और धनुष बहुत सामान्य बन जाते है जो प्रारभ मे न्यून हैं। इस बात पर जोर देना होगा कि प्रथम क्रम मे चित्रित धातु के तीर शीर्ष और बाद के प्रथम क्रम मे विचित्र रूप से उनका प्रादुर्भाव बाद के द्वितीय क्रम मे बहुत सामान्य है।

प्रथम क्रम के लोगो की सस्कृति जो भी रही हो, परंतु द्वितीय क्रम के लोगो के बारे मे कोई भी सवाल नही उठता, क्योकि वे शिकारी थे। हम उन्हे बार-बार जगली जानवरो से लडते देखते है। हम उन्हे एक बाघ और एक बडे शेर का सामना करते हुए, एक बाघ द्वारा पकडे हुए तथा एक घडियाल द्वारा निगलते हुए देखते हैं (चित्र १३ . २)। सभर, बारहसिंगे तथा हरिणी, जिसका वे शिकार करते थे पूर्ण-रूपेण दिखलाई पडते है और इसी समय हाथी का पहले-पहल प्रादुर्भाव हुआ था। इसमें संदेह है कि अनेक बैलों को इस काल के चित्रो मे रखा जा सकता है कि नही और बुरी तरह खींचे गए घुड़सवारो के चित्र, एक डोरोथी डोप में प्रारभिक चतुर्थ
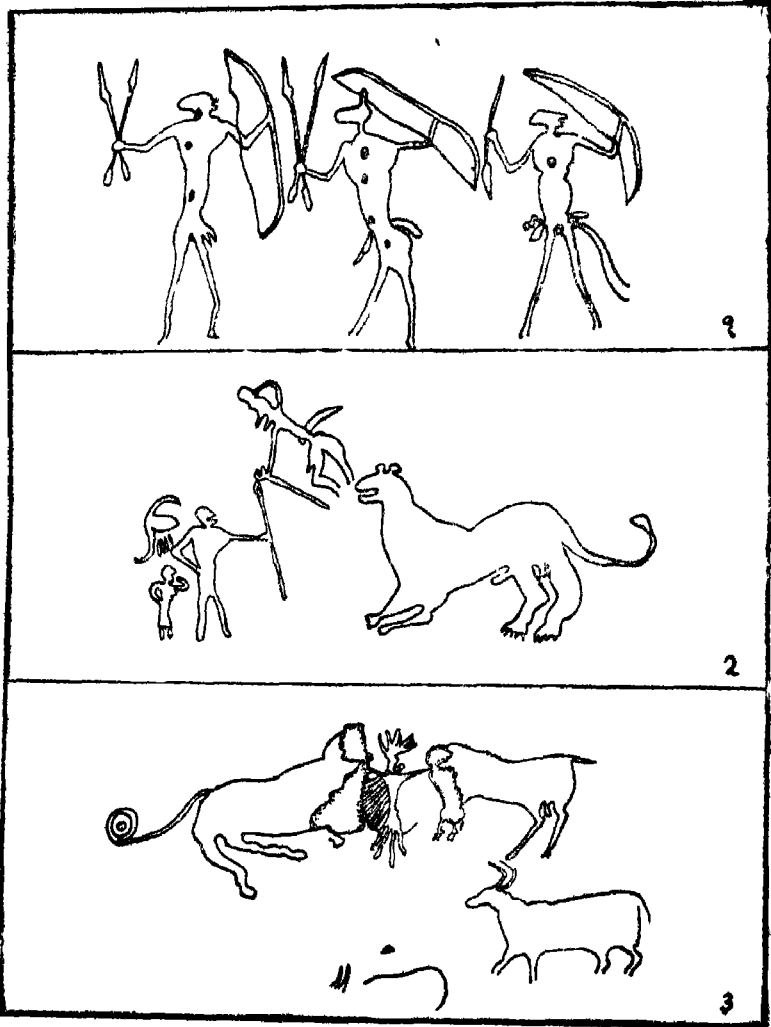
चित्र १३. महादेव पहाड़ियों के परवर्त्ती द्वितीय चित्रक्रम-समूह

क्रम के दूसरे घुड़सवार से घिरे हुए और दूसरे आलाई में प्रारंभिक तृतीय क्रम के घुड़सवारों से घिरे चित्र, यद्यपि परीक्षण के तौर पर इस क्रम में रखे गए हैं—बाद के काल के अपरिष्कृत चित्र हो सकते हैं। ये शिकारी धार्मिक कृत्यों में संलग्न दिखते हैं जिनमे वे जानवरों के नकाब पहने और तरंगित तीर-धनुष के साथ अपनेको पेश करते हैं जो संभवत: पाँव पीटनेवाला एक नाच है। (चित्र १३; १) उनके धातु-शीर्ष-वाले हथियारों के बावजूद हम एक वास्तविक जंगली लोगो का वर्णन करते हैं जो अगर कभी-कभी घुड़सवारों को चित्रित किए होते, तो उन्हें समतलों में देखे होते जैसा उन्होंने हाथियों को देखा था। इस समय मधु संग्रह करना एक धंधा था जिसे हम तृतीय क्रम के संपूर्ण काल तक कायम पाते हैं। (चित्र १४ : १)

इस आखेट-अवस्था के साथ हम मिर्जापुर-क्षेत्र के अधिकतर चित्रों को संबद्ध कर सकते हैं। यहाँ लिखुनिया, कोहबार, महरेरिया, भालदरिया और विजयगढ़ के आखेट और नृत्य-चित्र उनलोगो की संस्कृति की अवस्था का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिन्होने महादेव पहाड़ियो के द्वितीय क्रम के शिकारियों और नर्त्तको को चित्रित किया था। लिखुनिया मे घुडसवारो का सामयिक निरूपण संभवत: बाद का है और तृतीय क्रम से मेल खाता है। वर्गाकार होने के कारण सिंघनपुर के आखेट-दृश्य के चित्रों को प्रथम क्रम का समकालीन माना जाना चाहिए; लेकिन अधिक संभव है कि वे बाद के हों जैसा कि काबरा पहाड के आदमियों के चित्र हैं जिनमें एक बाघ से घबडाए हुए एक आदमी का चित्र भी सम्मिलित है। (चित्र १२ : ४)

तृतीय और चतुर्थ क्रमो मे हम सांस्कृतिक दृश्यों मे पूर्ण परिवर्तन पाते हैं। अब हम आदिम शिकारियो का वर्णन नही बल्कि पूरी तरह हथियारबंद योद्धा-जाति का वर्णन करते हैं। जीनपोश घोड़ों पर सवार लोग बहुधा कम दिखलाई पडते हैं। युद्ध के दृश्य मे घुड़सवार, धनुषधारी तथा तलवार चलानेवाले भयानक रूप से सलग्न दिखलाए गए हैं (प्लेट XXIX, ए और बी)। हथियारबंद आक्रामक पृष्ठ-रक्षी दस्ते से लैश होकर पशुओ को भगा ले जाते हैं और बर्छीवालो की कतार खुले हुक्म से बर्छी लेकर बढती है और घायलो को निकट के निवासस्थल मे जाने से रोकने के लिए करीब तीसरे रास्ते में गर्त्त के नीचे रुक जाती है। सिंघा और तुरही योद्धाओं को उत्प्रेरित करने के लिए बजाए जाते हैं और धुआँधार आश्रयस्थल में ऐसा प्रतीत होता है कि एक औरत और उसके बच्चे भी उन्हें आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं। (प्लेट XVIII-मध्य)

युद्धों के अतिरिक्त हम कुछ हद तक इनलोगों के पारिवारिक जीवन को भी देखते हैं। एक आदमी अपने तीर, धनुष तथा कुल्हाड़ी को एक तरफ रखकर तीन
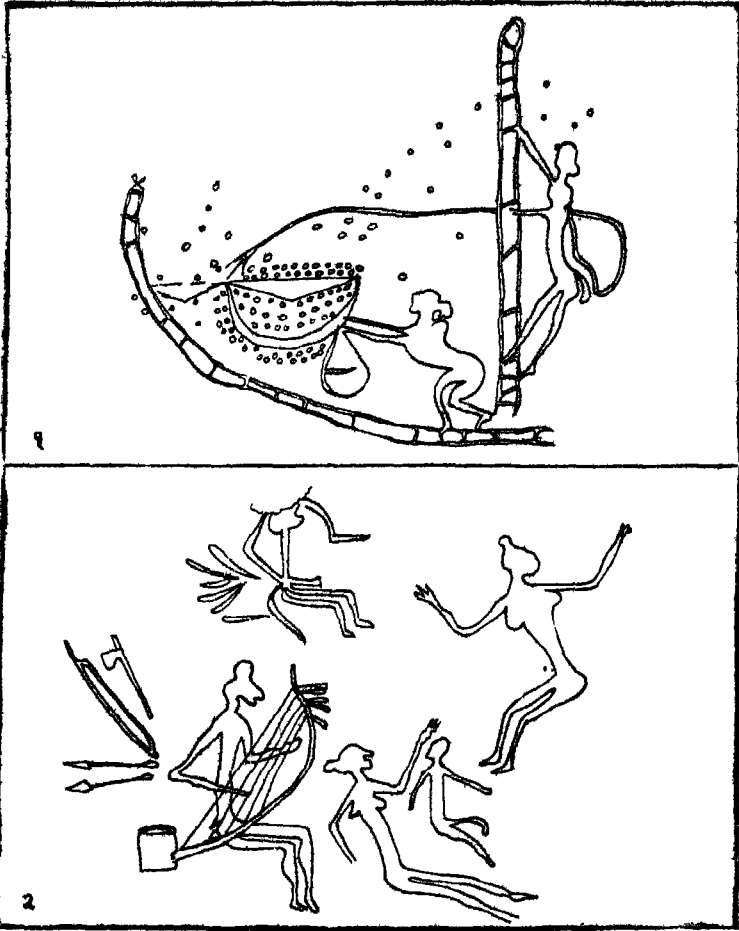
चित्र १४. (१) मधुसंग्रह का दृश्य, (२) हार्पर (पुल्तंत्री) नामक वाद्ययंत्र बजानेवाला और उसका परिवार

औरत और एक लड़के के साथ बीन बजाता है। औरतें गोलाई में बैठकर अर्ने कूट रही हैं और अनाज पीस रही हैं। एक झोपड़ी मे दो औरतें और एक बच्चा बैठा है और एक औरत के हाथ में तकु है। झोपड़ी के छप्पर में एक झोला और तीर-धनुष से भरा एक तरकश लटका हुआ है और जमीन पर चार घड़े और सामने दो छोटे-छोटे बेंच हैं (प्लेट XXI)। पुरुष और स्त्री झुंडों और जोड़ों में नाचते हैं। मर्द ढोल और दोहरी पाइप बजाते हैं और बंदर और भालू नचाकर इनका मनोरंजन किया जाता है। अधिक संख्या में मवेशी और विभिन्न तरह के पक्षी दिखलाई पड़ते हैं जिनमे हंस, मोर और जंगली सूअर के बच्चे और कुत्ते भी सम्मिलित हैं। इसमें अतिशयोक्ति नही है कि ईस्वी सन् की प्रारंभिक शताब्दी के लोगों के जीवन के अच्छे चित्रों का संग्रह यहाँ मौजूद है जैसा कि बौद्ध और हिन्दू-चैत्यो के अधिक विस्तृत रूप से ज्ञात चित्रो और नक्काशियों मे पाया जा सकता है।

महादेव पहाड़ियो के दुरूह चित्रों मे, जो पूरब मे तामिया और पच्छिम मे सिओनी-मालवा के दक्षिण मुरांड नदी तक फैला हुआ है, आदमगढ़-खदान के प्रस्तर-आश्रय भी सम्मिलित हैं जो होसंगाबाद के नजदीक है। ये मुख्य पथ से कुछ ही गज की दूरी पर है और सभी को इनकी अच्छी जानकारी प्राप्त है। दूसरे आश्रयों में पाए जानेवाले चित्रों से पुराना यहाँ कोई भी चित्र नहीं है। बहुत बड़े हाथी का चित्र जो निश्चित रूप से पुराना है, बाद के द्वितीय क्रम के हैं। होसंगाबाद-बेतुल-सड़क के पच्छिम कम-से-कम पाँच आश्रय हैं जिन्हें देखा गया है, लेकिन इन्हें अभी तक अभिलिखित नही किया गया है। यह काम अवश्य हो जाना चाहिए क्योंकि ऐसा हो जाने से सत्तर मील पहाड़ी जगल-प्रदेशो में जगह-जगह की प्रादेशिक विभिन्नताएँ प्रकाश मे आ जाएँगी।

मानिकपुर के चारो ओर उत्तरप्रदेश के बाँदा जिले के सारहट, करपटिया और मालवा के चित्र जो सिलवेराडं द्वारा प्रलिखित किए गए हैं महादेव पहाड़ियो के तृतीय क्रम के ही हैं। घुड़सवार, धनुषधारी और उनलोगो के चित्र, जो संभवत: बिना पहियेवाली बैलगाड़ी मे बैठे हैं, प्रारंभिक ऐतिहासिक काल के किसी समय या संभवत: बाद के हैं।[1] जैसा कि वर्णित है, लिखुनिया में एक हाथी को घेरे हुए घुड़सवार के चित्र तृतीय क्रम के काल के होने चाहिए, परतु साँभर-हिरणियाँ बाद के प्रथम और प्रारंभिक द्वितीय क्रम की तरह हैं। इसलिए यह संभव है कि मध्य-भारत के संपूर्ण पहाड़ी भूभाग में प्रस्तर-आश्रयों की दीवारों पर के चित्रकारी का

१. सिलवेरॉर्ड, सी० ए०, 'रॉक ड्राइंग्स ऑव द बाँदा डिस्ट्रिक्ट', जर्न० एशिआटिक सोसायटी ऑव बंगाल, पृ० ५६७-७०, वॉल III (न्यू सीरीज), १९०७

प्रस्थान ठीक उसी समय हुआ था। अब यह हमारे लिए बतलाना संभव है कि इनका विशिष्ट समय क्या है।

तृतीय क्रम के चित्रों मे युद्ध मे संलग्न लोगों की आकृति या साधन ई० पू० ३२६ के पोरस की सेना के समान है। वास्तव मे ये सभी शस्त्र जिसे हम चित्रित पाते हैं ई० पू० ४०० के बाद भारत मे विरोधी सेनाओं द्वारा व्यवहृत किए गए लगते हैं। हरसनाथ (राजपुताना) के पुराना महादेव-मंदिर की एक मूर्ति पर सशस्त्र लोगों के बीच के वास्तविक पत्राचार अंकित हैं जिसका समय ईस्वी सन् की दसवीं सदी के बीच का और ये महादेव पहाडियो के बाद के तृतीय और प्रारंभिक चतुर्थ क्रमो के है। बाल सँवारना, कमर के नीचे सिंह की खाल के कपडे पहनना, धनुष और तीर-भरा तरकश, सीधी तलवार, पत्तो के आकार का छूरा, गोल ढाल सभी उसी समय के हो सकते हैं। (प्लेट XX)

झालाई के बहुत बाद के चित्र अजन्ता के एक चित्र के समय के ही हो सकते हैं। अजन्ता की गुफा I के दाहिने पार्श्व मे एक घुडसवार योद्धा धारीदार कपडे की उभयमुखी पट्टी बाँधे है और काले और उजले रग के उसी तरह के उसके कॉलर है। इसी तरह की पट्टी एक घुडसवार बाँधे हुए है और उसी तरह के कॉलर और इकहरी पट्टी झालाई के एक पैदल सैनिक को भी है। ये दोनो बहुत बाद के चतुर्थ क्रम के है। अजंता से दूसरी समानता आदमगढ मे पाई जाती है जहाँ ढाल लिए हम एक योद्धा को पाते है जिसके सामने का भाग पतली चित्रकारी के कारण खडा है जो एक खाल के समान है जिसके ऊपर बाल है। ठीक इसी प्रकार की ढाल एक भित्तिचित्र मे एक सशस्त्र आदमी लिए हुए है। ये सभी चित्र ईस्वी सन् छठी सदी के समान हैं।

एलोरा के बौद्धसमूह की गुफा IX मे, अनेक आदिकालीन चित्र रखे गए है जो कुछ समय के पश्चात् उजाड़ हो गए थे। गुफा के द्वार पर लाल रंग मे चित्रित एक भाला लिए घुडसवार के चित्र और दो नृत्य-चित्र हैं जो महादेव पहाडियो के इसी प्रकार के चित्रो के समान हैं और ये आठवी शताब्दी के पहले के नही हो सकते। पंचमढ़ी के उत्तर-पश्छिम पाटन के नजदीक सोनभद्र नद के एक आश्रय मे अंकुशाकार नाक और दबी मूँछ और गलमुच्छेवाले एक आदमी का चित्र है और साथ ही एक छत्र के नीचे उसकी दो पत्नियों के भी चित्र हैं। वह राजगोंड का एक सरदार और किले का समकालीन हो सकता है जिसने उन चर्ट-प्रस्तरों को आभूषित किया होगा जिनमें यह आश्रय (प्लेट XXI, बी) है। इसमें बहुत कम संदेह है कि इन सभी चित्रो की तिथि ईस्वी सन् की पाँचवीं सदी से लेकर दसवीं सदी तक है। एक क्रम से दूसरे क्रम के अटूट अनुक्रम को देखकर पता लगता

है कि इन चित्रों में सबसे पहले के चित्र ई० पू० ७०० के पहले के नहीं हो सकते और इससे प्रमाणित होता है कि ये बहुत पहले के हैं।

अब प्रश्न उठता है कि घोर मांगुर-गुफा के गैंड़े के शिकार का क्या काल हो सकता है। इन सामान्य स्थानों से गैंड़े का शिकार का काल ई० पू० या ईस्वी सन् प्रथम सहस्राब्दी के समय किसी भी समय आसानी से निर्धारित किया जा सकता था। चित्रित भालाग्र जो लिखुनिया में कॉकबर्न द्वारा भी अभिलिखित हैं, वे सभी गंगाघाटी के तांबे की कांटेदार बर्छी की संस्मृति हैं।[१] जैसा कि उत्तरवर्ती परिच्छेदों में वर्णित है, इन कांटेदार बर्छी या भाले के शीर्ष का सबसे प्राचीनकाल मोटे तौर पर ई० पू० ८०० बतलाया जाता है; लेकिन यह संभव है कि ये इसके बाद के काल के हों और ई० पू० ५०० या इसके कुछ बाद का समय इन चित्रों के लिए न्यायसंगत काल प्रतीत होता है।

अब प्रश्न उठता है कि इन चित्रो का भौगोलिक आधार क्या है। बहुत ही कम अपवाद के साथ वे आवागमन की मुख्य सुविधाओं से दूर जंगली प्रदेशों के हैं। ऐसे स्थानो मे अपरिष्कृत आदिकालीन चित्र होने चाहिए और उन्हें चित्रित करनेवालों को विकास के मध्यपाषाणिक अवस्था में होना चाहिए और आपेक्षिक अपरिष्कृत युद्ध-दृश्यों की अपेक्षा इसे समझना बहुत आसान है। सिंघनपुर पहुँचना कठिन है और जगली मधुमक्खियों को, जिसने एक निरीक्षक को मार डाला था, धुएँ से उड़ा देना पडा है और उनके छत्तो को बर्बाद कर देना पड़ा है और इसमें उसी तरह की छडीवाली सीढी का प्रयोग हुआ है, जैसा कि हम चित्रों मे मधुसग्रह करनेवालों द्वारा व्यवहृत पाते है (चित्र १४)। महादेव पहाडियों के चित्र अधिकतर घनघोर पथरीले जंगल मे है और कॉकबर्न और कारलेएले द्वारा इंगित सभी चित्र रौंदे रास्तों और उसी तरह के भग्न जंगल-प्रदेशो से दूर हैं और अधिकतर चित्रों के वास्तविक स्थान सर्वथा अज्ञात हैं। यह कोई आश्चर्यजनक बात नही है कि इन स्थानों में जहां मिट्टी के बर्तनों और धातु के सिरोंवाले भालों और तीरों का व्यवहार होता था, लघुअश्म का प्रयोग होता रहा है और आज भी इन्हें व्यवहृत पाना आश्चर्य की बात नहीं होगी।

प्रश्न है कि इतनी बड़ी संख्या में इन चित्रों का उत्पादन क्यों हुआ। एक बात

---

१. कॉकबर्न, जे०, ऑनंद, रिसेंट एक्जीस्टेन्स ऑव राइनोसेरस इंडीकस, जर्न० एशियाटिक सोस० ऑव बंगाल, प्लेट VII, पार्ट II १८८३; गॉर्डन, अर्ली यूज ऑव मेटल्स इन इंडिया एंड पाकिस्तान, पृ० ६२; लाल, फर्दर कॉपर होर्ड्स फ्रॉम द गैंजेटिक बेसिन, पृ० ८४-५

निश्चित है कि इन चित्रो में बहुत कम का धार्मिक महत्त्व है। ये तीन या चार सींग और पूँछवाले दानवों या जादूगरो के चित्र हैं और ये सभी चित्र पहले की अपेक्षा बाद के काल के हैं। इनमें कुछ पौराणिक चित्र हैं जिनमे जादू के एक विमान मे एक बहादुर व्यक्ति, एक बड़े चूहे का नेतृत्व करता हुआ चूहे के सरवाला एक चित्र तथा रस्सी द्वारा एक बाघ का नेतृत्व करता हुआ एक भीमकाय पालतू कुत्ते-जैसा एक चित्र है। ये सभी चित्र भी बाद के हैं (प्लेट XXII, ए)। इस पद्धति का एकमात्र संभवतः प्रारंभिक चित्र पशुओं की रक्षा करते हुए एक सिंह या बाघ तथा एक जगली साँड को स्ववश किए हुए एक नायक का है यद्यपि नीचे मवेशी शान्तिपूर्वक विचरण करते हैं। यह चित्र सभवत. बाद के द्वितीय या प्रारम्भ के तृतीय क्रम के हो सकते हैं (चित्र १३; ३)। अभी तक अधिकतर चित्र घटनाओ के हैं जिनमें जगली जानवरों से युद्ध, नृत्य, घरेलू दृश्यो तथा युद्धों के चित्र हैं। अनेक विचित्र घटनाएँ अधिलिखित है जिनमें एक योद्धा एक अनिच्छित लडकी का हाथ पकडे हुए है जबकि तीन दूसरी औरतें डर के कारण अपना हाथ उठा देती हैं, तीन औरते अपने सर पर घडो का संतुलन करते हुए एक दूसरे का हाथ पकडे हुए हैं जब कि आगेवाली औरत एक घोड़े की पूँछ पकडे हुए है, एक बडे बन्दर-जैसा जीव एक बाँसुरी को पकडे हुए है। इनमें न तो हिन्दूधर्म-सबधी चित्र ही है न रत्यात्मक चित्रो का ही कोई अव्यक्त उदाहरण है।

प्रश्न है कि क्या इस तरह की कोई चीज आज वर्त्तमान है कि नही। इस प्रश्न का उत्तर यह है कि उडीसा के गजम और कोरापुट जिले के सोआरा-चित्रो मे उन चित्रो से, जिनपर हम विचार कर रहे हैं, बहुत हद तक समानता दिखलाई पडती है। मोटे तौर पर कोरापुट से पचमढी की सीधी दूरी ३५० मील है और गजम जिले के बीच से सिंघनपुर की दूरी केवल १५० मील है। सोआरा, सावारा या साबारा पहाडी जंगलो के आदिमनिवासियो का क्षेत्र है जो स्पष्ट रूप से भारत के मध्य मे आरपार फैला हुआ है। उनलोगों ने चित्रो की इस परम्परा को अवश्य ग्रहण किया होगा।[1] आज के उनके चित्र कुछ देवताओ की प्रतिष्ठा और आराधना के विस्तृत ढग हैं। वेरिअर एलविन के पुनः सस्थापित चित्रों को देखने पर कोई भी यह जानकर आश्चर्यचकित रह जाता कि उनकी सामान्य आकृति महादेव पहाड़ियो के चित्रों के बहुत सारूप्य है। गंजम जिले मे कालतुमेरु के मडल-अधिकारी और उसके परिवार

१. एलविन, वी०, द ट्राइबल आर्ट ऑव मिडूल इंडिया, फिग० २११, २१६, और २२५, लंदन, १९५१

द्वारा 'बलियम्सुम नामक देवता की प्रतिष्ठा में चित्रित चित्र प्राचीन चित्रों में से एक हो सकता है। कोरापुट जिले में पोलटा के सुमाटीसुम नामक देवता और उसकी पत्नी का एक चित्र एक सिंहासन पर है जो पंचमढ़ी के निकट एक गुफे में देखे गए एक चित्र के बिल्कुल सारूप्य है। एक दूसरे चित्र में एक जानवर है जिसके विषय में वेरिअर एलविन का कहना है कि वह जिराफ की तरह दिखता है।

इस अंतिम बात से आदमगढ़ के प्रस्तर-आश्रयों में स्थित एक जानवर की तरफ ध्यान चला जाता है जो अभी तक सभी दर्शको के लिए एक भूलभुलैया का कारण रहा है जो या तो सत्य है या उसकी प्रतिच्छायामात्र। निःसंदेह इसकी सामान्य आकृति जिराफ की ही तरह है; लेकिन अगर इसमें जिराफ का विशिष्ट चिह्न रहता तो किसी के लिए सबसे अधिक यह मान्य होता और किसी भी कलाकार पर, जिसने कभी किसी जिराफ को देखा है, अपनी छाप छोड़े बिना न रहता और इसमें संदेह है कि उसने ऐसे कातूहलपूर्ण जानवर को अभिलिखित करते समय इसे छोड दिया हो। यह जानवर ईस्वी सन् के ८वीं से १०वी शताब्दी के बीच किसी शक्तिशाली शासक द्वारा लाया गया होगा। परंतु केवल एक यही जानवर नही है। वास्तव में साँभर-हरिणियो का भी दृष्टात मिलता है जिसे ठीक ऐसी ही लम्बी गर्दन है, लेकिन ये उनलोगों के द्वारा नही देखी गयी हैं जिन्होंने सिर्फ आदमगढ के आसानी से पहुँचनेवाले प्रस्तर-आश्रयों को ही देखा है और फिर यह कहा जा सकता है कि शिकार करनेवाले घुडसवारों के घोडों की गर्दन भी उसी तरह लंबी है और जिराफ की ही तरह है। (प्लेट XXII, बी)

मध्यप्रदेश और विन्ध्यप्रदेश के पहाडी वनप्रदेशों से दूर प्रस्तर-चित्रों की अधिक संख्या को अभिलिखित नही किया गया है, तो भी पाकिस्तान के पश्चिमोत्तर सीमाप्रदेश के मरदान जिले के चारगुल स्थान में इस तरह के प्रस्तर-चित्र पाये गये हैं। उन तक पहुँचना कठिन है, लेकिन १८८२ ई० में इनकी अच्छी प्रतिलिपियाँ ली गयीं और अलेक्जेंडर कनिंघम के समक्ष प्रस्तुत की गयीं जिन्होंने इन्हें अफगानी 'नोआ की नाव' की तरह बचगानी करार कर दिया। इन चीजों के बारे मे सोचना आधारहीन है लेकिन वास्तव में ये इससे कुछ अधिक अर्थपूर्ण हैं। यद्यपि इनमें अधिकांश वर्णित जानवर हैं और घोड़ों पर बैठे घुड़सवार हैं तो भी अधिकतर संख्या में वर्णक्रम हैं।[1]

---

१. मैक्नेयर, सी०, 'इंसक्रिप्शन्स ऐंड इन रेड ऑन रॉक्स फ्रॉम द हिल कोह मोर इन द विलेज ऑव चारगुल', १८८२ (पेन आर्क० सर्वे आव इंडिया रिपोर्ट इन सेक्रेटेरिएट कॉपी)

इन चित्रलेखों का काल संभवतः वही हो सकता है जो मध्यसिंधु की प्रस्तर-नक्काशियों का है जिसका अब वर्णन किया जाएगा।

प्रस्तर-चित्रों की अपेक्षा प्रस्तर-नक्काशियाँ अधिक विस्तृत हैं। ये सभी चित्र प्रस्तर-आश्रयों मे हैं जिनका बहुत ही कम अपवाद है और जहाँ इस तरह के आश्रय नहीं हैं वहाँ ये नहीं पाए जाते। दूसरी ओर, नक्काशियाँ सभी चिकनी प्रस्तर-सतहों पर पायी जाती हैं और यह संभव हैं कि अन्ततः व अधिकतर प्रदेशों मे पायी जायेंगी। दूसरी ओर, अनुमान के सिवा इनका काल जानना असम्भव है। केवल एक ही दृष्टांत ऐसा है जिसमें अपक्षय के कारण रंग-परिवर्त्तन हो गया है और इनमे अधिकांश नक्काशियों की बहुत ही अपरिष्कृत पद्धति है और रहन-सहन के ढंग, हथियारो या कपडों से इसके काल को प्रमाणित करना कठिन हो जाता है। यहाँ ज्ञात दृष्टांतों और उनके काल-सबंधी निर्बल प्रमाणो की आलोचनाओं का संक्षिप्त सर्वेक्षण करना उत्तम होगा।

अधिकाश प्रस्तर-नक्काशियाँ प्रकाश में आयी हैं जो अब पाकिस्तान मे है। मध्य सिंधु मे, अतक पुल के छह मील नीचे चार स्थानो पर अधिकाश सख्या मे इनके मिलने का उल्लेख किया गया है। इन स्थानो मे पच्छिमी किनारे पर मन्दोरी और गदब और घरियाला है और पूर्वी किनारे पर हारो संगम से कुछ सौ गज ऊपर एक स्थान है।[1] इनमे सबसे उत्तम स्थान मन्दोरी है जहाँ नक्काशियो के अतिरिक्त खरोष्ठी मे दो शिलालेख भी वर्त्तमान हैं। इनमे से एक मजेदार सभवतः पौराणिक हाथी पर बैठे एक आदमी के चित्र के निकट है जो एक हाथ से एक मर्द और दूसरे हाथ से एक औरत को पकडे हुए है। इस शिलालेख में 'अ-सो-रा-क्षी-ते' और नीचे 'सी' लिखा हुआ है (प्लेट XXIII अ)। दूसरा शिलालेख एक प्रस्तर छोर के नीचे है जिस पर 'ता-सा-पा-ला-सा' और नीचे 'अ-सी' लिखा हुआ है। गन्दब की नक्काशियाँ सिंधु के वर्त्तमान स्थान से एक मील से अधिक की दूरी पर हैं और विस्तृत स्थानो तक छोटे प्रस्तरो मे बिखरी हुई हैं। फलतः, इन्हें पाना कठिन है। घरियाला-समूह की नक्काशियाँ कैंपबेलपुर से साढ़े चार मील दूर घरियाला गाँव के निकट सड़क के दोनों ओर पायी जाती हैं जहाँ यह टूटे हुए चोई पुल के पास तक जो हारो का क्षेत्र विस्तृत करता है यह नीचे की ओर ढालू होना प्रारंभ करती हैं।

१. किंग, सी०, रॉक ड्राइंग्स ऑन द इंडस, मैन, ८३, १९४०; गॉर्डन डी० एच० और एम० ई०, द रॉक एनग्रेविंग्स ऑव द मिडल इंडस', जर्न० रॉयल एशिआटिक सोसा० ऑव बंगाल, VII (लेटर्स), १९४१

तो भी जहाँ भी एक ही प्रस्तर पर बहुत-सी नक्काशियाँ हैं, वहाँ दैवयोग से मनुष्यों, जानवरों और अमूर्त संकेतों का मिश्रण है। कुछ ही आदमियों या जानवरों के चित्र वास्तविक लगते हैं, लेकिन उनमें अधिकांश कथावाचियाँ हैं। ये चित्र बहुत साधारण और पूर्णतः अनुरेख हैं। घोड़े, ऊँट और हाथियों पर चढ़े और ढाल, तलवार और भालों से लैस युद्ध में संलग्न लोग दृष्टिगोचर होते हैं; परंतु केवल एक ही दृष्टांत में हम तीर, धनुष और युद्धवाली कुल्हाड़ी देखते हैं। ऊपर से देखने पर दो बैलों द्वारा खींची जाती हुई एक बैलगाड़ी दिखलाई पड़ती है जिसकी चौड़ाई से ज्ञात होता है कि उसके चक्के का किनारा काम में लाया जा रहा है। ऐसी चीजें हम पुन. बेलारी के नजदीक भी पाएँगे (प्लेट XXIII, ब)। इनमे अनेक जानवर चित्रित हैं जिनमे बैल बहुत सामान्य हैं। इन जानवरो में घोड़े, हाथी, दो कूबड़वाला ऊँट, मोर, घड़ियाल और कुछ छोटे जानवर, जो सभवतः कुत्ते हैं, का चित्र है। अन्य स्थानों के प्रस्तर-चित्रों और प्रस्तर-नक्काशियों की तरह अनेक अमूर्त सकेत मिलते हैं जिनमें कुछ को मनुष्य की आकृति की तरह समझा जा सकता है; लेकिन अधिकांश का वास्तविक अर्थ समझना कठिन है। (प्लेट XXIV, अ और ब)

यह कदापि नही कहा जा सकता है कि इनमे से कोई भी नक्काशी अपनी कलात्मक पद्धति, रजन या प्रक्रिया की वजह से दूसरे से पुरानी है। ढाल, तलवार, भाले और घोडों और ऊँट के सवारों से यह नहीं कहा जा सकता है कि ये बहुत प्राचीनकाल के हैं। यहाँ तक कोई भी आदमी कह सकता है कि खरोष्ठी के दोनों शिलालेख उसी समय के हैं जिस समय की सभी निकटवर्ती नक्काशियाँ हैं। तो भी तासापालासा मे 'सा' का बदरूप पहले का है और सभी कलात्मक कृतियों के लिए ई० पू० २०० से ईस्वी सन् २०० का सामान्य तर्कसंगत काल कहा जा सकता है।

नि:सदेह उत्तरी बलूचिस्तान के स्टेन के ग्राफिटी को हाल के वर्णित तथ्यों से सबधित किया गया है। हिदूबाग से दस मील उत्तर अंदरवेज और झोब की जल-तरंगों में उसने "चौपाया जानवरों के अपरिष्कृत ग्राफिटी और ढाल और भालों से लड़ते मनुष्यों के जोड़ों" को अभिलिखित किया है। स्थूलरूप से छिन्न-भिन्न और अवक्षीण रेखाएँ भी हैं जिन्हें उन्होंने खरोष्ठी-अक्षर बतलाया है। पिसीन से २५ मील दूर बसोर-घाटी में उन्हें एक प्रस्तर-चित्र दिखलाया गया जिसपर अनेक अपरिष्कृत ग्राफिटी थे जिनमें हौदा और महावत के साथ एक हाथी, लड़ते हुए दो आदमी और सभवतः तीन खरोष्ठी-अक्षर थे। ये सभी चित्र मध्यसिंधु के दृष्टांतों की तरह प्रतीत होते हैं और संभवतः उसी काल के हैं। दुर्भाग्यवश इन नक्काशियों का कोई चित्रित अभिलेख नहीं है जिनकी न नकल ही की गयी हो और न चित्र ही लिया

गया है।[1] पूरे अफगानिस्तान में इस तरह के बहुत-से प्रस्तरोकीर्णन पाए जाते हैं और अमेरिकन संग्रहालय-अभियान के द्वारा ये अनेक हजार बतलाए जाते हैं जिसने १९५०-५१ में अफगानिस्तान का भ्रमण किया था। दिलाराम और फाराह के बीच मिस डी-कार्डी ने भी कुछ प्रस्तरोकीर्णन का उल्लेख किया है। उन नक्काशियों मे जिनका उन्होने चित्र लिया है, गोल ढाल लिए एक सवार, घोड़े पर एक धनुषधारी, धनुष-बाण से आइबेक्स के शिकार, और दो टॉर्चें लिए एक आदमी के चित्र है।[2]

फिर उत्तरी भारत मे प्रस्तर-नक्काशियो को पाने के लिए हमें उड़ीसा में सम्बलपुर तक के चौड़े उपमहाद्वीप को पार करना होगा जहाँ विक्रम खोल के प्रस्तर-आश्रय में अनेक नक्काशियों और चित्रलेख पाये गये थे और वह जगह ३२ फुट लंबा है। इस अस्पष्ट ग्राफिटी से एक शिलालेख पाया गया है जो साबित करता है कि सिंधु-लिपि से ही ब्राह्मी का प्रादुर्भाव हुआ और ब्राह्मी से फोनिसियन का। इनमें बायीं तरफ की नक्काशियाँ अभी तक स्पष्ट हैं, परंतु यहाँ भी यह विश्वास करना कठिन है कि जो हम देखते हैं वह लिखा हुआ है, यद्यपि कुछ संकेत वर्णक्रम-जैसे लगते हैं।[3] बिहार मे घाटशिला के आसपास चौड़े प्रस्तर पर गरुड के और तीन लंबे मर्द के चित्र बिखरे हैं जिनका वर्णन मित्र महोदय ने 'प्रीहिस्टोरिक इंडिया' मे किया है; लेकिन उन्हे पाना कठिन है और उन्हें पाने के लिए १९४६ ई० की जाँच असफल रही।

महादेव पहाड़ियो के प्रस्तर-चित्रों के साथ-साथ कुछ नक्काशियाँ भी हैं। एक आश्रय की ढालू सतह को भाले से छिन्न-भिन्न किए एक घुड़सवार, एक बैल और कुछ संकेतो को अभिलिखित किया गया था। बंबईप्रदेश मे जमखांडी के नजदीक गोबी गुहा मे पचमुखी ने रैखिक नक्काशियों का पता लगाया था जो हैदराबाद-राज्य के रायचूर जिले मे लिंगसुगुर से सिर्फ ८० मील की दूरी पर है जो पुरातात्त्विक दिलचस्पी का केन्द्रस्थल है, जिनमे प्रस्तर-चित्र और नक्काशियाँ दोनो सम्मिलित हैं। ये नक्काशियाँ बहुत ही अपरिष्कृत हैं और इनमे वास्तविकता का कुछ भी प्रयास नहीं दिखलाई पड़ता है—ये सभी बनावटी हैं। इनमें बैलों की प्रमुखता है, परंतु घोड़ों और हाथियो पर बैठे लोगों, पालकी लिए लोगों, हौदेवाले हाथी और

१. स्टीन, आर्क० टूअर इन् वजीरिस्तान एन० नौर्थ बलूचिस्तान, पृ० ७९-८४

२. फेअरसर्विस, डब्ल्यू ए०, फ्यूचर आॅर्क्योलॉजिकल रिसर्च इन् पाकिस्तान, पृ० १४४, साउथ-वेस्टर्न जर्न० ऑव ऐंथ्रोपोलॉजी, वॉल० IX, न० २, १९५३, डी० कार्डी, ऑन द बोर्डर्स ऑव पाकिस्तान, पृ० ५२-५७ ऐंड प्राइवेट फोटोग्राफ्स।

३. जायसवाल, के० पी०, इंडियन एंटीक्वेरी, वॉल० LXII, पृ० ५८-६०, फैब्री, सी० एल०, ऐनुअल रेप० आर्क० सर्वे ऑव इंडिया १९३०-३४ प्लेट CXIX, a और नोट

ढाल-तलवार लिए लोगों को देखने से लगता है कि ईस्वी सन् की प्रारंभिक सदी सबसे प्राचीन काल है जो हर तरह से संगत है।

हैदराबाद के रायचूर जिले में प्रस्तर-चित्रों और नक्काशियों के बिखरे समूह देखे गये हैं। रायचूर के पुरातात्त्विक सर्वेक्षण के समय डा० एफ० आर० आलचीन ने अनेक प्रस्तर-चित्रों और नक्काशियों का वर्णन किया है जिन्हें वे कोपल, पिकलिहाल, मास्की, बिलारियाम गुडा और बैंकल-बन मे देखा था।[1] इनमें कलूर और टीवल गुडा के चित्रों और नक्काशियों तथा मन द्वारा वर्णित चिक हेसरूर के चित्रों को जोड़ा जा सकता है। आंतरिक तथा बाह्य प्रमाणों से आलचीन उन्हे तीन पूर्णतः निश्चित समूहो में बाँटने मे सफल रहा। अंतिम समूह मान्य प्रतिमाओं, जैसे नन्दीपदों, त्रिशूलों और सर्प चिह्नों को दिखलाता है और मदिरों के चित्र, अपरिष्कृत चित्र और साँडों की खरोंच भी उसी समय के हैं, इनमे से कोई भी हाल का हो सकता है।

पिकलिहाल और बैंकल-बनो मे वह गाढ़े लाल गैरिक से बने चित्रों का वर्णन करता है जो पूर्णतः भिन्न है और हाल में वर्णित अर्वाचीन की अपेक्षा स्पष्टतः प्राचीन हैं। पिकलिहाल मे घोड़े और हाथी पर के सवारो, तलवारो और फरसो से लैश घुड़सवारों के बहुत-से चित्र हैं। उन्होने और मन ने बैंकल-बन में इसी तरह के शिकारियो और योद्धाओं के चित्र-समूहो को देखा है।[2] इन चित्रों की कला-पद्धति महादेव पहाड़ियो के चित्रो की तरह अपरिष्कृत है और यह भी बाद के द्वितीय क्रम की ही होगी और अपने आशय और बनावट मे ये लिखुनिया-आश्रयो के हाथी के शिकारों के समान हैं। यह मान लेना तर्कसंगत प्रतीत होगा कि ये ईस्वी सन् की प्रारंभिक शताब्दी में ही चित्रित किये गये थे।

लाल गैरिक में साँड़ो के कुछ प्राकृतिक चित्र पहले के हो सकते है और अपनी सामान्य आकृति मे ठीक ऐसे जानवरों के चित्रों की तरह हैं जो बहुत बड़ी संख्या मे यहाँ और कुपगालू मे पाये जाते है। इन दोनो स्थानो मे श्रृंगे साँड़ की सींगो मे बंधे धनुषों का दृष्टांत मिलता है; लेकिन कुपगालू मे सींगों के बीच किसी बड़ी वस्तु का आभास मिलता है। नगदा मे, चम्बल के पश्चिमी किनारे पर जो उज्जैन से अधिक दूर नही है, हाल मे खोज किये गये मिट्टी के चित्रित बर्तनों पर बैलो के सींगों की सजावट एक सामान्य विशेषता है। यह संभव है कि यह किसी

१. आलचीन, डेवेलपमेंट ऑव अर्ली कल्चर्स इन् द रायचूर डिस्ट्रिक्ट, पृ० २४७-५४

२. गॉर्डन, डी० एच० एंड आलचीन एफ० आर०, रॉक पेंटिंग्स एंड एनग्रेविंग्स इन् रायचूर, हैदराबाद, मैन, ११४, १९५५

समारोह के समय का रहा हो। एक हाँफते साँड जिसके सींगों से मनुष खींच लिए गये हैं का फ्रूक ने वर्णन किया है। यह उदाहरण आलचीन ने उद्धृत किया है। (प्लेट XXV, ब)

इसमें सदेह नहीं है कि इन चित्रों मे प्राचीनतम चित्रों का संबंध नवपाषाणिक अवस्थापन से है और यहाँ और बेलारी जिले मे दोनों जगह इनसे सबंधित वस्तुओं से क्रम स्थापित करने की गुंजाइश है। अधिक प्राकृतिक चित्र पहले के प्रतीत होते हैं और कलात्मक जानवर बाद के काल के हैं जिस समय के सर्वज्ञात महत्त्वपूर्ण हिंदू-प्रतिमा-विज्ञान है। इन दोनों के बीच मे धातु के शस्त्रवाले शिकारी समूहों को रखा जा सकता है। तो भी ई० पू० प्रथम सहस्राब्दी के पूर्व का काल ऐसा प्राचीनतम काल है जिसमें रायचूर के किसी भी चित्र और नक्काशी को रखा जा सकता है।

रायचूर इन सभी पुरावशेषों से सबधित है। यह जिला बेलारी के बहुत करीब है और तुंगभद्रा के विभाजक-रेखा के ठीक दक्षिण है। यहाँ कुपगालू पहाडी मे, बेलारी के पूर्वोत्तर तीन मील की दूरी पर प्रस्तर-नक्काशियो का एक समूह है जिसके बारे मे बहुत ही कम जानकारी है। इन नक्काशियो के बारे में १८८७ ई० मे जानकारी हुई थी और १९५१ ई० के पहले तक इनके प्रकाशित होने का कोई भी दृष्टात नहीं मिलता है और यह तभी सभव हो सका जब 'मैन' मे फोटोग्राफ और रेखा-चित्र प्रकाशित हुए।[1] तब भी इनकी अवस्था अभी तक असन्तोषप्रद है क्योंकि नि.सदेह उसी तरह से क्रमो का प्रमाण और कला-पद्धति मे परिवर्तन रहने चाहिए जैसा रायचूर मे आलचीन ने बतलायाहै।

इनमे से अधिकाश चित्र प्रस्तर पर चित्रित है और यह पद्धति सामान्य नही है। इस पद्धति द्वारा प्रस्तर-सतह के रंग को रगडकर बदल दिया गया है और छूने पर रुखडापन का अनुभव होता। फॉसेट ने इन बातों का उल्लेख किया है या नही, यह संदेहास्पद है। भारत के बाहर के प्रस्तर-उत्कीर्णन, जिसमे किसी गहराई का आभास रहा हो, का उल्लेख उन्होने नही किया होगा। दूसरी ओर, यह संभव है कि इन प्रस्तर-चित्रों के उचित अध्ययन से एक से अधिक पद्धति का पता चल सकता था। बहुत बडी सख्या में मनुष्यों, जानवरो और पशु-पक्षियों को दिखलाया गया है और तीर-धनुष लिए आदमियों और एक लंबी छडी से बर्तनों का विलोड़न करते हुए दो आदमियों का वर्णन किया गया है। मवेशियो का बहुत ही कम जिक्र हुआ है और ये धनुषधारी मवेशियों पर धावा करते हुए दृश्य की तरह लगते हैं। एक

१. गॉर्डन, रॉक एनग्रेविंग्स कुपगालू हिल, प्लेट I a-d और फिग० I a-f

चित्र में एक बारहसिंघा है और यह संभव है कि दूसरे भी हों। फॉसिट ने निश्चय-पूर्वक कहा है कि किसी भी घोड़े का चित्रण देखने को नहीं मिलता, जो कुछ महत्त्व-पूर्ण है।[1]

इनमें से कुछ चित्र बहुत दिलचस्प बातें प्रस्तुत करते हैं जिनमें से एक ब्रूस फूट द्वारा वर्णित अनेक अश्लील चित्र हैं और उन्होंने इनके स्थानों का भी निरीक्षण किया है। मैथुन के कुछ रूप मे सलग्न पुरुष और स्त्री के चित्र सिर्फ विरल ही नहीं हैं बल्कि किसी ज्ञात स्थानों मे, जहाँ प्रस्तर-चित्र और नक्काशियाँ मिली हैं, एकदम नही हैं। तब भी कुपगालू मे ब्रूस फूट के द्वारा लिए गए चित्रो में इस प्रकार की पाँच नक्काशियाँ देखने को मिलती हैं। चित्रो की अधिक संख्या होने के कारण सभव है कि ऐसे कुछ और भी हो। कुपगालू के एक चित्र मे एक औरत के बाल पकड़े हुए काम-भावना से उत्तेजित एक आदमी को दिखलाया गया है, और यद्यपि महादेव पहाड़ियो और मध्य-सिंधु की नक्काशियो मे दोनों जगह अपहरण के दृश्य वर्त्तमान हैं, परतु इस प्रकार का स्पष्टीकरण कहीं नहीं है। मन के बैकल-वन के एक चित्र मे हाथो से एक औरत को पकडे हुए भयानक लिंगवाला एक आदमी दीख पडता है और जैसा कि यह उसी समकालीन सास्कृतिक जगह मे है और सभवत समकालीन है इससे यह एकक्षेत्रीय पक्षपात-जैसा लगता है। (प्लेट XXV, ब और प्लेट XXVI, अ और ब)

'T' आकार के उपस्तंभ पर बैलों के चित्र देखने को मिलते हैं और अगर यह उपस्तंभ बैलों का समकालीन है, बाद का नही, जिससे इनकी अच्छी तरह से मोहेंजोदडों के हडप्पा की मुहरो पर उसी तरह के उपस्तभ पर दिखलाए गए बैलो के चित्रो से तुलना की जा सकती है जहाँ वे शोभायात्रा के पशु के जैसा समझे जाते थे। निःसदेह बैलगाड़ी के लिए किस चिज की जरूरत है और यह ठीक उसी तरह से दिखलाया गया है जैसा कि मध्य-सिंधु के मदोरी में दिखलाया गया है जो ऊपर से दिखलाई पडता है और जिसकी गोलाई को बतलाने के लिए चक्कों के किनारों का व्यवहार हुआ है। दो चट्टानो के आर-पार छड़ी लिए हुए हाथ से हाथ मिलाए लोगों की लंबी कतार नाचती हुई दिखलाई पड़ती है और ऐसे चित्र आजकल के आदिमवासी वनजाति-नर्त्तको की तरह आगे से पीछे झुके हुए दिखलाई पड़ते हैं।

इनमें कुछ नक्काशियाँ बचे हुए अधिकांश की अपेक्षा अधिक अर्वाचीन हैं। कुछ आदमी ढाल-तलवार लिए हुए हैं, जो चित्र बाद के हो सकते हैं। कम-से-कम

१. फॉसिट, एफ०, प्रीहिस्टोरिक रॉक पिक्चर्स नीयर बेलारी, न्यू इम्पिरियल एंड ऐशिआटिक क्वार्टरली रिव्यू, जनवरी, १८९२

की साँडों के चित्र जिनमे एक तीन सीगवाला है, वर्गाकार है और वास्तविकता से दूर है और ये रायचूर के उसी तरह के चित्रों के समकालीन हो सकते हैं। तब भी शिवलिंग के पास बैठे एक नंदी साँड का चित्र बाद का हो सकता है; परंतु इसके बारे में इससे अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता है कि इसका काल ईस्वी सन् ७०० या इसके कुछ बाद का है। ये नक्काशियाँ एक फंदेदार दीवार के बाँध पर हैं जो कुपगालु पहाड़ी के उत्तर-पूर्व ढलान के पार पच्छिम और उत्तर की ओर जाता है। ये तीन चित्र (खुरचनें) नवपाषाणिक अवस्थापन से सलग्न हैं जिनमे से एक उत्तरी ढलान पर, दूसरा उसी ढलान के दक्षिण-पूर्व तथा तीसरा वह है जो निकटवर्ती सनारासामा पहाड़ी पर सुब्बाराव द्वारा खोदी गई थी। ये बातें इनके काल-निर्धारण करने मे बहुत कम मदद करती हैं जो ई० पू० ९०० से २०० के बीच है जो इस अधिकृति का समय है और इसमे सदेह है कि किसी भी चित्र का काल सबसे प्राचीन प्रस्तर-चित्रों से पहले निर्धारित किया जा सकता है कि नही जो ई० पू० ७०० है।

किसी भी नक्काशी को अभिलिखित करने के पूर्व किसी को भी बेलारी से १६० मील दक्षिण बंगलोर जाना पड़ेगा। यहाँ दो समूह है जिनमे से एक बगलोर से बाहर बसावानगुडी के करीब तीन मील दक्षिण-पच्छिम होसकेरहाली तालाब के दक्षिण-पच्छिम, गोदगिरि बेटा पहाड़ी के करीब-करीब बीच मे है। यहाँ पाँच तरह के रग-परिवर्त्तनो मे विभेद करना सभव है। जब सबसे पहले इस प्रस्तर पर नक्काशी की गई जो वास्तव मे गहरा भूरा है, यह उजला दीखता है और इसका प्रमाण १९४२ ई० मे अकस्मात् पाए गए एक आदमी की आकृति है। दीर्घकालीन अपक्षय के कारण यह पीला पड गया है जो एक चित्र-समूह-सा मालूम पडता है जिसमे कुछ बिच्छू के चित्र हैं, जिनमे से एक अधिक अर्वाचीन है। वह चमकदार पीले रग का है। इनमे से अधिकांश चित्र रेखादार हैं जिनमे आदमी और जानवरो के चित्र हैं और ये हल्के भूरे रग के हैं। इनमे से कुछ के रग प्राकृतिक प्रस्तर के रगो से हल्के हैं, कुछ उसी रग के हैं जिस रग के ये प्रस्तर हैं और फदे के आकार की दो नक्काशियाँ काले रंग की हैं। यद्यपि यहाँ हमे निश्चित रूप से कालक्रमिक रंगो के अनुक्रम के विषय में जानकारी है तो भी इससे किसी भी नक्काशी के काल-निर्धारण मे बहुत कम मदद मिलती है। दूसरा चित्र-समूह डोड कनेली ग्राम से आधा मील दूर कुछ प्रस्तरों पर हैं जो बगलोर से दस मील दूर सरजापुर-सडक पर है। ये गिनती में थोड़े हैं और संभवत: एक ही समय के हैं। इन चित्रों मे, नाचते हुए लोगों के चित्र, घोड़े पर सवार एक आदमी का चित्र, एक साँड़ के आगे-आगे दूसरे लोगों के चित्र और आदमी तथा जानवरों के कुछ गदे और अपरिष्कृत चित्र सम्मिलित हैं। यहाँ घुड़सवार और

मवेशी रखने की बात ई० पू० प्रथम अर्द्ध-सहस्राब्दी के बाद के किसी निर्धारित समय की ओर संकेत करती है।[1]

अंत में हम इदाकल-गुफा की कुछ विचित्र नक्काशियों की ओर आते हैं जिन्हें ओटकामंड के ३० मील दूर उत्तर-पश्चिम वाइनाद में सुलतान की बैटरी के नजदीक इदाकलमल पहाड़ी पर फॉसेट ने खोज निकाला था। इन चित्रों से पता चलता है कि प्रस्तर-आश्रयों की दीवारें चारो तरफ से नक्काशियों से आच्छादित हैं जिनमें आदमियों तथा जानवरो के चित्र तथा संकेत सम्मिलित हैं। ये नक्काशियाँ इतनी संकुलित हैं कि सर्वप्रथम इनमें कुछ भी विभेद करना कठिन है। ये अर्थहीन चित्रों के समूह-जैसी लगती हैं जो संपूर्ण दीवारों पर आच्छादित हैं। कहा जाता है कि ये चित्र रखने से समतल-जैसे प्रतीत होते हैं। इनमें छँटाई और ऊँचाई कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती है, लेकिन वास्तव में ये चित्र परिसज्जितमात्र हैं। आदमी के चित्र जिनमे से एक के पास धनुष है, बहुत निकृष्ट है और जानवरों के चित्र भी बहुत कुछ उसी तरह के हैं। संकेतो मे बहुत विभिन्नता है जो बहुत सीधा है और जिसके संकरण विकर्ण हैं।[2]

यद्यपि अधिक संख्या मे नक्काशियों के प्राप्ति-स्थान को अभिलिखित नहीं किया गया है तो भी वे भारत और पाकिस्तान के अधिक भागों को आच्छादित कर लेती हैं और यह समझना न्यायसंगत है कि और भी अधिक नक्काशियाँ उपलब्ध हैं। यद्यपि ये प्रस्तर-खंड वर्त्तमान हैं, जो इन नक्काशियों के लिए बहुत ही आवश्यक हैं, कहीं भी पाये जा सकते है और इनके अनेक दृष्टांतों का उल्लेख होगा; तो भी इसमें संदेह है कि जितनी नक्काशियाँ हमारे पास हैं उनका निकटतम कालक्रमिक प्रमाण हमे मिलेगा या नही। अभी तक अधिक नक्काशियाँ ऐसी हैं जिनसे निकटतम तिथि-निर्धारण करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है।

१. गॉर्डन, 'आॅक्योंलॉजिकल मिसलेनी', पृ० २६-२७, फिग० और प्लेट III ऐंड IV, जर्न० इंडियन एंथ्रॉ० इंस० I (न्यू सीरीज), १९४५

२. फॉसेट, एफ०, नोट्स ऑन रॉक कॉर्विंग्स इन दि एडकल केव; वाइनद, इंडियन ऐंटीक्वेरी, वॉल० XXX, १९०१

परिच्छेद ७

अन्धयुगीन प्रस्तर एवं ताम्र-संस्कृतियाँ

विश्व-इतिहास के तथाकथित अधयुगो के साथ तुलना करने पर हम पाते हैं कि भारत मे ई० पू० १५०० से ३२६ के बीच का युग वास्तव मे अधकारमय था। इसमें सदेह नही कि इस समय महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटती रही, पर मूर्त्तरूप से उनका बहुत ही कम प्रभाव पड़ा। वैदिक आर्यों के प्रसार, गंगा-घाटी के उनके अवस्थापन और नर्मदा के दक्षिण की ओर उनके फैलाव पर इसका प्रभाव पड़ा। कुरु-पाचाल और कौशल-विदेह राज्यमंडलो तथा ऐतिहासिक नगरो का निर्माण हुआ और कौरव-पाडव तथा उनके अनेक मित्रो के बीच महाभारत की लडाई लड़ी गयी। दक्षिण मे ऊपरी गोदावरी और पश्चिम मे कठियावाड मे यादववंश ने अपने राज्य की स्थापना की, इन सबका या कुछ परपरागत घटनाओ का सबध पुरातात्त्विक खोजो से जोडा जा सकता है, परतु व्यवहार मे यह बहुत कठिन है। अनेक पुरातात्त्विक शोधो ने 'इलियम के निम्न बुर्ज' को स्वीकार कर लिया है, परतु किसी स्पष्ट सहमति की अपेक्षा इसमे अधिक भूल ही हैं और जेरिको की दीवार जो जोसुआ की तुरही के विस्फोट के कारण ढह गयी, स्पष्ट रूप से स्वीकार नही की गयी है। तब इतनी आसानी से वेदो, महाकाव्यो और पुराणो के आख्यानो को पुरातात्त्विक अभिलेख से समजित करना कैसे संभव हो सकता है। फिर भी, इस दिशा मे प्रयास तो होना ही चाहिए।

एक समय, जो अभी हाल की बात है, केवल आख्यान ही थे और अन्धयुग के बारे मे और किसी तरह की जानकारी नही थी। लेकिन गत दस वर्षों मे बहुत सावधानीपूर्वक सर्वेक्षण हुआ है और सीमित दायरे में ही सही, लेकिन अच्छी तरह खुदाई हुई है, जिसमे भारत के अनेक भागों मे ऐसे अवशेष प्रकाश में आये हैं जिन्हें नि:संदेह उसी काल का कहा जा सकता है। ब्रह्मगिरि मे कृष्ण द्वारा सर्वेक्षण और ह्वीलर द्वारा खुदाई से नवपाषाणिक संस्कृति की चीजें प्रकाश में आयी हैं जिनमें ताँबे का बहुत ही न्यून मात्रा में प्रयोग हुआ है। १९४६ ई० में ही ए० वी० पांडे ने महेश्वर मे चित्रित मिट्टी के बर्त्तन और लघुअश्मों को देखा था और उस समय कोई सक्रिय प्रोत्साहन नही मिलने के बावजूद उन्हे विश्वास था कि प्रारंभिक अधिकृत स्थलो में इसका कितना महत्त्व है। अकस्मात् भीषण बाढ़ के कारण अहमदनगर जिले

के जोरवे में उत्तेजना पैदा करनेवाले चित्रित मिट्टी के नये बर्त्तन प्रकाश में आये। यह १९४७ की बात है और उसी साल काले रंग में पॉलिश किये हुए उत्तरी तथा लाल और काले रंग के दक्षिणी बर्त्तन नासिक में एक टीले से एकत्र किये गये। तीन साल के भीतर मध्य और दक्षिणी भारत के विषय में हमारे पुरातात्त्विक ज्ञान में बहुत तेजी से वृद्धि हुई और महत्त्वपूर्ण अन्वेषणों के लिए पथ प्रशस्त हुआ।

जैसा द्वितीय परिच्छेद मे बतलाया गया है उस प्रदेश में जिसमें हैदराबाद का रायचूर जिला, मद्रास का बेलारी जिला और मैसूर जिले के चीतलद्रुग के उत्तरी भाग सम्मिलित हैं, समतल और पॉलिश किए गए प्रस्तर की कुल्हाडियाँ अधिकतर पायी जाती है। रायचूर के मास्की और पिकलिहाल, बेलारी के संगनाकालू और चीतलद्रुग के ब्रह्मगिरि की अनवरत खुदाई से पता चला है कि ये कुल्हाड़ियाँ हाथ से बनाए गए नवपाषाणिक बर्त्तनो से संबधित है और उस तरह के 'फ्लेक-ब्लेड'-उद्योग से संबधित हैं जिसका वर्णन किया जा चुका है और जो सामयिक परिष्करण के साथ लंबे, काम किए गए नुकीले, तेज फलवाले लंबे समानांतर ब्लेड तैयार किए गए थे जो कभी भी किसी भी तरह से पॉलिश किए हुए नही हैं और जिनका प्रयोग रूई की धुनाई और बडे-बडे फ्लेक में हो सकता है। ये सभी बाते उनके सभ्य देहाती समुदाय की विशेषताएँ है और उनके व्यवस्थित जीवन के लिए अधिक उपयुक्त हैं।

ब्रह्मगिरि की क्रमिक अवधि की अधिकृति के अपने अनुक्रम मे ह्वीलर ने प्रस्तर-कुल्हाडी-सभ्यता को, जिसे वह ब्रह्मगिरि I कहते है, दो भागो में बाँट दिया है, 'क' और 'ख'। अपने अनुभाग के इन क्रमों को उन्होने अपक्षीण भूमि के द्वारा अलग कर दिया है जिससे बीच के बीते हुए समय का संकेत मिलता है और इस स्थल पर हाथ से बने नवपाषाणिक चित्रित या उत्कीर्णन-पद्धति से बर्त्तनों की सजावट प्रारंभिक क्रम की ही है। कुल मिलाकर चौवालीस कुल्हाडियाँ, कुल्हाड़ियों के टुकड़े पाए गए थे जिनमें सभी समतल और पॉलिश किए हुए है। ये सब अधिकतर प्रथम-'ब' क्रम के निम्न स्तरो के हैं। इनमे कुछ, जो चौडे अर्द्ध-आयताकार हैं, प्रथम 'क' क्रम के निम्न स्तर के हैं, लेकिन यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि संभवतः भारत में पाई गई पुराने क्रम की कुल्हाडियों की तरह इन चौडी कुल्हाड़ियो का कोई वास्तविक महत्त्व नही है। जहाँ ये चौडी दिखलाई पड़ती हैं, वह अपघर्षण के कारण नही, बल्कि फटेदार शैल के चौड़े विदरण के कारण है और अनेक दृष्टांतों मे अभिदर्शित चौड़ी सतहों पर अपक्षीण काई या वल्क के चिह्न रह गए हैं।

यद्यपि खुदाई के परिसीमित दायरे में, इमारत की सतह-योजना नहीं मिली

हैं तो भी तीन स्तरों में अनगढ़े प्रस्तरों की नींव देखी गयी है और पोस्थोल की उपस्थिति और स्थूल ग्रेनाइट की बनी निम्न दीवारें यह सकेत करती हैं कि मकान मुख्यतः काठ के बने हुए थे। अनेक स्तरो पर, चूनम, सतह अभिदर्शित हुई है, लेकिन इस चूनम की बनावट के विषय में कुछ भी संकेत नही मिलता है। सभवतः यह चूने के गारे का रूप है। कुछ धातु की वस्तुएँ भी मिली हैं जिनमें ताँबे की एक छोटी कुल्हाड़ी तथा एक काँसे का छड़, जिसमे ९ प्रतिशत टीन है, सम्मिलित है। वहाँ एगेट के लघुअश्मो, जैस्पर और दूसरे प्रस्तरों का भी सग्रह है जो फ्लेक-ब्लेड-उद्योग के लिए अद्भुत चीजें, जो यद्यपि मुख्यत. नवपाषाणिक स्तर I-बी की हैं, तथापि दूसरे स्थानो मे भी आद्यनवपाषाणिक काल के प्रारभिक स्तरो मे पायी गयी हैं।[१]

यह स्पष्ट है कि ब्रह्मगिरि की नवपाषाणिक सस्कृति का उद्भव पृथक् स्थानीय विकास की तरह नही हुआ था और दूसरी जगह उसी तरह के दृष्टातो को पाने के लिए विस्तृत सर्वेक्षण की आवश्यकता पडी थी। बेलारी और रायचूर मे ब्रूस फूट के कार्यो से यह स्पष्ट है कि तेज प्रस्तर की कुल्हाडी के कुन्दे के रूप मे नवपाषाणिक सस्कृति के अवशेष, लबे फ्लेक-ब्लेड और हाथ से बने मिट्टी के बर्त्तन, सभी जगह प्रमाण के रूप मे पाए गए थे।[२] ब्रूस फूट ने सगानाकालु के नजदीक की कुपगालू पहाडी पर अवस्थापन का वर्णन किया है जो बेलारी के उत्तर-पूर्व तीन मील की दूरी पर है और इससे बी० सुब्बाराव को इस स्थान की खुदाई के लिए उपयुक्त स्थल के रूप मे गवेषणा करने मे मदद मिली। सानारासामा की, जो इस पहाड़ी-समूह के एकदम पच्छिम है, विशेषता यह है कि यहाँ पहले खुदाई नही हुई थी। प्रस्तर-आश्रयो से घिरा एक विशाल सपाट अधित्यका है और अधिकृति के स्पष्ट चिह्न यहाँ मिलते है। यह स्थल सस्कृति का एक क्रम उपस्थित करता है जो ब्रह्मगिरि से पूर्णतः मिलता है।

प्राकृतिक मिट्टी के नीचे सुब्बाराव को एक अव्यवस्थित लघुपाषाणिक उद्योग के चिह्न मिले थे जहाँ सूखी तह द्वारा मिट्टी के बर्त्तनो को क्रमिक नवपाषाणिक स्तरो से विमुक्त किया गया था। नवपाषाणिक अवस्था II अपनी प्रस्तर-कुल्हाडी और फ्लेक-ब्लेड के साथ अवस्था III मे मिल गयी, जिसका विभेद केवल लाल और

१. ह्वीलर, ब्रह्मगिरि एंड चन्द्रावली, १९४७

२. फूट, आर० बी०, 'न्योलीथीक एंड पॉलियोलीथिक फाइंड्स इन् साउथ इंडिया', जर्न० रॉयल एशिआटिक सोसाइटी, बंगाल, वॉल० LVI १८८७ एंड कैटेलग ऑव प्रीहिस्टोरिक ऐन्टीक्विटीज, मद्रास (सरकारी अजायबघर), १९०१

काले बर्त्तनों की उपलब्धि और फ्लेक-ब्लेड की संख्या में कमी से किया गया है। वास्तव में स्टीएटाइट या डोलोमाइट के बने सात पेंदेदार बर्त्तन और काम किए गए हड्डियों के दो टुकड़ों के अलावा धातु की कोई भी चीज नहीं प्राप्त हुई थी। प्रस्तर की कुल्हाड़ी और उनके उद्योगों के बरबाद हुए फ्लेकों, फ्लेक-ब्लेडों, लघुअश्मो और मिट्टी के बर्त्तनों के टुकड़ों के अलावा कुछ भी प्रकाश में नहीं आया। दूसरे दृष्टांतो की तरह ही, जिसका हम वर्णन कर रहे हैं, यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि यह खुदाई जो सावधानीपूर्वक की गयी, सिर्फ कहने के लिए थी, जिसका उद्देश्य बहुत ही सीमित क्षेत्र मे प्रस्तर-तहो की उद्वृत खुदाई के द्वारा अधिक-से-अधिक सूचनाएँ प्राप्त करना था।[१]

हैदराबाद के रायचूर जिले के पिकलिहाल मे, जो शहर और मुद्गल के किले से बहुत ही करीब है, आलचीन ने एक नवपाषाणिक अवस्थापन का अन्वेषण तथा खुदाई की थी जो उस जिले मे अत्यन्त विचारणीय रहा होगा। यह अवस्थापन एक पथरीली पहाडी समूह मे और उसके चारो ओर अवस्थित है जिसमे अनेक गुफाएँ और प्रस्तर-आश्रय हैं और जिसकी अभिव्यक्ति प्रस्तर के घेरो के अवशेषों, खुली जगहो के प्रस्तर की दीवारो के अवशेषों और बर्त्तनों के टुकडों में है जिससे प्रारभिक नवपाषाणिक काल से प्रारभिक मध्यकालीन अधिकृति के एक क्रम का सकेत मिलता है, जब अनुमानतः नगर-क्षेत्र मुद्गल चला गया था, गुफाओं की दीवारों पर अनेक प्रस्तर-नक्काशियाँ तथा चित्र हैं जिनका वर्णन छठे परिच्छेद में किया गया है।

परीक्षण के तौर पर कुल मिलाकर दस खुदाइयाँ हुई हैं जिनमे सबसे बडी १०२ फुट लबी है। दो नवपाषाणिक अनुरूपो मे विभेद किया गया है जिसके बाद पश्चनवपाषाणिक काल आया, जब मुख्य-मुख्य खाइयाँ खोदी गयीं; परतु अधिकृत नही की गयी और उसके बाद पूर्वमध्यकालीन और मध्यकालीन अवस्थापन आया। मास्की की ही तरह इस स्थल की करीब-करीब सभी तहों मे लघुअश्म पाए गए और ताँबे और लोहे के उद्भव के बावजूद यह प्रस्तर शल्य-तथ्य की उपस्थिति ही है जिसके कारण अतीत मे विचारो मे सभ्रांति बनी रही। सतह पर पाई गई दो कुल्हाड़ियों के अतिरिक्त, सभी प्रस्तर की कुल्हाड़ियाँ ६ से ११ तह में पाई गई हैं जो मुख्य खाई में सबसे नीचे है, लेकिन यह संभव जान पडता है कि निश्चित रूप से

१ सुब्बाराव, स्टोन एज कल्चर्स ऑफ बेलारी
२. आलचीन, द डेवलपमेंट ऑव अर्ली कल्चर्स इन रायचूर, पृ० २५४-५६

उनका व्यवहार पश्चनवपाषाणिक काल में भी होता रहा जब लोहे तथा सर्वव्यापी लाल और काले मृद्भांडों का उद्भव हुआ। बहुत ही कम धातुएँ पायी गयीं जिनसे इससे अधिक कुछ भी कहना सभव नहीं है कि ब्रह्मगिरि की ही तरह रायचूर के नवपाषाणिक लोगों ने व्यापार के माध्यम से कुछ ताँबे और काँसे की वस्तुएँ प्राप्त की होंगी। ब्रह्मगिरि और संगनाकालू की ही तरह हाथ से बनी वस्तुएँ प्रकाश मे आयीं; लेकिन सावधानीपूर्वक विश्लेषण से आलचीन ने उनमें विभेद किया है जिसे उसने 'अ'-१ और 'अ'-५ मृद्भांडो मे क्रमबद्ध किया है।

रायचूर-सस्कृति का काल निर्धारित करने के पहले उन सूचनाओं की पूर्णरूपेण जाँच-पडताल आवश्यक है जो मास्की मे बहुत-सी खुदाइयों के बाद, जिसमें एक बडा कब्रिस्तान भी सम्मिलित है मिली है। इनके द्वारा उत्पन्न समस्याएँ अभी तक स्पष्ट नही है। ह्वीलर, सुब्बाराव और आलचीन ने अपनी खुदाइयो से एक ढांचा प्रस्तुत किया है जिसमें मास्की से पाई गई सभी वस्तुएँ अवस्थित की जा सकती हैं। नवपाषाणिक 'अ' से लेकर मध्यकालीन समय तक के सभी मिट्टी के बर्त्तन वर्त्तमान हैं। शख और काँच की चूडियाँ और कडी मिट्टी की लघु मूर्तियाँ, जो अधिकतर सातवाहनकाल की है, और पिकलिहाल की ही तरह सभी स्तरो से प्रस्तर की कुल्हाडियाँ और लघुअश्म पाए गए जिनमे लघुअश्मो की ही सख्या अधिक है। एक बहुत ही दिलचस्प बात जिसे आलचीन ने बतलाया है वह यह है कि गुफाओ मे पाए गए नवपाषाणिक 'अ' के बर्त्तनो के टुकडो की सभी बातें, जिनमे अशोक के शासनपत्र भी सम्मिलित हैं, इस बात का समर्थन करती है कि १९५२ मे कोडिंगटन ने अशोक की शासनपत्रवाली गुफा की दरारो मे ब्रह्मगिरि I-ब की ही तरह अनेक बर्त्तनो के टुकडे पाये थे जिससे बाद के नवपाषाणिक अधिकृति के विषय मे सकेत मिलता है जो शिलालेखो की कटाई के बाद भी अवस्थित रही।[१]

आलचीन ने अशोक की शासनपत्रवाली गुफा के नवपाषाणिक बर्त्तनो के टुकटो की उपस्थिति पर बिना जोर दिए ही ई० सन् के शुरू होने तक, जो पश्च-मौर्यकाल भी था, नवपाषाणिक 'ब' युग के सातत्य के विषय मे अच्छा तर्क प्रस्तुत किया है। यह संभव है कि हम जहाँ-तहाँ नवपाषाणिक अवशेष प्राप्त कर लें, जैसा मास्की-कब्रिस्तान के बाद मे बढाए गए शवाधान हैं, जिनकी तुलना आलचीन ने पिकलिहाल मे स्वय द्वारा खोदकर निकाले गए नवपाषाणिक शवाधानो से की है। तब भी पश्चनवपाषाणिक लोगो और उनकी लोहे और लाल और काले रग की

१. वही, पृ० १७०

वस्तुओं और महापाषाणों का प्रभाव दक्षिणी हैदराबाद में ई० पू० अर्द्ध द्वितीय शती के बाद में पड़ा होगा। प्रारंभिक नवपाषाणिक संस्कृति-अ का प्रभाव कहाँ तक पड़ा इसकी ठीक-ठीक जानकारी अभी तक नहीं हो पायी है। परंतु अगर पुरातात्त्विक अधिकृति की मृत वस्तुएँ ही इसकी कसौटी हैं तो किसी भी जगह में, जिसकी खुदाई हुई है, इसका काल ई० पू० प्रथम सहस्राब्दी के प्रारभ के बहुत पहले नहीं हो सकता है।

नासिक और जोरवे की विचारोत्तेजक प्राप्तियाँ और उन स्थानों की परवर्ती खुदाइयो से ऊपरी गोदावरी और प्रवरा-नदीघाटी का भी विस्तृत सर्वेक्षण हुआ। अधिकृति-स्थल,जो फ्लेक-ब्लेड-उद्योग से संबधित मिट्टी के बर्त्तनों की स्थानीय शैली से स्पष्ट हैं, धाकी, कोपारगाँव, प्रवार-संगम और नेवासा में पाए गए और गिर-नार नदी पर बहाल मे, जो नेवासा से ७५ मील दूर है, खुदाई करने पर उसी तरह की सस्कृति मिली। जहाँ तक यह निश्चय किया जा सकता है, इन स्थानो के बर्त्तनों की सजावट की शैली फ्लेक-ब्लेड जोरवे और नासिक की प्रारभिक अधिकृति की संस्कृति से मिलती-जुलती है।[१]

समय-समय पर एकत्र इसके महत्त्व के सकेतो से सकलिया ने महेश्वर में खुदाई की जिसका नर्मदा के दोनो किनारो के अवशेषो के साथ बहुत ही भौगोलिक महत्त्व है। उत्तरी भारत से सडकें यहाँ मिलती हैं और दिल्ली से बबई तथा पूना तक की वर्त्तमान ट्रक सड़क नर्मदा से पश्चिम सिर्फ ९ मील की दूरी पर मिलती है। यह अधिक सभव है कि महेश्वर माधाता की अपेक्षा माहिष्मती था; वह शहर जहाँ कौशाबी और पैथान के बीच की प्राचीन सडक नर्मदा से मिलती थी। घनीभूत सर्वेक्षण से ऐसे अनेक सबधित स्थल मिले हैं जो मोटे तौर पर महेश्वर से उत्तर १०० मील की दूरी पर हैं।

नासिक मे प्राचीन अधिकृति-स्थल के टीले की, जिसका नाम 'मतीची गढ़ी' है, खुदाई हुई और निम्नस्तर मे चर्ट और कैलसिडोनी लघुअश्म तथा चित्रित और गेरू तथा नारंगी रग की वस्तुएँ पायी गयी। यह अच्छा रहेगा कि इन अवशेषों की सस्कृति, जो बहुत ही अपर्याप्त मात्रा में पायी जाती है, अहमदनगर जिले के जोरवे मे भी स्वीकार कर ली जाय जहाँ व्यवस्थित खुदाई से पता चलता है कि यह एक ही काल की है, यद्यपि यह विवाद का विषय है कि वहाँ एक ही सांस्कृतिक प्रभाव वर्त्तमान था कि नही। यह बात सभी खुदाई करनेवालों को मान्य है कि इन दोनों स्थानों में पाए गए मिट्टी के बर्तन ब्रह्मगिरि के उसी तरह के बर्त्तनो के समान

---

१. सकलिया एंड देव, रिपोर्ट ऑन एक्सकेवेशन्स ऐट नासिक एंड जोरवे, पैंघ (फ्रंटिस) पेंड बेप० I, पृ० १२२-६।

हैं। ब्रह्मगिरि के नवपाषाणिक हाथ से बनाए गए भूरे रंग के मिट्टी के बर्त्तन, जोरवे के तील पूर्ण बर्त्तनों और नासिक के एक बड़े घेरेदार बर्त्तन और कुछ बर्त्तनों के टुकड़ों के समान हैं। इस बर्त्तन के महत्त्व का सीधी तरह से वर्णन नहीं किया गया है, क्योंकि यह स्थानीय चित्रित बर्त्तनों में निम्नस्तर का है।

जोरवे में पाए गए चित्रित बर्त्तन चक्के की तरह हैं और इनमे छोटे-छोटे कटोरे जिसके पेंदे छिछले और गोल हैं और जिसके किनारे थोड़े अवतल हैं, सम्मिलित हैं। इन बर्त्तनो की रेखाओं को देखने से पता चलता है कि ये लाल, नारंगी, गेरुआ, भूरे और जमुनिया पाँच रंग के हैं। ये सभी काले रंग में रँगे गये है। निस्सदेह इन रेखाओ का रग केल्सो और थोर्ले द्वारा बतलाये गये "लाल मिट्टी मे लोहे के कृकलास गुण" के कारण है।[१] स्वय इस बर्त्तन को परिष्कृत भूरे रग का बतलाया गया है। इन कटोरों के साथ-साथ लबी गर्दनवाले घडे और नलिकाकार पाइपवाले बर्त्तन भी है। जोरवे की वस्तुएँ एक ही समय की हैं या नही, तो भी चार भिन्न तरह के बर्त्तन मिलते हैं क्योंकि चित्रित बर्त्तनो के साथ हमे दो तरह के बर्त्तन मिलते हैं जो उत्तर-भारतीय नवपाषाणिक शैली के है और दूसरे पश्चनवपाषाणिक पद्धति के है और इनका समय प्रारभिक सातवाहनकाल है।

इन नवपाषाणिक भूरे बर्त्तनो के अतिरिक्त अनेक विशिष्ट प्रकार के मिट्टी के बर्त्तन हैं जिनके भूरे स्लिप बहुधा घने और चमकदार हैं और कटोरे और घडे की गर्दन के चारो ओर उँगलियो के निशान और दाँतेदार रगो की मनमोहक सजावट है। इस तरह के बर्त्तन अपरिष्कृत भूरी या काली मिट्टी के बने बतलाये गये है और इनकी विविधता निस्सदेह आँच के तापमान के कारण है। इस तरह के उँगलियो के निशान की अनवरत सजावट संगनाकालू और पिकलिहाल मे भी बर्त्तमान है जहाँ आलचीन ने इसे नवपाषाणिक I-अ और II-अ प्रकार बर्त्तनो के टुकडे के रूप मे अभिलिखित किया है और जो जोरवे की तरह विशिष्ट समरूप समूह नही है। लाल बर्त्तन की गर्दनो पर कटावदार परिधि की तरह सजावट है जो पश्चनवपाषाणिक काल का लगता है।

नेवासा मे परीक्षण के रूप मे की गई अनेक खुदाइयो ने नासिक और जोरवे के सयुक्त प्रमाण की पुष्टि कर दी है। खुदाई की केवल सक्षिप्त आन्तरिक रिपोर्ट ही उपलब्ध है। परंतु अधिकृति का सामान्य क्रम पूर्णतः स्पष्ट है। उपर्युक्त दो प्रस्तर-

---

१. केल्सो, जे० एल० एंड थोर्ले, जे० पी०, द पॉटर्स टेकनिक ऐट टेल बीट मिर्सिम, एनुअल ऑव अमेरिकन स्कूल्स ऑव ओरिएंटल रिसर्च, जिल्द XXI—XXII (एक में), १९४३

कालीन युग जो प्राकृतिक रूप से संगृहीत मिट्टी में मिले हैं, उनमें पहले अवस्थापन को वर्तमान समय में नेवासा III कहते हैं जहाँ से चित्रित बर्त्तनों का भंडार ही प्राप्त हुआ है, जिनमें जोरवे-पद्धति के अनेक पाइपदार बर्त्तन भी सम्मिलित हैं (प्लेट XXVIII, अ और ब)। काले रग के बर्त्तनों के ऊपर लाल रंग से रँगाई की गयी है और इनकी सजावट अधिकतर रेखादार और आड़ी जाली पद्धति की है; परन्तु अनेक ऐसे दृष्टांत मिलते हैं जिनमें काले हिरण तथा उसके विशिष्ट पेंचदार सींगों की सजावट है। इस स्तर में जोरवे में पाये गये बर्त्तनों की तरह दाँतेदार या खरोंच-दार प्रभावपूर्ण सजावटवाले बर्त्तन भी मिले हैं। इस स्तर में दूसरी तरह के भी बर्त्तन मिले है जिनपर रेखाकार आदमी के चित्र, पीपल का पत्ता तथा दूसरे अनि-दिष्ट चिह्न हैं। बसूला और रुखानी के साथ-साथ, समतल और पॉलिश किए हुए प्रस्तर की कुल्हाड़ियाँ भी प्राप्त हुई हैं जो इस सामान्य जगह पर पहला ज्ञात दृष्टांत है। नासिक की ही तरह इस सांस्कृतिक काल के पश्चात् एन० बी० पी० और उत्तर-भारतीय लाल और काले बर्त्तनो के युग आये जिनका ई० पू० तृतीय शताब्दी के लगभग अन्त हो गया।[1]

इन स्थानो मे पाए गए लघुअश्म, चर्ट बिल्लौरी, कार्नेलियन तथा लाल रग के जैस्पर की तरह हैं और फ्लेक-ब्लेड के विकसित रूप हैं। जोरवे मे ग्रामवासियों द्वारा घर की नीव खोदते समय कुछ चित्रित बर्त्तनो में या उसके आसपास चार सही-सलामत और दो टूटे हुए ताँबे की कुल्हाडियाँ प्राप्त हुई थीं। नेवासा मे पाए गए सपूर्ण धातु की वस्तुओ मे दो छेनी, चार माला तथा एक ताँबे का काँटा है और यद्यपि इन सभी स्थानो मे समतल खुदाई का क्षेत्र बहुत कम रहा है, यह सभव जान पडता है कि ताँबे की वस्तुएँ कम थी तथा व्यापार द्वारा प्राप्त की गयी थीं और वास्तव मे यह सस्कृति नवपाषाणिक थी। आजकल जो इसे नवपाषाणिक-ताम्र-पाषाणिक कहा जाता है वह सिर्फ एक बेढंगा समझौता है।

भारत के सबसे पूर्वी भाग में नवपाषाणिक सस्कृति के प्रमाण मिले हैं जिनमे मुख्यत: प्रस्तर की कुल्हाड़ियाँ सम्मिलित हैं। इनका मृत्तिका-शिल्प तथा दूसरे वस्तुओं से सबंध नही है और इस संपूर्ण उपमहादेश मे प्राप्त अनेक वस्तुओं के बाव-जूद इन कुल्हाड़ियों की प्रविष्टि तथा इनके फैलाव की दिशा अभी तक असाधित समस्या है। ए० एच० दानी द्वारा किए गए हाल के कार्यों से कुछ परिकल्पनाओं का समाधान हुआ है।[2] हेन गेल्डर्न द्वारा बतलाए गए प्रस्तर के बसूले का आस्ट्रो-

१. इंडियन आर्कियोलॉजी, अ रिव्यू, १९५४-५५, पृ० ५-६ और १९५५-५६, पृ० ८-११

२. दानी, ए० एच०, द प्रीहिस्ट्री एंड प्रोटोहिस्ट्री ऑव ईस्टर्न इंडि[illegible]

एशिएन मुंडा लोगों से संबंध निराधार जान पड़ता है। लड़ाकू लोगों द्वारा पूर्व से, संभवतः नवपाषाणिक चीन से, भारतीय किस्म की कुल्हाडी की प्राप्ति भी निराधार ही जान पड़ती है।

भारत मे अभी तक ज्ञात प्रस्तर की कुल्हाडी के केन्द्र उत्तरप्रदेश का बाँदा जिला, जो यमुना और गगा के सगम से ठीक दक्षिण है, और हैदराबाद और मद्रास के रायचूर और बेलारी जिले हैं। अभी तक इन कुल्हाडियो की दिशा और फैलाव के विषय में ठीक-ठीक जानकारी नही है। लेकिन उत्तर-पश्चिम मे कहीं भी अल्प संख्या में इनकी प्राप्ति के बावजूद इस बात का कोई विकल्प नही है कि संभवत' इनका प्रसार डेक्कन के तटीय प्रदेश, कैमूर-प्रक्षेत्र के उत्तरी ढलान और बिहार और उड़ीसा के स्थलो से हुआ हो। तब हम कृष्णा और तु गभद्रा नदी से सबधित पूर्वी किनारो के स्थानो में इनकी अवस्थिति का केवल अनुमान कर सकते है। एक दूसरा विकल्प भी—जो लडाकू लोगो की परिकल्पना है कि प्रस्तर-कुल्हाडियो के प्रयोग की बात भारत ने पूर्व से सीखा और ये नवपाषाणिक चीन से प्राप्त हुई—बहुत आकर्षक है। इससे उत्तर-पूर्व मे उनके प्रभुत्व तथा पजाब मे गगा-यमुना के दोआब मे उनकी घटती सख्या का पता चलता है। लेकिन दुर्भाग्यवश दानी के शोध-कार्यों से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि उत्तर-पूर्व भारत भिन्न-भिन्न प्रकार की कुल्हाड़ियो तथा बसूलो का केन्द्र-स्थल था। असम के सीमा-प्रदेशो मे वास्तविक भारतीय मध्यम प्रकार के बसुले कम पाये जाते हैं और केन्द्राभिसारी बसूले जो दक्षिण-पूर्वी एशिया मे सामान्य हैं, असम के सीमा-प्रदेशो मे भी सामान्य है। यद्यपि उपान्त-प्रदेशो की नकल अभी भी वर्त्तमान है तो भी अनेक प्रकार के बसूले जो उत्तर-पूर्व भारत और दक्षिण-पूर्व भारत मे सामान्य हैं—जैसे चूलदार बसूले, फलिक रुखा-नियाँ, छड की रुखानियाँ और तिरछी कुल्हाडियाँ सभी धातु की वस्तुओ की नकल हैं और बाद के हैं तथा किसी प्रारभिक आस्ट्रो-एशिएन संस्कृति के नही कही जा सकती हैं।

यह कहना चाहिए कि इस तरह की सभी वस्तुएं भारत के लिए बहुत असामान्य हैं। बिहार के लोहदुर्ग और राँची जिले की फलिक रुखानियाँ जेडाइट हैं और संभवतः यूनान से इनका आयात हुआ हो। चूलदार बसूले पश्चिम में कौशांबी और दक्षिण में गोदावरी के मुहाने में पाए जाते हैं; परंतु उनकी सख्या बहुत ही कम है। सभी छड़ की रुखानियाँ और कुल्हाड़ियाँ तथा तिरछी कुल्हाडियाँ धातु की वस्तुओं की नकल हैं और उनसे बहुत मिलती-जुलती हैं। इन वस्तुओं के संबंध में दानी का कथन है कि "प्रस्तर के कामों में इस तरह की पूर्णता तभी

न्यायसंगत है जबतक कि धातु के रूपों का अनुकरण नहीं किया जाता है।" यह बात डेनमार्क के चमचमाते छूरे-जैसी श्रेष्ठतम प्रस्तर की वस्तुओं से मालूम होता है और इसे मौलिक सिद्धांत समझना चाहिए। इसमें सदेह है कि प्रस्तर-खड्गों की रुखानियाँ अपने ताँबे के आदिरूप की तरह प्रभावकारी रही हों। लेकिन, जैसा बाद मे विचार किया जाएगा, यदि इनमें से कुछ वस्तुएँ द्रव्य के रूप मे कार्य करती थीं, तो संदिग्ध उपयोगितावादी मूल्य के इन प्रस्तर-प्रतीकों का उससे अधिक महत्त्व होगा जो परिश्रमपूर्वक निर्मित पर अक्षय उपकरणों के रूप में दिया जाता है।

विशिष्ट भारतीय प्रस्तर की कुल्हाडियाँ अधिकतर मसूराकार और नुकीले कुंदेवाली रही हैं। यद्यपि इनमे से कुछ गोल कुंदे और किनारेवाली हैं जो शुंडाकार कम हैं और यही सब आवश्यक विशेषताएँ हैं जिनका इंडो-चीन और बर्मा में दानी ने पूर्णत: अभाव बतलाया है। कुछ भारतीय दृष्टांत जो *आयताकार हैं, यह* अप-घर्षण के कारण नही है जैसा असम और बर्मा के नमूने हैं बल्कि व्यवहार की वस्तुओं के चौड़े विदरण के कारण है। उत्तर-पश्चिमी भारत और पाकिस्तान की कुछ वस्तुओ के नमूने गोल कुंदे की तरह हैं और उनके किनारे करीब-करीब समा-नातर हैं।

अभी भी इन कुल्हाडियो का काल निर्धारित करना कठिन है। क्योंकि कहीं भी महत्त्वपूर्ण पुरावशेषो से इन्हे सबधित नही दिखलाया गया है। दक्षिणभारत मे ब्रह्मगिरि और उत्तर में बेलारी और रायचूर में इनका समय ई० पू० प्रथम सहस्राब्दी के भीतर है। नेवासा मे वे नासिक-जोरवे और रीबन-फ्लेक-ब्लेड की तरह के चित्रित मिट्टी के बर्त्तनो के साथ पाए गए हैं और इनका काल ई० पू० ८०० ई० से पहले नही हो सकता है। कश्मीर मे बुरझामा का स्तरक्रम- निर्धारण इन कुल्हाड़ियों का काल ई० पू० १२०० के पहले नही मानता है और इनमे से अनेक बहुत बाद के हो सकते हैं और रॉस द्वारा पाए गए राणा गुंडाई और झोब के स्तर 'ई' और 'एफ' की प्रस्तर-कुल्हाडियाँ इनका काल ई० पू० १००० सिद्ध करती हैं। इस तरह भारत या इसके सीमावर्ती प्रदेशों मे यदि हम नाल की दो अस्तरित कुल्हाडियों को सम्मिलित करते हैं तो भी ई० पू० २००० के पहले इनके काल के विषय में कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलता है। इसके कुछ ही अपवाद हो सकते हैं। इन अपवादों में ई० पू० २३००-२१०० के बीच के क्वेटा के नजदीक के डंब सदात की प्रस्तर की रुखानियाँ हैं, हड़प्पा और मोहेंजोदड़ों की कुल्हाड़ियों के आकार की वस्तुएँ हैं जिनमें सिर्फ छह पायी गयी हैं। इससे मालूम होता है कि ई० पू० २३०० में हड़प्पा में नवपाषाणिक पद्धति की चिप्टीदार प्रस्तर की कुल्हाड़ियाँ प्रचलित थीं और बुर्जहोम में

पैटरसन द्वारा पाई गई कुल्हाड़ियों की तरह की वस्तुएँ हैं जिनमें से एक प्रारंभिक छटाई की अवस्था की समतल और पॉलिश किए हुए प्रस्तर की कुल्हाड़ियों से मिलती जुलती है।[1]

ब्रह्मगिरि, संगनाकाल्लू, पिकलिहाल और मास्की की प्रस्तर-कुल्हाड़ियों के साथ फ्लेक-ब्लेड-उद्योग का भी, जिसका प्रारंभिक परिच्छेद मे वर्णन किया गया है, सर्वत्र प्रचलन था। यह संपूर्ण एशिया मे नवपाषाणिक और ताम्र-पाषाणिक सभ्यता का अंग है और वास्तव मे बाद में पाए गए प्रस्तर-तत्वो का भी अग है। यद्यपि ब्रह्मगिरि का फ्लेक-ब्लेड-उद्योग बड़ा नही है तब भी यह संग्रह सभी तरह से विशिष्ट है और उसी तरह की वस्तुएँ उत्पन्न करता है जैसी सिंधु-घाटी मे पाई जा सकती हैं। मास्की, कलूर और रायचूर मे ढाई इच के ब्लेड हैं और इनकी लबाई साढ़े पाँच इ च है। इससे मालूम होता है कि इन ब्लेडो की लबाई प्राप्त चर्ट के टुकडो के आकार से निश्चित की जाती होगी और इसके फलस्वरूप लंबे ब्लेड का उत्पादन सभव होता होगा।

इससे हमे महेश्वर और नवदा टोली की हाल मे पाई गई वस्तुओ पर विचार करना सभव होगा। यद्यपि सूचना की कुछ बातें प्रकाशित हो चुकी है तो भी सास्कृतिक क्रमो के आरेखीय निरूपण से सबद्ध कुछ प्रश्नो का समाधान पूरी रिपोर्ट प्रकाशित होने से ही हो सकता है।[2] महेश्वर का महत्त्व दो तरह से है। यह प्रारंभिक काल की तरह ही उत्तरी और दक्षिणी भारत और नर्मदा के बीच के पथों मे अवस्थित है जो मुख्यत मध्यभारत के जगलो के अवरोधो के सामीप्य के कारण उत्तरी भारत और डेकन के बीच की सीमा मानी जाती थी। सभी सास्कृतिक प्रभाव, जो जमीन के द्वारा फैला था, महेश्वर या चिकालडा से होकर गुजरा होगा। इन कारणो से यह बात सदेहरहित है कि नर्मदा के उत्तरी और दक्षिणी किनारो पर महेश्वर और नवदा टोली के निकटतम स्थानों मे चित्रित, गैरिक, एन० बी० पी० और उत्तरी भारत के लाल और काले रग के बर्त्तनो का

१. डी० टेरा एंड पेटरसन, स्टडीज ऑन द आइस एज इन् इंडिया, प्लेट XLIII, ४ एवं सुब्बाराव, स्टोन एज कल्चर्स ऑव बेलारी, प्लेट XX, २९ एंड सेन, डी०, अ सेल्ट साइट इन् सिंघभूम, पृ० ८, फिग० २, मैन इन इंडिया, वॉल० XXX, न० १, १९५०, के बीच तुलना करें।

२. संकलिया, एक्स्केवेशन्स इन् द नर्मदा वैली; नवदा टोली कान्सर्स; स्पाउटेड वेसेल्स फ्रॉम नवदा टोली एंड ईरान, एंटीक्विटी, जून १९५५; सकलिया, सुब्बाराव एंड देव, द आर्क्यौलॉजिकल सिक्वेंस ऑव सेंट्रल इंडिया।

प्रमाण मिलता है, लेकिन इन महत्त्वपूर्ण बर्त्तनों के समागम से कुछ समस्याओं के समाधान होने की अपेक्षा अधिक समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं।

यहाँ भी नेवासा की तरह ही कुछ ताँबे की वस्तुएँ, जैसे रुखानियाँ, काँटे और पिन प्रकाश मे आयी है और यहाँ भी चित्रित बर्त्तन-संस्कृति और सूक्ष्म फ्लेक-ब्लेड-उद्योग ताम्र-पाषाणिक की अपेक्षा नवपाषाणिक ही हैं। अभी तक इन चित्रित बर्त्तनों पर लाल रग की धारियाँ पाई गई हैं जो जोरवे की तरह ही नारगी और भूरे रंगो में मिली है। अधिकाश टुकडे रेखीय पद्धति के है और इनपर त्रिभुज, चतुर्भुज और समानातर रेखाएँ है।[1] अनेक क्रीम रग के धारीदार विशिष्ट पद्धति के बर्त्तन भी है और मनुष्य और जानवरो के अधिकाश चित्र इसी पद्धति के मिलें हैं। समूह बनाकर हाथ मे हाथ मिलाए नाचते हुए मनुष्यों के चित्र एक ही घड़े की सजावट हो सकते हैं या जैसा सकलिया ने बतलाया है, संभवतः तीन अलग-अलग घडो की सजावट हो सकते है।[2] हरिणों के समूह भी दिखलाई पड़ते है, परंतु सब मिलाकर अभी तक तीस से कम ही बर्त्तनों का उल्लेख मिलता है और इस तरह के बर्त्तन सामान्य नही है। नालीदार और नाददार पाइपवाले बर्त्तन, जो अभी तक १५ ही मिले हैं, भारत मे बहुत कम है और इसलिए चित्रित बर्त्तनो के स्रोत-निर्धारण मे बहुत महत्त्वपूर्ण है। ये सभी पाइप लाल,भूरे या चॉकलेट रग की धारियो पर काले रग से रँगे गए है। इनके अतिरिक्त, सिग्मा और काँटेदार बर्त्तन भी पाए गए है यद्यपि उनका कितना प्रचलन था, यह अभी तक स्पष्ट नही है।

यह विशिष्ट सस्कृति नर्मदा तक फैली हुई थी। त्रिपुरी (तिवार) में जबलपुर के ठीक पश्चिम एम० आर० दीक्षित द्वारा चित्रित बर्त्तन और फ्लेक-ब्लेड खोदकर निकाले गए है। दूसरी जगहो की तरह ही स्तरो के नीचे एन० बी० पी० बर्त्तन पड़े हुए है जो निश्चयपूर्वक मौर्यकाल के ही हैं और सभवतः इनका आरभ कुछ पहले हुआ हो। ये बर्त्तन लाल रग के हैं जिनपर काले रग की अज्ञात धारीदार रगाई है।[3] तब भी, बाद की खुदाई से यह धारणा पुष्ट हो जाती है कि गुजरात से लेकर ऊपरी गोदावरी तक नवपाषाणिक सस्कृति रही होगी। महेश्वर के उत्तर से लेकर उज्जैन के बाहर तक उत्तर मे गिरनार के बहाल तक चंबल नदी के किनारे के नागदा और ताप्ती नदी के किनारे के प्रदेश आवश्यक कड़ी मिलाते हैं और दोनों

१. संकलिया, सुब्बाराव एंड देव, वही, पृ० ३५१
२. संकलिया, नवदा टोली डांसर्स
३. दीक्षित, एम० आर०, प्र० प्राइवेट करेसपोंडेंस

संस्कृतियाँ एक ही तरह के नवपाषाणिक चित्रित बर्त्तनों, फ्लेक-ब्लेड और पतले ताँबे के टुकड़ों से प्रारंभ हुई थीं।

इसमें कुछ ही संदेह हो सकता है कि जहाँ तक भारत के अधिकांश क्षेत्रों का संबंध है, यही संस्कृति उस समय लोगो के रहन-सहन के उच्च स्तर मे वर्त्तमान रही होगी जो प्रारंभिक आखेटक-समुदाय को शिशुनाग और नंदवंश के अर्द्ध-ऐतिहासिक काल से अलग करती है। जैसा हडप्पा से पता चलता है, और जैसा पाँचवें परिच्छेद में हमने देखा है, वैदिक और महाकाव्यकाल में लोगो के रहन-सहन के स्तर अवश्य ही निम्न रहे होंगे। यदि इस बात को मानें कि केवल राजधानी मे ही सभ्यता नाम की कोई चीज थी, तो भीर टीला और तक्षशिला के अवशेषो से जो अधिकतर ई० पू० ४५० के पहले के नही हैं, इसके सिवा कुछ भी सकेत नही मिलता कि ये बुरी तरह से बने भिन्न-भिन्न घरो के छोटे शहर थे।

उनलोगो को, जिन्हें पूर्ण विश्वास है कि शिशुनागवंश के पहले के शासक आलीशान महलो मे रहते थे, अपनेको इस बात से सात्वना देना चाहिए कि वे महल लकडी के बने हुए थे क्योकि उनकी कीर्त्ति के प्रमाण की कोई भी निशानी नही बची है। सकलिया ने बड़े साहस के साथ, जिसकी प्रशसा बहुत-से लोग नही कर पाते, यह घोषणा की कि पौराणिक परपरा के महान् राजाओ तथा योद्धाओ को ताम्र-युग मे रखा जाना चाहिए। वे स्पष्ट रूप से बतलाते है कि "पुरातात्त्विक तथ्यो की रोशनी मे इस तरह की पौराणिक व्याख्या मे निस्सदेह हममें से अनेक लोगो को सदमा पहुँचेगा क्योकि यह व्याख्या पौराणिक युग के हमारे सचित स्वप्नो के विपरीत है।"[१]

लिखने के समय किसी को भी यह मानना होगा कि इस नवपाषाणिक सस्कृति की सास्कृतिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि बहुत अस्पष्ट है। तो भी इसकी संभावनाएँ जो बहुत ही गभीर मानी जा सकती है, वाद-विवाद का विषय हैं। मध्यपाषाणिक युग की सस्कृति जिन बातों से प्रभावित हुई तथा निस्सदेह कुछ बातो मे ऊपरी पुरा-पाषाणिक युग, हडप्पा और इडो-आर्य भारत के आखेटक-किसान ही थे, इन सभी बातो का वर्णन प्रारभिक परिच्छेद मे हुआ है। जहाँ तक भारत का संबध है, सामान्य रूप से इस तरह के प्रभाव उत्तर-पश्चिम से आए जो पश्चिमी एशिया की प्राचीन संस्कृति से संबद्ध थे। दक्षिण का प्रभाव नहीं पड़ा, जिसकी संस्कृति किसी भी चीज से संबद्ध नहीं थी और जो पूर्व के पडोसी देशों की तरह प्रारंभिक विकास के किसी भी चिह्न से युक्त नही है।

---

१. सकलिया, एक्सकेवेशंस इन् द नर्मदा वैली, पृ० ११४

हाल में प्राप्त पश्चिमभारत और मध्यभारत के अवस्थापन के बारे में बहुत ही कम जानकारी है। छोटे नगरों में एक संस्कृति पलती थी जिससे पहियेदार रंगीन बर्तनों, फ्लेक-ब्लेड-उद्योग और कुछ ताँबे का महत्त्वपूर्ण साक्ष्य मिलता है जो उन्हें बलूचिस्तान और सिंध के किसानवर्ग से पृथक् करता है। वह विस्थापित किसानों और आदिमजातियों का अवस्थापन था जो किसी अधिक विकसित समाज के साथ संबध के फलस्वरूप सांस्कृतिक रूप से बढ़ा-चढ़ा था। यद्यपि उनकी जाति में एक प्रभावशाली वर्ग की उपस्थिति रही होगी, जो संभवत विचारो और ज्ञान का स्रोत रहा होगा, तो भी उनके बढ़े-चढे नवपाषाणिक रहन-सहन के स्तर पर किसी तरह के विकास के वास्तविक प्रमाण बहुत ही कम प्राप्त हैं।

हड़प्पा की सभ्यता फिर किसी दूसरी जगह नहीं फैल सकी। गंगा-यमुना के दोआब मे, जो नदी-घाटी, हड़प्पा और मोहेंजोदड़ो के अन्न-उत्पादक सहराज्य की तरह थी, इस सस्कृति के पुनर्जीवित होने की कोई सभावना नही थी। हड़प्पा की सभ्यता जो ई० पू० १६०० से १४०० तक बनी रही, ई० पू० २६०० मे जब इसका उद्भव हुआ था, उस अवस्था मे नही थी। यद्यपि उनके समुदाय अभी भी अच्छी तरह संगठित थे फिर भी वे एक भगोड़े की तरह थे। उन्हे अपनी सस्कृति को पुनर्जीवित करने की न इच्छा थी, न उन्हे इसका अवसर ही मिला। वे आक्रमणकारियो के द्वारा, जो पूर्व और दक्षिण की ओर निरतर बढ़ते रहे, मार दिए गए, पकड़ लिए गए या उनमे मिल गए। ऊपरी सतलज, सरस्वती नदी और सभवतः गुजरात के लोथल के प्रादेशिक अवस्थापन, बड़े नगरो के पतन के पश्चात् एक या दो पीढी तक हड़प्पा की ही तरह रहे और वहाँ के लोगो का रहन-सहन भी वैसा ही था, लेकिन उनका अस्तित्व अधिक समय तक बना न रह सका। नवदा टोली मे हड़प्पा-सस्कृति का, जो एक विशिष्ट गुण पुनर्जीवित रहा, वह मनका के बदले सेलखड़ी का बृहद् प्रयोग था। वहाँ पाई गई १९२ वस्तुओ मे १३६ नवपाषाणिक स्तर से थी और उनमे ९९ सेलखड़ी की बनी थी।

यह याद रखना चाहिए कि हड़प्पाकाल मे भी बड़े नगरो के बाहर गाँव के सामान्य लोग अर्द्धनवपाषाणिक किसान थे और सपूर्ण विश्व में आर्य-समाज मे राजा तथा सरदार स्वयं किसान होते थे और किसानों पर शासन करते थे। ये आर्य आक्रामक तभी तक खानाबदोश थे जबतक प्रोत्साहन और दबाव से ये घूमते रहे। पशु और अन्न उनके जीवन के आधार थे। आर्यों के गाँवों और अर्द्ध ईरानिएन किसानों के गाँवों मे कुछ भी अंतर नहीं था। महान् वैदिक और पौराणिककाल के नगरों के अवशेषो की प्राप्ति की आशा रखना व्यर्थ है, क्योंकि उनका अस्तित्व नही था। यहाँ आपत्ति की जा सकती है कि योद्धाओं और किसानो के गुणों में

अंतर था, क्योंकि यहाँ उद्देश्य उन तरीकों से है जिनके अनुसार प्राचीन भारत के लोग रहते थे। प्रारंभिक इंडो-आर्य आधुनिक मासाई की तरह पूर्णरूपेण पशुपालक नहीं थे, न प्राचीन-सीथियन की तरह खानाबदोश ही थे, बल्कि आजकल के पंजाबियों की तरह वे किसान थे और साहसी और युद्धनैतिक मनोभाव के थे।

वास्तव में उत्तर-पश्चिम की जनसंख्या मे किसी तरह ये चारों तत्त्व—आदिमजातीय आखेटक, ईरानी किसान, हड़प्पीय और इंडो-आर्य—अवश्य वर्त्तमान होंगे और इनमे जाति-प्रथा के मुख्य तत्त्वों—जातिबहिष्कृत, शूद्र, वैश्य और क्षत्रिय को ढूंढ़ने का लोभ अब बहुत सहज है। यह विचारणीय है कि उस समय ब्राह्मणो के बारे मे क्या धारणा थी। हड़प्पा के नगरो मे हमे प्राक्-आर्य ब्राह्मणो का प्रमाण मिलता है और यह असंभव है कि हड़प्पा के पुजारी अपनी शताब्दियों के सभ्य अनुभव से लोक-श्रद्धा पर अपना प्रभाव जमाने मे असफल रहे हो। जैसा स्लेटर और हुटन ने बतलाया है—इसमे बहुत ही कम संदेह है कि वैदिककाल मे ऋषि और पुजारी लोग थे जो सिंधु की सभ्यता मे पले थे। उनमे कुछ नए भी रहे होंगे, और उन्हें समकालीन बेबिलोनिया की तरह गणितीय और खगोलीय ज्ञान था।[1]

इन नवपाषाणिक और ताम्र-पाषाणिक लोगो के काल और इनके ऐतिहासिक महत्त्व के संबंध मे किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने के पहले बहुत काम करना जरूरी है। फिर भी, उनकी समस्याओ को बतलाना और सामान्य दिशा की ओर संकेत करना, जिसका दृष्टांत मिलता है, महत्त्वपूर्ण होगा। इन दृश्य-समूहो के चित्रो से उपस्थित स्पष्ट बात जानने के लिए हमे कराची के पूर्व, बंबई के दक्षिण, भिलसा के पूर्व और अजमेर के उत्तर खींची गई लकीरो के बीच के मानचित्र का अच्छी तरह अध्ययन करना होगा, जिसका निष्कर्ष बहुत ही स्पष्ट है। इनमे रंगपुर-काठियावाड, महेश्वर-नागदा और ऊपरी गोदावरी-समूहो के मुख्य रंगीन बर्त्तनो और फ्लेक-ब्लेड-उद्योग, जिसपर हमलोग विचार कर रहे है, सम्मिलित है और सिंधु-घाटी के अमरी और चन्हुदड़ो और उत्तरी मुख्य संचार के साधनों से इनके संबंध के बारे मे जानकारी होती है (चित्र १५)। इससे यह भी ज्ञात होता है कि पश्चिम की भारतीय मरुभूमि और पूर्व के मध्यभारत के जंगलो के बीच पिछली बातो का किस तरह निर्धारण होता है। यदि छोटे कच्छ के रन को कच्छ द्वीप के चारो ओर समुद्र की तरह दिखलाया जाय, जो करीब-करीब ई० पू० द्वितीय सहस्राब्दी के

१. हुटन, जे० एच०, कास्ट इन इंडिया, पृ० १३२, कैंब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, १९४६
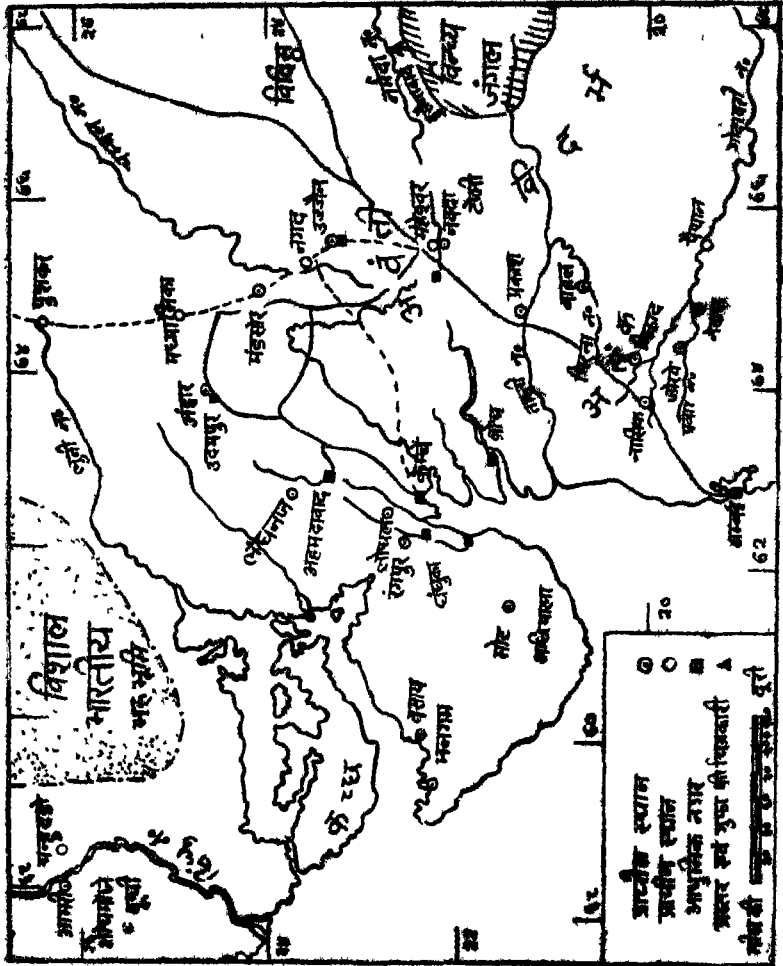
चित्र १५. पश्चिम मध्यभारत और पश्चिमी पाकिस्तान का भाग

अंत में था और यह संभव मान लिया जाय कि छोटे नौगम्य जलयान बालकोन से होकर आते थे, जो रगपुर और लोथल के नजदीक है, तो हम देख सकते हैं कि इन स्थानों का सिधु-घाटी से संबंध रखना कितना सहज था।

यह कुछ महत्त्व की बात हो सकती है कि त्रिपुरी (तिवार) शहर वह स्थान है जहाँ नर्मदा नदी दक्षिण की तरफ मुड़कर मध्यभारत के जगलों में प्रवेश करती है और जहाँ ५० फुट का झरना नौसचालन को अवरुद्ध करता है। भेड़ाघाट का महत्त्व, जहाँ प्रतिवर्ष मेला लगता है और जो चौसठ-योगिनी मंदिर के लिए प्रसिद्ध है, माल उतारने के लिए रहा होगा, जब नदी नौगम्य रहती होगी और यह त्रिपुरी का बन्दरगाह रहा होगा; क्योंकि जैसा बाद मे पता चलेगा, इसके प्रमाण मिलते है कि दक्षिण मे भीटा और कौशाबी से होकर एक सड़क जाती थी। अब प्रश्न है कि भौगोलिक चित्र किस तरह हमे, लोगो की समस्याओ और उनकी सस्कृति को जानने मे मदद करता है। इससे जानकारी बहुत कम होती है, लेकिन यह काठियावाड, गुजरात, खानदेश और उत्तर-पच्छिम डेकन के महत्त्व पर जोर देता है और जल या स्थल के द्वारा इस तरफ उनकी किसी तरह की सभव सास्कृतिक गति के बारे मे बतलाता है। लेकिन यह अतिम हद है। सिंधु के मुहाने से लेकर काठियावाड प्रायद्वीप तक अरब या फारस की खाडो के सभी जलयानो के लिए प्राकृतिक जल वर्त्तमान है जो नष्ट-भ्रष्ट मकरान से दूर ले जाता है और यह स्थान प्राकृतिक उत्तरी और दक्षिणी रास्ते के बीच मे है जो उत्तरी और प्रायद्वीपीय भारत को जोड़ता है।

इन स्थल-समूहों के स्तर-क्रम की तुलना करने पर, जहाँ तक ये प्रकाशित है, हमे बहुत-सारी बातें मालूम होती हैं। रगपुर से क्रमिक रंगीन बर्त्तनो के बारे में जानकारी होती है जिनका क्रम दीर्घकाल तक चलता रहा और जिनका प्रारंभ सभवत: हड़प्पा-सस्कृति की अतिम अवस्था से जोडा जा सकता है। इनमे कोई भी अमरी या हड़प्पा के बर्त्तनो से नही मिलता है। प्रारभिक चाकलेट रग और पांडु-लेप के बाद लाल के ऊपर काले लेपवाले बर्त्तनो का उद्‌भव हुआ जो विशेष रूप से अपनी बाद की अवस्था में, रगपुर III मे मिले और जो मुख्य रूप से जोरवे और महेश्वर के समान है। पाँचवे परिच्छेद के रगपुर के काल-सबंधी प्रसंग की चर्चा यहाँ असगत नहीं होगी, जिससे ई० पू० ६०० और ७०० के बीच के रगपुर के विशिष्ट पहियेदार बर्त्तनों और ईस्वी सन् ८०० के महेश्वर और ई० पू० ७५० के ऊपरी गोदावरी के बर्त्तनों के साथ के प्रसार के बारे में जानकारी होती है जो महेश्वर मे ईस्वी सन् ३५० तक और ऊपरी गोदावरी मे ई० पू० २५० तक प्रचलित थे (चित्र १६)।

चित्र १६. पश्चिमी और दक्षिणी भारत में कांस्ययुगों का तिथिक्रम

आलचीन ने जोरवे के कुछ बर्त्तनों से, जिसे उसने पूना मे देखा था राय-चूर और बेलारी के अपने नवपाषाणिक अ-३ और अ-४ के बर्त्तनों में समानता स्थापित की है। नासिक और जोरवे में हाथ के बने घड़ों की उपस्थिति से मालूम होता है कि ऊपरी गोदावरी से उनका संबंध था और इस नवपाषाणिक संस्कृति के हाथ के बने रंगीन बर्त्तनो की शैली से लगता है कि यह शैली उन संबंधो से प्राप्त हुई थी। यदि नवपाषाणिक बर्त्तनों के अ-३ और अ-४ का काल लगभग ई० पू ६०० और २५० के बीच माना जाय, तो इन सभी रंगीन बर्त्तनो का आपसी संबंध और धीरे-धीरे उनका नवपाषाणिक संस्कृति से मेल, जिसमे समय-समय पर व्यापारियों द्वारा ताँबा भी सम्मिलित किया गया, एक सुस्थापित बात हो सकती है।

इस तरह के संकेत, जो हाल की खुदाई से मिलते है, सिद्ध करते है कि नव-पाषाणिक संस्कृति उस समय प्रारंभ हुई जब आक्रमण-काल को लोग भूल गये थे और यदि परंपरा का कोई महत्त्व है तो यह आर्यों का प्रसार था, जिसके कारण नवपाषाणिक ग्राम-सस्कृति का प्रभाव इन इलाको से फैला, जिसके जिम्मेवार, काव्यो और पुराणो के अनुसार, यादवलोग थे। इडो-आर्य-सस्कृति का प्रकाश, जैसा कुछ लेखकों ने बतलाया है, उतना तीव्र नही था जैसा कि अनुमान किया गया है, लेकिन यह बहुत प्रभावोत्पादक रहा और इसका सबध उस समय की अवस्थाओं से था। इस तरह हमे स्पष्टतः यह आभास होगा कि नवपाषाणिक किसान, समूहो मे बिखरे मध्यपाषाणिक शिकारियो से, जो हड़प्पा की सीमा के पार के प्रदेशो के निवासी थे, अपनेको बड़ा मानते थे। रहन-सहन के इस तरह के ढंग और बर्त्तनो और शिल्प-तथ्यों की ऐसी पद्धति, उत्तरी पॉलिश किये गये काले बर्त्तनो और लोहे के आगमन के समय तक, जिसका प्रचलन ई० पू० ३५० से २५० के पहले मध्यदेश से दक्षिण और पश्चिम की तरफ होता रहा, चलती रही।

ई० पू० ६०० से २५० के बीच के निर्धारित समय मे, ये अवस्थापन किस हद तक आर्य थे, यह कहना कठिन है। भारत, जैसा बतलाया गया है, बहुत विशाल है। आज का संपूर्ण पश्चिमी पाकिस्तान, पूर्वी पंजाब, राजपुताना और गंगा-यमुना का दोआब—कौशांबी तक जहाँ ये दोनो नदियाँ मिलती है—अधिकृत कर लिया गया था। यह संभव है कि केवल कुछ साहसी यादवलोग जो स्वंय द्वारा नियुक्त मध्यदेश के परंपरानिष्ठ वैदिक आर्यों से सहानुभूति नहीं प्राप्त कर सके और जिन्हें भाटों ने क्षोभ के कारण असुर कहा, वही दक्षिण और पश्चिम की कष्टकर भूमि की तरफ बढ़े। यह असगत जान पड़ता है कि इस तरह

की संस्कृति, जिसका वर्णन हो रहा है, पिछड़ी आदिमजातियों में अधिक विस्तृत तकनीकी ज्ञान के सम्पर्क के फलस्वरूप थी। इस तदात्म संस्कृति के उद्‌भव के बारे में जानने के लिए कुछ निश्चयात्मक कार्य आवश्यक हैं। किसानलोग अपने बर्तनों को लेकर, जो निःसंदेह हड़प्पा की तरह के थे, आक्रमण-काल की घटनाओं से विस्थापित हो गये, और कठोर प्रकृति के यादव आर्यों के साथ रहकर उनसे अनुप्राणित हुए। यादवों का उनपर प्रभुत्व रहा। परंतु ये पुरागामी सीमा-प्रदेश के लोग बहुत हद तक रक्त-स्वभाव और संभवतः बोली में भी ईरानियों-जैसे थे।

माहिष्मती (महेश्वर), उज्जैन, त्रिपुरी (तिवार) और विदिशा (भिलसा), ये सभी स्थान परपराागत हैहय यादवों से संबद्ध हैं और यादव सरदारों ने ही आर्यों की विचारधारा और उनकी बोली का द्वारिका—जो अनार्त देश का मुख्य शहर है और कठियावाड के उत्तर-पश्चिम में है, जिसकी यादवों ने ही स्थापना की होगी—तथा अस्माका और विदर्भ मे, जो नर्मदा और गोदावरी के बीच मे है, प्रसार किया होगा। हैहयो से यादववश सबधित था जो भीम सतवाता के वशज थे, जिसमें अंधाका मशहूर है, जो अधाका महाभोज और विदर्भदेश से संबंधित है। ये अंधाका नि सदेह बाद के आन्ध्र है, जिस तरह विदर्भ से वर्त्तमान बरार और अस्माका से आध्र हुआ।

इससे ऐतिहासिक वास्तविकताओं का बहुत ही अस्पष्ट और सूक्ष्म आभास तो मिलता है, किंतु यह स्पष्ट ही है कि पुरातत्व के तथ्यों का, लोककथाओं और परंपरा द्वारा प्रस्तुत पीठिका से, मेल कराने मे जो कठिनाई है, वह नश्वर वस्तुओ के लुप्त हो जाने की संभावना को स्वीकार करते हुए भी, दुर्निवार है। इसी कारण हम बहुधा एक ही ग्रंथ में, एक ही समय और स्थान के बारे में दो परस्परभिन्न वृत्तात पाते है। एक ओर तो पुरातत्व की खोजें और उनकी व्याख्या होती है, जो वैज्ञानिक अनुसंधान के परिणाम होती हैं; और दूसरी ओर होती है परंपरा की सीख, वह कल्पनाशील नक्काशी जिसमें ऐसे पुनीत साधु-सतों द्वारा शताब्दियो तक के परिवर्द्धन-सपादन शामिल होते हैं, जो अपने आख्यान के मुखपात्र के प्रति असीम श्रद्धा के कारण उसके लिए केवल वही भूमिका स्वीकार कर सकते थे जिसमें वह अपने युग के सर्वश्रेष्ठ का प्रतीक बनकर, या उससे भी अधिक उत्कृष्ट रूप में, दिखाई दे।

यद्यपि यह स्पष्ट है कि प्रारंभिक पश्चिमी और मध्यभारत की संस्कृति की पाई गई ताम्र-वस्तुओं की संख्या इतनी कम है कि इन्हें ताम्र-पाषाणिक नाम से नही पुकारा जा सकता; फिर भी उत्तरी भारत में उत्तरप्रदेश, बिहार और उड़ीसा
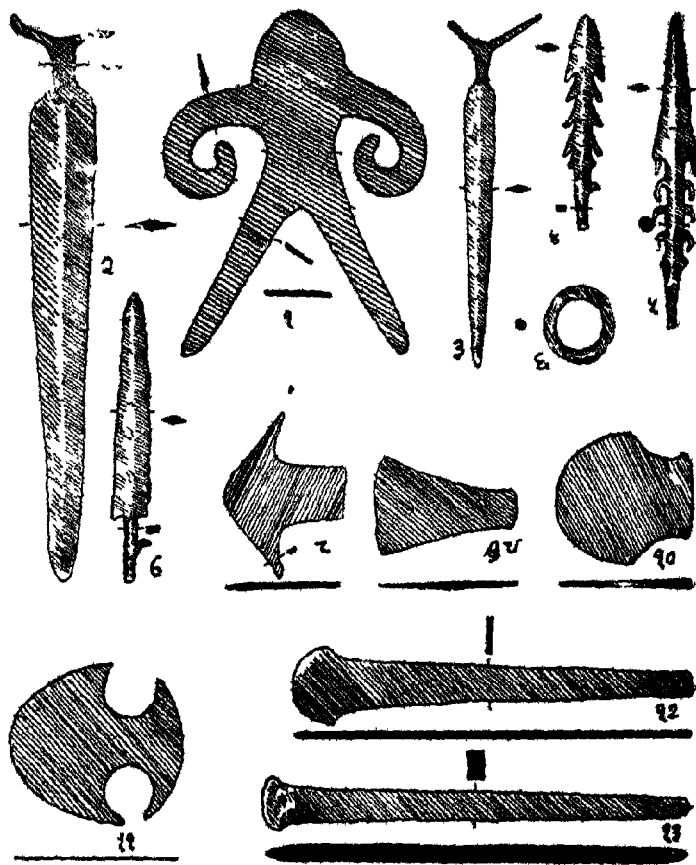
चित्र १७. तांबे के संचय-अवस्थापन के औजार तथा अन्य वस्तुएँ

के प्रदेशों में बिलकुल भिन्न बातें हैं। यहाँ बड़ी संख्या में तांबे की खानें प्रकाश में आयी हैं, परंतु दुर्भाग्यवश अकस्मात् उनकी प्राप्ति से उनके काल के बारे में कुछ भी पता नहीं चलता। पहली खान की खोज के समय से—१८२२ से १९४२ तक—जब प्राप्त की गई वस्तुएँ एक दुकानदार के पास लाई गईं, तो इनकी संस्कृति के संबंध में किसी बात का पता नहीं चला, न कोई संकेत ही दिखलाई दिया। वस्तुतः बी० बी० लाल ने १९४९ में बिसौली के ताम्र-क्षेत्रों का दौरा किया और परीक्षण के तौर पर दो खाइयाँ खोदकर सर्वप्रथम एक मृत्तिका-शिल्प से संबंध स्थापित किया, जो बाद की खोजों से पता चलता है, इस इलाके में पाई गई कुछ ताम्र-वस्तुओं का समकालीन हो सकता है।

जहाँ तक तांबे और कांसे के औजारों और हथियारों के स्थान का प्रश्न है, बलूचिस्तान, सिंध और पंजाब की हड़प्पा-संस्कृति के प्राप्त हथियारों के अलावा, कुछ को छोड़कर, सभी खोजें उत्तरप्रदेश, बिहार और उड़ीसा तक ही सीमित रही हैं और लाल के द्वारा बतलाए गए अपने संपूर्ण अध्ययन के ३४ स्थानों में, चार स्थानों को छोड़कर सभी इन्हीं प्रदेशों में हैं। कुल्हाड़ियों और बसूलों के, जिनमें सभी तरह की टाँकियाँ तथा लंबी टाँकियाँ सम्मिलित हैं, ५४ दृष्टांत मिले हैं जहाँ दूसरी तरह की तलवारों, कटारों, भालों, बर्छियों, पुरुष-विधों अथवा आदमी के आकार की वस्तुओं के ५० दृष्टांत मिले हैं और इनमें गुंगेरिया में प्राप्त ४२४ श्रेणीबद्ध-ताम्र टाँकियाँ सम्मिलित नहीं हैं। हैदराबादप्रदेश के कलूर में मिले तीन को छोड़कर सभी तलवारें, भाले और बर्छियाँ, उत्तरप्रदेश के गंगा-यमुना के दोआब से प्राप्त हैं[1] (चित्र १७)।

ये वस्तुएँ उत्तर-पश्चिम हस्तिनापुर के सामने राजपुर परशु से लेकर दक्षिण-पूर्व में गंगा-यमुना के संगम के नजदीक कौशांबी तथा पौंडी तक मिली हैं। अभी तक बर्छियाँ, तलवारें और पुरुष-विध वस्तुएँ शिवराजपुर के पूर्व और बिठूर में नहीं मिली हैं, यद्यपि धाका से पश्चिम उत्तरप्रदेश के शाहजहाँपुर जिले में चौड़ी टाँकियाँ मिली हैं। लाल द्वारा बतलाई गई एक चौड़ी कुल्हाड़ी जो मनीपुर में मिली है, इकलौती है और चौड़ी कुल्हाड़ियाँ बिहार, उड़ीसा और बंगाल में अधिक मिली हैं (चित्र १७ · १०)। तांबे की वस्तुएँ उत्पन्न करनेवाले दो औद्योगिक क्षेत्र हैं। पहला गंगा-यमुना का दोआब और दूसरा, बिहार में रांची की अधित्यका। यह विभाजन

---

१. स्मिथ, द कॉपर एज ऐंड प्री-हिस्टोरिक ब्रॉन्ज इंप्लीमेंट्स ऑव इंडिया; शास्त्री, एच०, रिसेंट एडिशन्स टु आवर नॉलेज ऑव कॉपर ऐंटीक्विटीज ऑव द इंपायर, जॉर० रॉयल एशियाटिक सोस० बंगाल XI, १९१५; लाल, फरदर कॉपर होर्ड्स

संभवत: उन क्षेत्रों तक सीमित हैं जहाँ खान से ताँबे निकाले जाते हैं। (चित्र २०)

इन कुल्हाड़ियो के कुंदे धार की अपेक्षा कुछ संकीर्ण हैं। प्रायः हड़प्पा के इन उदाहरणों में विशेषता नही पायी जाती है जिसके छोर करीब-करीब समानांतर हैं और जिसकी धार कुछ ढलवाँ, पतली और हल्की है। इसके अतिरिक्त, राजपुर परशु और बिसौली से प्राप्त पतली इखानियों की तरह की टाँकियाँ मिलती हैं, जो हड़प्पा की ही संस्कृति हैं। ये कँटीली बर्छियाँ दो तरह की है। जो सामान्य है वे बिठूर-पद्धति की है।[1] उनकी धार कँटीली है और उसके ठीक नीचे सामानतया दो या कभी-कभी तीन काँटे लगे हुए रहते हैं और फिर इनके नीचे दोनो तरफ स्तम्भ के ऊपर एक छिद्राकार कर्ण (लग) लगा हुआ है। इन बर्छियों की संख्या बहुत अधिक है। इनमें कुछ १२ से १७ इंच लबी हैं और अन्य ७½ से १४ इंच। ये सभी अच्छी तरह से बने साँचे मे गढे हथियार हैं, जो नये तरह के हैं और जिनकी मध्य-शिरा बहुत मजबूत है।

कटीली बर्छियाँ पूर्णत: ढाँचे मे बनाई जाती थी। इनमे से एक हनिमन-अजायबघर मे है जो इस कारीगरी का उत्तम नमूना है (प्लेट XXVII, अ)। अन्य निश्चय रूप से अपने निर्माण के प्रथम चरण मे ढाले गये थे, परतु लाल के सरथौली के परीक्षण से पता चलता है कि संभवतः ये काँटे पहले टंकनो से काटे गये थे और फिर रेती से, यद्यपि वे काँटेदार बनाने के बाद रेती से भी तेज किये जा सकते थे। इन बहु-काँटेदार बर्छियो और यूरोप मे पाये गये मध्यपाषाणिक सीगवाली बर्छियों मे बहुत समानता देखी गयी है, परतु यह समानता कृत्रिम है और सभवत इनमे कोई प्रत्यक्ष सबध नही है (चित्र १७ : ४)।

अनेक स्थानो पर भाले की नोके पायी गयी हैं और यह स्पष्ट है कि फतहगढ, जिसे 'इलियट की तलवार' कहते है, नियोराई और इटावा मे पाई गई चौडी धारवाली वस्तुएँ अपने बडे आकार के बावजूद, जो २८ इच से भी अधिक लम्बी है, भालाग्र-जैसी ही हैं। इन दोनों हथियारो मे चूल से बाहर की ओर एक प्रक्षेप है और इसी तरह की प्रयुक्ति सरथौली मे पाये गये पाँच भालाग्रों मे तीन मे पायी जाती है। इलियट की तलवार, तलवार की ही तरह है, परतु सरथौली की तरह के ही तीनों दृष्टांत और उसी तरह की चूल कटीले शीर्ष की तरह है और वे अवश्य भाले के लिए ही बने होंगे (चित्र १७ : ७)। इस तरह के प्रक्षेप उसी जगह की बर्छी के शीर्ष पर भी मौजूद हैं और स्पष्टतः छिद्रदार चूल पर बाँधने का एक विकल्प है, यद्यपि वास्तविक भाले की तरह उसपर एक लकीर हो सकती है। यद्यपि ऊपर वर्णित सभी हथियारों

---

१. गॉर्डन, अर्ली यूस ऑव मेटल्स इन इंडिया, पृ० ६०

के शीर्ष भाले की ही तरह हैं, पर वास्तविक तलवारों और छुरों का भी अस्तित्व है। फतहगढ़ में तेरह ताँबे की तलवारें और छुरे पाए गए थे जिनमें एक को छोड़कर सभी की मूठ शृंगिका (एटेनर) पद्धति की है और इस प्रकार का एक छुरा बिठूर में एफ० ओ० ओएर्टेल को मिला था (चित्र १७ · २ और ३)। बुलन्दशहर जिले के मानपुर में १८½ इंच लंबा और मध्यशिरायुक्त एक ताँबे का छूरा तथा दो कुल्हाड़ियाँ एक खेड़ा या टीले में मिली थीं। इनमें से एक का किसी भी सांस्कृतिक अवशेष से संबंध नहीं है। मानपुर के टीले की न कभी गवेषणा हुई है और न इसकी पहचान ही हुई है।

सात वस्तुएँ जिन्हे ठीक ही मानव-समरूप कहा गया है, बिसौली, फतहगढ़ और शिवराजपुर मे पायी गयीं हैं। जैसा लाल का कहना है कि इन वस्तुओं के धार्मिक या उपयोगितापरक उपयोग का केवल अनुमान ही किया जा सकता है; फिर भी यह पर्याप्त रूप से विचारणीय है। यदि ये मुख्यतः मानव-स्वरूप है तब इनका धार्मिक रूप में उपयोग होता होगा। दूसरा वैकल्पिक सुझाव यह है कि वास्तव मे ये हथियार छुरी की तरह हैं और इनका मानव स्वरूप आकार एक आकस्मिक घटना है। ये वक्र अस्त्र तेज है, परन्तु ऐसा समझने का कोई कारण नही है कि ऐसा ठोके जाने के फलस्वरूप है जैसा लाल ने बतलाया है। ठोकने की क्रिया सभी जगह एक ही तरह की रही है और इसमे बहुत कम संदेह है कि इन अस्त्रों को जान-बूझकर तेज किया गया है और इसका एक खंड भोथरा है। इसका भोथरा भाग इसे फेंकने मे मदद करता है और तेज भाग बुरी तरह घायल कर सकता है। इनमे से कुछ वस्तुएँ बहुत भारी है जिनमें एक दस पौंड की है। लेकिन फेंकनेवाले अस्त्र के रूप मे इसका महत्त्व कम नही है, क्योंकि नजदीक से फेंकने पर इसका बहुत ही विध्वंसक प्रभाव हो सकता है। शत्रुओं पर आक्रमण करने के पूर्व उनके व्यूह को तोडने के लिए इसका सफलतापूर्वक उपयोग होता होगा। इसके प्रयोग के विषय मे जो मुख्य आक्षेप है वह यह कि इसे पूरी तरह से ठोक-ठोककर इसके 'सर' को भोथरा बना दिया गया है।[1] (चित्र १७ . १)

पंजाब की पूर्वी सीमा पर, कर्नाल जिले मे कुरुक्षेत्र के निकट राजा कर्ण के किले की १९२१ की खुदाई मे, संपूर्ण पंचनद के क्षेत्र से एकमात्र ताँबे की मूल ऐतिहासिक वस्तु मिली है जो हड़प्पा-संस्कृति की नहीं है। यह ताँबे, काँसे या सॉकेट लगी हुई कुल्हाड़ी (केल्ट) थी जो भारत मे प्राप्त वस्तुओं में सिर्फ एक है। इसकी

---

१ लाल, फर्दर कॉपर होर्ड्स, प्लेट VI a, IX और X a
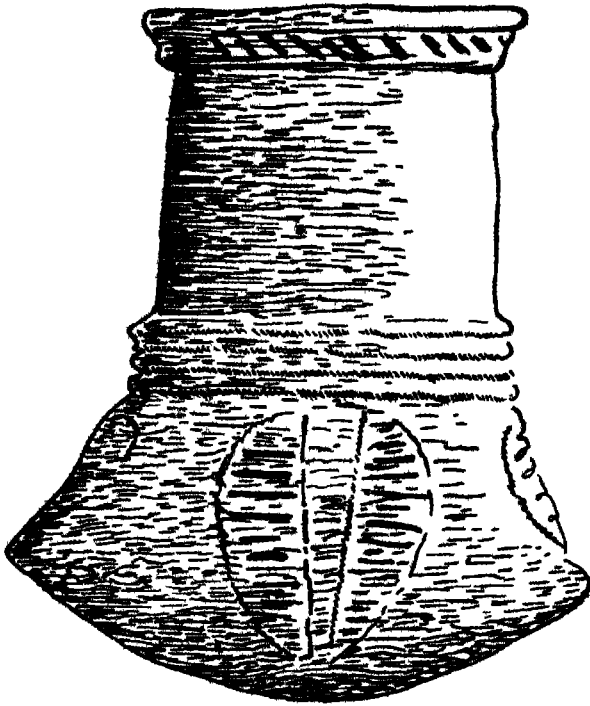
चित्र १८. कुरुक्षेत्र से प्राप्त साकेट लगा हुआ केल्ट

तरफ लोगों का ध्यान नहीं गया था, क्योंकि इस श्रेणी या इस काल की वस्तुओं का वर्णन करनेवाले किसी भी लेखन में इसका उल्लेख नहीं है। (चित्र १८) यद्यपि इस प्रसंग में अनेक खाइयाँ खोदी गईं, परंतु एक भी चीज के स्थान का जिक्र सामान्य रूप से भी नहीं किया गया।[1] अभी हाल मे इस महत्त्वपूर्ण स्थान से—जो दोहरे महत्त्व का विषय है यदि यह प्रसिद्ध महाभारत की लड़ाई की ओर संकेत करता है—रंगीन भूरे और गैरिक बर्तन प्राप्त हुए हैं, जिनका वर्णन नीचे किया गया है। वृत्ताकार साकेट लगे हुए केल्ट (कुल्हाड़ियाँ) चीन में शांगवंश के अंत में करीब ई० पू० १२००-११०० मे प्राप्त आयताकार सॉकिटो से बहुत कम मिलते-जुलते है। यह कहाँ से आया, यह एक पहेली है। यह प्राप्त वस्तुओ के विकसित रूप के जैसा लगता है और कोई भी इसके पौराणिक होने का संदेह कर सकता है। इसकी खोज की परिस्थिति से इसका काल काल्पनिक लगता है, लेकिन अधिकतम सीमा ई० पू० c ८५० और निम्नतम सीमा ई० पू० c ५५० का मान लेने से इसका निर्माण-काल निर्दिष्ट हो जाता है।

यद्यपि हड़प्पा-सस्कृति की समाप्ति का काल परीक्षण के तौर पर ई० पू० १५५० निश्चित किया गया है जिसका आक्रमण-काल के सामान्य समय के संबध में कुछ महत्त्व है, तो भी यह बहुत पृथक् हो जाता है और इससे ५५० वर्ष बाद के उत्तरी भारत-सबंधी कोई निश्चित संपर्क की जानकारी मे कोई मदद नही मिलती है। यहाँ पर हमारी सूचनाओ का स्रोत कुछ कम और कुछ अनिश्चित हो जाता है। पंजाब मे बहुत कम स्थानों की खोज हो पायी है। इसके दो कारण हो सकते हैं—ज्ञात ऐतिहासिक नगरो का अभाव और कुछ निश्चित स्थानो पर संकेंद्रण। प्राचीन साहित्य मे सिर्फ पश्चिमी पंजाब के साकल और तक्षशिला तथा उत्तर-पश्चिम सीमाप्रदेश के पुष्कलावती का वर्णन है। साकल का स्थान निश्चित नहीं हो पाया है और बाला हिसार के टीले और चरसड्डा में इसके आसपास के स्थानो और पुष्कलावती की खुदाई पूरे रूप मे नही हुई है, लेकिन तक्षशिलासर जॉन मार्शल का प्रिय स्थान था जहाँ उन्होंने बृहद् रूप से खुदाई की, भले ही वह वैज्ञानिक रूप से न हुई हो।

साकल इडो-यूनानी राजा मेनांडर की राजधानी था और यदि इसके स्थान का पता चल जाय तो इसकी खुदाई से बहुत अधिक लाभ होगा। इस काल के अनेक ग्रंथो में हम साकल (सियालकोट) का नाम पाते हैं, लेकिन इस विचित्र विकल्प

१. साहनी, डी० आर०, ऐनुअल रिपो० आर्कं० सर्वे ऑव इंडिया, १९२१-२२ प्लेट XL, a

को कैसे उचित सिद्ध किया जाय, यह अब तक स्पष्ट नहीं हुआ है। सर अलेक्जेंडर कनिंघम ने, जिसने प्राचीन चीनी तीर्थयात्रियों द्वारा ४०५ ई० से ६४५ ई० के बीच की गयी समस्त भारत की यात्राओं का बहुत सावधानी के साथ अनुगमन किया, जिसे प्राचीन स्थलों को खोजने का बहुत शौक था, संगाला पहाड़ी को ही साकल नगर का स्थान निश्चित किया था। यदि हम हुएनसाँग पर विश्वास करें जिसने ६०३ ई० में साकल की यात्रा की थी तो उसने सगालवाला टिबा को साकला का स्थान निश्चित किया था, जहाँ भग्नावशेष है, और उस तीर्थयात्री ने सेकिया का भी उल्लेख किया है, जो वर्त्तमान असारूर है, यद्यपि यह २½ मील नहीं, १९ मील है जैसा कि मार्ग-सूची में बतलाया गया है। तो भी वहाँ एक बहुत बड़े नगर के भग्नावशेष हैं और इसकी परिस्थिति हुएनसाँग द्वारा बतलाई गई क्रमिक अवस्थाओं से मिलती-जुलती है।

यह मानते हुए भी कि साकल रावी के पश्चिम है मजुमदार ने इसे सियालकोट के पास बतलाया है, क्योंकि एक ब्राह्मण ने कनिंघम से कहा था कि प्रारंभ मे सियालकोट को ही साकल कहा जाता था जो बाहीकप्रदेश की राजधानी था। उसने स्वेच्छा से सेकिया का स्थान भी सियालकोट से करीब दो मील उत्तर-पूर्व ही बतलाया है और इसके बावजूद कि इन स्थानो पर किसी तरह के भग्नावशेष नही हैं, और जहाँ तक सियालकोट के नाम का सबध है, इसका साकल से कोई सबध नही है। ये समानताएँ स्वीकृत लगती है जबकि सगाला साकल का विकृत नाम हो सकता है।[1] उसी तरह मोंटेगोमरी जिले मे गुगेरा के नजदीक के बड़ा अकबर टीले और जग जिले मे शोरकोट के टीलो की खुदाई की बात तो दूर, उनका निरीक्षण भी नही हुआ है।

उत्तरी भारत के लिए हमे रूपर, अहिच्छत्र और कौशाबी की खुदाई की ओर दृष्टिपात करना होगा और हमे पूर्णत: या अंशत: वे सभी सूचनाएँ मिल जाएँगी जिनकी हमे अपेक्षा है। यहाँ हम अपने तिथिक्रम को, प्रारभिक ऐतिहासिक काल के निश्चित बिन्दुओ और ई० पू० १५५० के आसपास के कार्यों से जोड़ सकते हैं, जिससे हम परीक्षण के तौर पर अपने तिथिक्रम का अदाज लगाने में समर्थ हो सकेंगे। ऊपर उल्लिखित खुदाइयो से तीन तरह के बर्त्तन मिले है जो स्तर-क्रम के लिहाज से बहुत महत्त्व के हैं और ई० पू० नवी शताब्दी की कमी को निश्चित रूप से पूर्ण करते है। ये प्रकार उत्तरी काले चमकदार बर्त्तनो के हैं जिन्हें बहुधा एन० बी० पी०, रगीन भूरे बर्त्तन और गैरिक बर्त्तन कहा जाता है। इन मृत्कलाओ का

१. कनिंघम, ए०, एंशियंट ज्यॉग्रफी ऑव इंडिया, एडिटेड, एस० एन० मजुमदार, १९२४, पृ० २०६, एंड नोट ६८६

काल विवादास्पद है और अभी कुछ समय तक रहेगा। चूँकि इन बर्त्तनों का काल अभी हाल में बतलाए गए एन० बी० पी० के काल पर निर्भर करता है; अतः यह बतलाना आवश्यक है कि इनका काल ई० पू० ४०० से ईस्वी सन् १०० तक है।

चित्रित भूरे बर्त्तन सर्वप्रथम उत्तरप्रदेश के बरेली जिले के अहिच्छत्र की खुदाई से प्राप्त हुए। इस स्थान पर नीचे के स्तर IX पर ई० पू० ३०० लिखा हुआ है जिससे यह समझा जाता है कि खुदाई करनेवाले का सही विश्वास था कि वह स्तर ई० पू० ३०० के करीब का है। लेकिन इसमें कुछ संदेह है कि इस तर्क-संगत कथन को बढ़ाकर स्तर IX के लिए ई० पू० ३०० के पहले के किसी अनिश्चित समय तक ले जाया जाय जिससे एक विशेष तर्क-पद्धति का समर्थन होता है। स्तर IX स्वयं असंतोषपूर्ण पुरातात्त्विक चीज है जहाँ प्राचीन ढंग से दो गढ़े खोदे गए हैं, जो कूड़े-खाने-से प्रतीत होते हैं। अहिच्छत्र मे, यदि यह पूर्ण निश्चित नही तो संभव जरूर लगता है कि एन० बी० पी० के लिए निर्धारित ऊपरी काल-सीमा ई० पू० ४०० के बाद तक भूरे रंगीन बर्त्तन प्रचलित रहे।[१]

अब प्रश्न उठता है कि रंगीन भूरे बर्त्तनो का स्वरूप क्या है। ये बर्त्तन मध्यम मिट्टी के बने हैं और सभी एक ही तरह के हल्के भूरे हैं, जिनपर भूरे रंग की भिन्न-भिन्न धारियाँ हैं। ये बर्त्तन बहुधा चक्के की तरह है और इनपर काले रंग मे सजावट की गई है। अहिच्छत्र और हस्तिनापुर दोनों जगह ऐसे बर्त्तन पाए गए हैं जो भूरे लाल रंग के है, जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उनका भूरा रंग सूखी हवा के कारण है। यद्यपि बड़ी तादाद मे बर्त्तनो के छोटे-छोटे टुकड़े पाए गए हैं, तो भी अखंडित बर्त्तन, जिससे घेरे से पेंदी तक की रूपरेखा अच्छी तरह से स्पष्ट हो जाय, बहुत कम है। रूपर में जहाँ ये पश्च-हड़प्पा-अधिकृति के ऊपर स्तरीकृत पाए गए हैं, करीब आधे दर्जन पूर्ण आकार के बर्त्तन हैं, जिनसे घड़े का पूर्ण आकार मालूम हो जाता है। इससे मालूम होता है कि अहिच्छत्र और हस्तिनापुर मे अभी तक ऊर्ध्वाकार किनारेवाले बहुत-से कटोरे और थोड़ी गोल पेंदीवाले और नीचे की ओर थोड़े झुके किनारेवाली तश्तरियाँ मिली हैं, जो पेंदी से ऊपर अंदर की ओर बहुधा थोड़ी झुकी हुई हैं। (प्लेट XXIX, अ और ब)

सजावट मे ऊर्ध्व रेखाएँ, सिग्माओं के समूह, एककेंद्रीय वृत्त, सर्पिल काँटे और बिन्दु और रेखिकाओं के व्यवधान भी सम्मिलित हैं। इन सजावटों का अधिक भाग बाह्य है, लेकिन खुली हुई चौड़ी पेंदीवाली प्यालियों में भीतरी चौड़ी सतह पर वृहद्

१. घोष एण्ड पाणिग्राही, द पॉटरी ऑव अहिच्छत्र, पृ० ३९ एंव ४५-६

अंजलि की सजावट है।[1] इन बर्तनों के, खासकर झुकी हुई प्यालियों के आकार अधिकतर एन० बी० पी के बर्तनों की तरह हैं और दोनो में चमकदार पॉलिश का ढंग करीब-करीब समान है। पूर्वी पजाब मे सतलज और ऊपरी यमुना के बीच का भाग भूरे रंगीन बर्तनवाले स्थानों से भरा पड़ा है और तिलपट से दक्षिण कुरुक्षेत्र का स्थान महाभारत से संबंधित परंपरागत बर्तनोंवाले स्थानो से पूर्ण है।

जैसा बताया जा चुका है, लाल ने राजपुर परशु और बिसौली दोनों जगहो की खुदाई से कुछ बर्तन प्रस्तुत किये हैं और दोनों स्थान ऐसी जगहों पर हैं जहाँ ताँबे का अधिक मात्रा मे सचय है। लाल के अनुसार ये बर्तन सेवड़े, मोटे, गैरिक और बर्तुल आकृति के हैं। ऐसे गैरिक बर्तन हस्तिनापुर के निम्न स्तरों मे भी पाये गये हैं जो राजपुर परशु के बहुत नजदीक है और बिसौली से करीब ५० मील की दूरी पर है। इस स्थान पर प्राप्त बर्तन भी इतने छोटे और टूटे-फूटे हैं कि बर्तनो के आकार के विषय मे कोई स्पष्ट धारणा बनाना असंभव हो गया है। इन बर्तनो का कोई स्पष्ट चिह्न नही मिलता है। ये सख्या मे बहुत कम हैं और इनका वर्णन भी अस्पष्ट है। इनके तत्त्वों और रंगो के बारे मे आसानी से नही जाना जा सकता, क्योंकि अपने नाम के अनुरूप ये पकाये जाने के बाद रँगे गए होगे।

अब हम गगा-यमुना के दोआब से हटकर अपने दूसरे उत्तरी ताम्र-क्षेत्र—बिहार मे राँची की अधित्यका—की ओर चलें। यहाँ केवल कुल्हाडियाँ और लम्बी टाँकियाँ मिली हैं और यद्यपि ये अकेली या कुछ समूह मे मिली हैं, पर और भी पश्चिम मे ताम्र-सचय मे प्राप्त हुई अन्य वस्तुओं मे कोई भी इस क्षेत्र मे व्यवहृत नही लगती। राँची-अधित्यका के उत्तर मे ताँबे की छह कुल्हाड़ियाँ और १७ लम्बी टाँकियाँ पायी गयी थी जो हामी गाँव के निकट एक छोटी नदी के किनारे गडी हुई थी। सगुना मे एक दूसरी कुल्हाडी भी मिली थी और ये दोनो स्थान पलामू जिले मे पडते हैं। अधित्यका के उत्तर-पश्चिम, बारागुंडा मे एक ताँबे की कुल्हाडी पायी गयी थी और मानभूम जिले मे पारसनाथ से पोखरिया और बराकर नदी के प्रदेशो मे मिली हुई २७ ताँबे की कुल्हाड़ियों का जिक्र आता है। अधित्यका के दक्षिण बरटोला, थाना बसिया मे २१ कुल्हाड़ियाँ और खूँटी के नजदीक दरगामा मे ५ कुल्हाड़ियाँ पायी गयी। खूँटी के ही नजदीक बिचना में एम० सी० राय ने अपने एक 'असुर' स्थान में साधारण ढंग की एक कुल्हाडी पायी थी। रायगढ़ में महानदी से

१. लाल, हस्तिनापुर, प्लेट XXV-XXX एंड LXXIII; स्मर, इंडियन आॅर्कियोलॉजी, अ रिव्यू, १९५३-५४, प्लेट IV b

बालपुर तक दो और कुल्हाड़ियाँ मिली थीं, लेकिन उनके विषय मे बहुत ही कम जानकारी है।

गुंगेरिया मे इसी तरह की कुल्हाड़ियाँ और लम्बी टाँकियाँ अधिक संख्या मे प्रकाश में आयी हैं। ३ फुट × ३ फुट × ४ फुट के आयताकार स्थान में एक ही साथ बंद की गयी ४२४ कुल्हाड़ियाँ और लम्बी टाकियाँ मिली थीं। इससे यह सूचित होता है कि निश्चित रूप से वे एक बक्स में बंद की गयी होंगी जो गल गया होगा। बहुत सावधानी से उन्हें हटाने पर जमीन पर लकड़ी का दाग मालूम हुआ होगा और छिपाये गये स्थान पर वह तुरंत स्पष्ट हो गया होगा। इन ताँबे के औजारों के साथ-साथ १०२ गोल चाँदी के टुकड़े थे जिनमे कुछ पर सींग के समान दो अनुबंध थे।[1] ये चाँदी के टुकड़े निलंबन या सयोजन के लिए कटे हुए नहीं हैं और यह संभव है कि वे प्राचीन सिक्को के कोई रूप हों। सीग और पशुओं से उनके सबध और पेकस, बैल, पेकुनिया और पैसो से उनके संबध का कोई वास्तविक प्रमाण नही है। यह विचारणीय विषय है कि यद्यपि गुंगेरिया मे मिली बहुत-सी कुल्हाड़ियाँ भोथरी और अपूर्ण है और उनसे यह जान पड़ता है कि वे व्यापारियो की पूँजी थी जो व्यापार के लिए एक बक्से मे बद की गयी थी। भोथरी कुल्हाड़ियों से, जो करीब-करीब काली है, यह संभव प्रतीत होता है, कि उस समय कुल्हाड़ियों के रूप मे द्रव्यो का प्रयोग होता होगा और इस बक्से की सभी वस्तुएँ वास्तव मे सिक्को के प्रतिरूप है। इनका वास्तविक उद्देश्य उपयोगिता, शोभा या मुद्रा के रूप मे, जो कुछ भी रहा हो, यह बहुत कीमती चीज रही होंगी और किसी बहुत बड़े खतरे के कारण ही इसके मालिक ने इसे इस तरह छुपाया होगा। (प्लेट XXVII, स)

वह स्थान जहाँ यह वस्तु पाई गई थी बहुत अर्थगर्भित है और पूरी तरह इसके गुण-दोष विवेचन के लिए हमे स्थलाकृति--क्रम और भारत के उस खास हिस्से मे सभव व्यापार-पथ पर विचार करना होगा (चित्र १९)। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इस प्रकार के ताम्र-औजार बिहार में विशिष्ट है और संभवतः वे बारागुंडा प्रदेश या ढालभूम-ताम्र-क्षेत्र के ताम्रकारों से यहाँ आये होंगे। किसी नजदीक के बाजार तक आने के लिए उन्हें कुछ प्रमुख कारवाँ-पथ से गुजरना पड़ा होगा और पहला कदम पश्चिम की तरफ रहा होगा। उसी वर्ष उन्हें अपनी हठधर्मिता के कारण किसी अच्छी संधि मे आबद्ध होना पड़ा होगा और सासाराम और आसनसोल के द्वारा बनारस का कलकत्ता से संबंध जुड़ा होगा। यह पथ प्रत्यक्ष

१. स्मिथ, द कॉपर एज, पृ० २३३, ff.
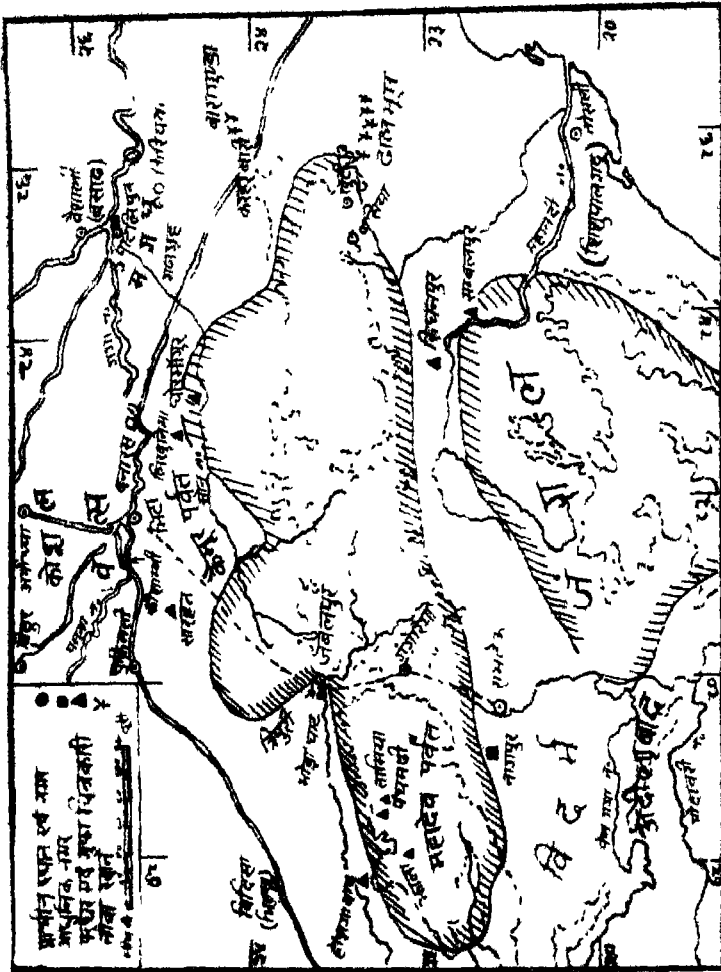
चित्र १९, उत्तर-पूर्वी भारत

रूप से एक ताम्र-क्षेत्र से गुजरता है जो बाराकर, पारसनाथ, बाकाबुडा और कच्छर-घाटी के नजदीक से होकर गुजरता है और ढालभूम-ताम्र-क्षेत्र में दूसरे रास्ते से भी आसानी से पहुँचा जा सकता है। इस पथ का राजगीर या गिरयक के अति प्राचीन अवस्थापन से होकर उत्तर की तरफ जाना कोई आवश्यक नहीं था।

गंगा और यमुना के संगम से सटे कौशाबी और भीटा की स्थिति व्यापार के लिए कोई बिंदु रही होगी जब इसका आरंभ मध्यदेश-मगध और दक्षिणापथ के आदिम, जाति-अवस्थापन के बीच हुआ होगा। इस स्थान से दक्षिण, बालाघाट जिले में मऊ से तीन मील उत्तर-पश्चिम, पहाड़ियों के बीच सैकडो मील के सामने गुंगेरिया ऐसा विलक्षण स्थान है जिससे होकर जबलपुर से गोंडिया तक वर्त्तमान लाइट रेलवे जाती है। त्रिपुरी से, जिसका वर्णन इस परिच्छेद के प्रारभ मे नर्मदा तक जलवाहित व्यापार के अतिम स्टेशन के रूप मे किया गया है, होते हुए भी संबंध रहा होगा। किस बात से अनुप्राणित होकर साहसी लेकिन भाग्यहीन व्यापारी इस रास्ते से पहाड़ियो और विन्ध्य के विशाल जगलो से होकर गये, इसका अनुमान लगाना बहुत कठिन है। नागपुर के निकट वैनगगा के किनारे रामटेक का प्राचीन स्थान इस पथ के दक्षिण की ओर बाहर जाने के मार्ग पर है और गुगेरिया से पूरब करीब ४० मील की दूरी पर मलंजखंडी का प्राचीन ताम्र-क्षेत्र है। शायद अतर-जनजाति युद्ध के कारण नर्मदा के मार्ग के बद हो जाने की वजह से या वैनगगा के नये बाजार का उपयोग करने के लिए कोई सौदागर गुगेरिया के मैदान से होकर दक्षिण की ओर गया होगा, जहाँ जगली डाकुओ के भय से या किसी दूसरी वजह से अपने बहुमूल्य बक्स को गाड दिया होगा।

इस क्षेत्र को छोडने के पहले हमे लबी टाँकी और बी० बी० लाल द्वारा बतलाए गए विचित्र औजारो की परिकल्पनाओ की जाँच करनी चाहिए। लबी टाँकी और चन्हुदडो मे प्राप्त हड़प्पा-संस्कृति के कुछ पतले लबे ताँबे के औजारो मे निःसदेह कुछ समानता पायी जाती है। लाल इस समानता को महत्त्व नहीं देते और बतलाते है कि ये लंबी टाँकियाँ दक्षिणी बिहार, पश्चिमी बंगाल और उत्तरी उडिसा की पहाडी भूमि मे पाए गए उसी तरह के प्रस्तर के औजारों से बनी है। वे एक प्रस्तर की टाँकी की, जिसकी निचली सतह चौडी है और ऊपरी सतह बसूले की तरह थोडी तिरछी हो गई है, गुगेरिया के ताँबे की लंबी टाँकी से तुलना कर, जिसकी बनावट ठीक उसी तरह की है, इस विचार का समर्थन करते हैं।[1] लेकिन प्रस्तर की टाँकी में अच्छी कारीगरी के सभी लक्षण मौजूद हैं और इसका स्वरूप एक धातु-शिल्प-

१. लाल, फर्दर कॉपर होर्ड्स, पृ० ३२ एंड प्लेट० XI

तथ्य के प्रस्तर-प्रारूप की तरह है और इसमे बहुत कम सदेह है कि वे ताँबे की टाँकियों से प्राप्त की गयी, ताँबे की टाँकियाँ उनसे नही। तो भी बसूले की तरह की लंबी टाँकी का उपयोग तुलना के तौर पर किया जाता है। अभी तक गुंगेरिया से प्राप्त लबी टाँकी-कुल्हाडी की तरह दोहरी कटाववाली है (चित्र १७, १२, और १३)। इस लबे औजार का अवश्य कोई विशिष्ट उद्देश्य रहा होगा जिसकी पूर्ति ई० पू० तृतीय सहस्राब्दी के उत्तरार्ध मे चन्हुदडो और नाल और सभवत: उस सामान्य क्षेत्र में दूसरी जगह हुई होगी। गुंगेरिया की लबी टाँकी १२ से २४ इंच तक लबी है, हामी की लबी टांकी १५ से २४ इंच और चहुदरो की लंबी टाँकी १० से १३ इं०। लाल द्वारा बतलाई गई समरूप प्रस्तर की टाँकी केवल ८½ इंच लबी है। सभवत: प्रस्तर प्रति की यह सबसे बडी लबाई है और इसलिए मूल औजार के समान नही है जिसके उद्देश्य संभवत लिवर-लाभ की सिद्धि के लिए लबाई आवश्यक थी।

उडीसा के निकटवर्ती प्रदेश मे, भूतपूर्व मयूरभंजराज्य के भाँगरा पीर नामक स्थान मे एक ताम्र-क्षेत्र पाया गया है जो गुलपा नदी के किनारे सतह से एक फुट नीचे है। इन वस्तुओ को दोहरी धारवाली कुल्हाडियो की श्रेणी मे रखा गया है लेकिन इस श्रेणीबद्धता के विषय मे प्रारभ मे ही प्रश्न उठते है। यद्यपि ये आकार मे कुल्हाडी की तरह है लेकिन बहुत ही पतली है और इनकी मोटाई १/२० से १/८ इंच तक है। यही कारण है कि सर ई० ए० गेट ने सुझाव दिया है कि ये समारोह-कुठार हो सकती है जिनका कोई वास्तविक उपयोग नही था। साथ ही, उन्होने यह वैकल्पिक विचार भी प्रस्तुत किया कि भूमि-दान के लिए प्रयुक्त ताम्रपत्रो की तरह भी ये हो सकती है। इस अतिम सुझाव का समर्थन राजा पुरुषोत्तम देव (१४६६-१४९६ ई०) के एक अनुदान के प्रकाशन से होता है जिसमे एक तख्ते पर स्कध-कुठार का चित्र अकित है।[1] इसलिए यह सभव लगता है कि भाँगरा पीर की वस्तुएँ भी कुल्हाडी के आकार की ही है और अधिक प्राचीन नही है। (चित्र १७. ११)

दो ताम्र-क्षेत्रो से प्राप्त वास्तविक तत्त्वो पर विचार करते हुए उन स्थानो का उल्लेख कर देना अधिक महत्त्वपूर्ण होगा जहाँ ताँबा खान से निकाला जाता था और प्राचीन भारत मे जहाँ ताँबे का काम होता था। यहाँ उत्तरी ताम्र-क्षेत्र दो भागो में बंट जाता है। यह सभव जान पडता है कि प्रमुख ताँबे की खान राजपूताना में थी जहाँ से गगा-यमुना के दोआब मे ताँबा भेजा जाता था। यहाँ पी० नियोगी और टी० एच० डी० लटाउशे ने नौ स्थानो का वर्णन किया है—दरिबो, इंदावाजा

---

१. गेट, ई० ए०, नोट ऑन ऐन इंसक्राइब्ड 'पेकल हेड' फ्रॉम उडीसा, जर्न० बिहार ऐंड उडीसा रिस० सोस०, वॉल IV, १९१८

भानगढ़, कुसलगढ़, बैघोर, प्रतापगढ़, तासिंग और अलवर में जयसिंघपुर। इनमें तीन प्राचीन नगर विराटनगर और जयपुर के सिंघना के पास हैं। वे हिमालय के गिरिपीठ मे भी खानों का वर्णन करते हैं—काँगड़ा के संगनम, कुलू के धारी, शिमला पहाड़ियों के निकट सोलोन के निकट की एक खान, धानपुर, धोबरी, अगोर सेरा और गढ़वाल में पोकरी और कुमाऊँ की कुछ अनिर्दिष्ट खानें। इन सभी क्षेत्रो का आसानी से यमुना के किनारे के नगर-क्षेत्रों के साथ ताँबे का व्यापार-संबध था और दक्षिणी पटियाला की पुरानी खानों, विशेषत: मोटाका के सबध में भी यही कहा जा सकता है।[१] इन स्थानों में प्राप्त ताँबा कुछ अधिक नही था तो भी कौशांबी के पश्चिम रहनेवाले लोगों की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए यह प्रचुर रहा होगा। यह सभव है कि हड़प्पावासियो द्वारा, जब वे पूर्व मे सतलज और सरस्वती से राजपुर तक फैल गये, इन ताम्र-क्षेत्रो मे कुछ का प्रयोग किया जाता हो और गगा-यमुना के दोआब मे आर्यों के आगमन के पश्चात् अनेक वर्षों तक खनन जारी रहा हो।

बिहार के ताम्र-सचय बारागु डा के स्थानाय उत्पाद थे और चक्रधरपुर और घाटशिला के बीच के ताम्र-क्षेत्रो के साथ ४८ अन्य स्थानो के ताम्र-क्षेत्रो और करहरवारी मे काम होते रहे। इस क्षेत्र मे ताँबा काफी तादाद मे मिलता है, यद्यपि ससार के बडे ताम्र-उत्पादक क्षेत्रो की तुलना मे यहाँ का संग्रह बहुत कम है। पर, अभी भी ताँबा खान से निकाला जा रहा है और अतीत मे जैसा कि हमने गु गेरिया-क्षेत्र मे देखा है, ताँबे के औजारो का निर्यात काफी दूर तक होता था। ऊपरी सोन के पास चेरका मे और गु गेरिया के पूरब मलजखडी में प्राचीनकाल की वस्तुएँ मिली हैं, परतु विशिष्ट प्रकार के औजार जो अधिक तादाद में हैं, वास्तव मे खान से निकाले गये हैं और बिहार में गढे गये है।

नर्मदा और महानदी के दक्षिण मे गु गेरिया-क्षेत्र को छोड़कर प्राचीनकाल के ताँबे और काँसे के संग्रह बहुत कम है यद्यपि और अधिक पुरातात्त्विक कार्य और खुदाई होने पर ऐसे अनेक संग्रह प्रकाश मे आएँगे। पर, यह स्मरण रखने की बात है कि इन नदियो के उत्तर के प्रदेशो मे सभी वस्तुएँ, जिनका अभी वर्णन हुआ है, कृषको द्वारा प्राप्त की गयी थीं और इस क्षेत्र मे उनकी प्रचुरता का सकेत मिलता है। दक्षिण मे गु गेरिया-ताम्र-क्षेत्र है जिसका निर्यात बाद मे समाप्त हो

१. नियोगी, पी०, कॉपर इन् एंसिएंट इंडिया, स्पेशल पब० इंडियन ऐसो० फॉर कल्टिवेशन ऑब साइंस, १९१८; लटाउरो, टी० एस० डी०, एनोटेटेड इंडेक्स ऑब मिनरल्स ऑब एकनोमिक वैल्यू इन् बिबलियोग्राफी ऑब इंडियन जियोलॉजी
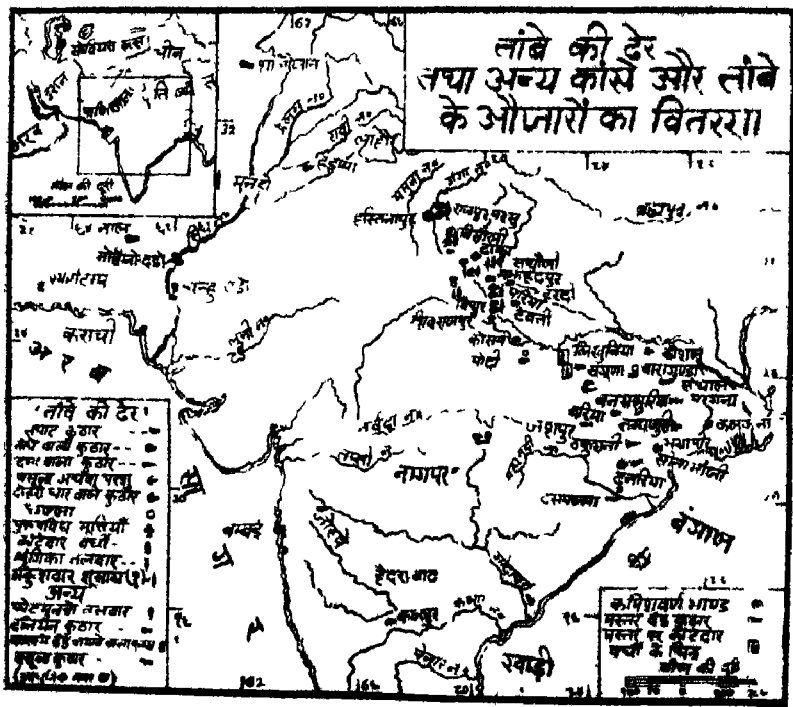
चित्र २०

गया। फिर जबलपुर से प्राप्त कुल्हाड़ियाँ हैं जिनका विश्लेषण करने पर पाया गया कि इनमें १३·३% टीन है परंतु जो बाद में समाप्त हो गया। यह एक पृथक् संचय है जो गुंगेरिया के रास्ते में है, परंतु वास्तव मे वह नर्मदा नदी के उत्तरी तट पर है। इसके अलावा हैदराबादराज्य के कल्लूर स्थान मे प्राप्त तलवारें और कुल्हाड़ियाँ, जोरवे से प्राप्त कुल्हाड़ियो और ब्रह्मगिरि से प्राप्त एक कुल्हाड़ी-शीर्ष का टुकड़ा भी है (चित्र २०)।

ताँबे की तीन तलवारों की खोज प्रस्तर-कर्मकों द्वारा की गयी जो पर्वतीय खंड से प्रस्तर निकाल रहे थे और जिसके नीचे ये हथियार छिपे हुए थे। इससे रायचूर जिले के कल्लूर स्थान में खुदाई की गयी जिसमें कुछ ताँबे के टुकड़े, जिनमें दो कुल्हाड़ियो के टुकड़े हो सकते हैं और एक ताम्र-पाइराइट का टुकड़ा निकाला गया। ये एंटेन-पद्धति की कुल्हाड़ियाँ हैं और यद्यपि फतहगढ़ की तलवारों के सदृश नही हैं तो भी उनसे सबधित अवश्य हैं। ये सपूर्ण स्थानीय सस्कृति से विभिन्न हैं और इनका निर्यात अवश्य उत्तर से हुआ होगा। ये बिठूर के छूरे से बहुत मिलती-जुलती है और ये भी वैसी ही गोल मध्यशिरेवाली और भोथरी है। वे अच्छी तरह काम करनेवाले हथियार हैं जो क्रमशः ३९,३० और ३६ इंच तक लबी हैं।[1]

यद्यपि दक्षिण मे ताम्र-उद्योग का बहुत कम प्रमाण मिलता है तो भी छोटे-छोटे ताँबे के अनेक काम होते थे। पर, उनकी तिथि अनिर्धारित है। लटाउशे ने मलंज-खंडी के साथ वेनगगा के समीप थानबासा, हैदराबाद के रायचूर जिले में ताथनी और मचनूर, आंध्रराज्य मे कृष्णा और पेनार के बीच के गुंतापालेम और गनिपेंटा, बेलारी जिले मे कुरनुल और हरपानाहाली में गुमान कोंडा, उत्तरी मैसूर में बेलीगुडा और कोयंबटूर जिले में हाड़ाबनाट्टा (अडापुलनाटा) का उल्लेख किया है। ब्रूस फूट ने भी निम्न कृष्णा के दक्षिण से उत्तर की ओर प्राचीन ताम्र-उद्योगों का अवशेष पाया है, यद्यपि इनकी तिथि अनिर्धारित है। नियोगी ने हेन का उद्धरण दिया है जिसने १७९७ और १८०० ई० के बीच नेलोर जिले तथा कालास्त्री (कालाहस्ती) और वेंकटी चेरी (वेंकटगिरि) जिलो और अग्निकोंडला में अनेक ताम्र-क्षेत्रों की खोज की थी जिससे लगता था कि इन खानों मे प्राचीन जमाने में काम होता था। इनकी ठीक तिथि का पता नहीं है और अभी तक दक्षिणी भारत की संस्कृति से इनका संबंध जोड़ने में बहुत ही कम सफलता मिली है।

१. ऐनुअल रिप० आर्क० डिप० ऑव एच० ई० एच० द निजाम्स डोमिनियंस, १९३७-४०, प्लेट Vi गाईक, ए० वी०, ए नोट ऑन द कॉपर स्वोर्ड्स फ्रॉम कल्लूर, बुल० डेक्कन कालेज रिस० इंस्ट० IV, १९४३

प्राचीनकाल मे इन क्षेत्रों में ताँबे का सत्यापित उपयोग इतना कम था कि इनका व्यवहार व्यापार की वस्तुओ के रूप मे होता था, कारवाँ-व्यापारियों, फेरीवालों और ठठेरों द्वारा गधे पर लादकर इनका निर्यात होता था। नीलगिरि और अदिच-नाल्लूर के कब्रिस्तान में पाये गये उच्च श्रेणी के टीन और काँसे के घड़े दक्षिणभारत-क्षेत्र के ताँबे से ही बने होंगे; लेकिन इनका समय ई० पू० ३०० से पहले नहीं हो सकता।

यह सभव है कि भारत के अजायबघरो मे प्राचीनकाल की ताँबे की वस्तुओ की पूरी छानबीन न हुई हो। हाल मे काठियावाड मे राजकोट के वाटसन अजायब-घर से दो बहुत ही दिलचस्प ताँबे की चौडी कुल्हाडियाँ देखने को मिली है। उनके उद्गम-स्थान का कोई लिखित प्रमाण नही है और वे असामान्य विशेषताओ से युक्त है। दोनो पर मोर की नक्काशियाँ हैं और दोनो के कुंदे थोड़े अवतल हैं। इन कुल्हाडियो का उद्गम-स्थान हड़प्पा मे बतलाया गया है, जो संभव है, पर पूर्णत. प्रमाणित नही है। इनकी लबाई की अपेक्षा चौडाई अधिक है और इनमे विशिष्ट प्रकार का अवतल कुंदा है जिससे ये हड़प्पा-सस्कृति की तरह प्रतीत नही होती है और इसलिए इनके सबध मे सावधानी बरतने की आवश्यकता है।[१]

इन ताम्र-औजारो और हथियारो का सबध किसी विशेष लोगो या काल से जोडने के प्रयास से पूर्व हमे इनकी विशेषताओ की जाँच करना आवश्यक है और देखना है कि इनसे हमे कोई सकेत मिलता है या नही। इन कुल्हाडियो के सबध मे एक चीज स्पष्ट है। इनका आकार जो भी हो, जिसका वर्णन इस परिच्छेद मे किया गया है, कुरुक्षेत्र से प्राप्त सॉकेटलगे केल्ट को छोडकर सभी कुल्हाडियाँ साधारण रूप से चौडी हैं। इनमे बहुत थोडा फर्क है। बिहार-गुंगेरिएन के उदाहरणो मे देखा गया है कि किनारे की तरफ ये कुल्हाडियो बहुत तिरछी हैं। तो भी सामान्य किनारेवाली कुल्हाडियाँ जो धार की तरफ तिरछी नही है, बल्कि जो सीधी या अर्द्धवृत्ताकार है और दूसरी, जो कुंदे की तरफ शुंडाकार हैं और जिनकी धार बहुत तिरछी है दोनो स्थानो मे मिलती है। अनेक कुल्हाडियाँ बहुत बड़ी है, जो लबाई मे सात से दस इंच तक हैं और ये औजार या हथियार के रूप मे बहुत ही प्रभाव-पूर्ण होगी। ये कुल्हाडियाँ आकार मे इतनी साधारण है कि इनकी तिथि या प्राप्ति-स्थान के सबध मे बहुत कम अनुमान लगाया जा सकता है, सिवा इसके कि ये

---

१. दीक्षित, एम० जी०, न्यू एविडेंस ऑव द हड़प्पा कल्चर इन सौराष्ट्र, पृ० २३-५ एव प्लेट VIII बी०, वल्लभ विद्यानगर रिस० बुल० वॉल० I, १९५७

हड़प्पा-संस्कृति की चौड़ी कुल्हाड़ियों से ही प्राप्त की गयी हैं। जहाँ तक पश्चिमी एशिया का संबंध है, ई० पू० २,५०० तक दंडाकार छिद्रवाली कुल्हाड़ियाँ चारों ओर प्रचलित थीं और सामान्य प्रयोग में या तो अच्छी तरह बनी कुल्हाड़ियों या अपरिष्कृत रूप से गढ़ी हुई कुल्हाड़ियाँ ही आती थी। इनका आकार इतना अस्पष्ट है कि ये हड़प्पा-संस्कृति के बाद की हैं, इसके सिवा इनसे कुछ भी जाना नहीं जा सकता है।

अन्य वस्तुओं के साथ स्थिति इससे विपरीत है। वे बहुत ही विशिष्ट और आसामान्य हैं और जहाँ भी कही समानताएँ पायी जाती हैं वे न तो बहुत नजदीकी हैं न तर्कपूर्ण रूप से सबंधित ही। वे काल और स्थान दोनों दृष्टियों से बहुत ही अलग हैं। काँटेदार बछियाँ बहुत ही मारक हथियार हैं और यदि उस तरह की चीजें वर्त्तमान थी तो उन्हे खोजने मे किसी भी तरह की कठिनाई नहीं होनी चाहिए। ट्रासकाकेशिया, टुलिश और लुरिस्तान से समानता प्रस्तुत करने का प्रयास अप्रत्यायक सिद्ध हुआ है क्योंकि उन स्थानो से प्राप्त काँटेदार साधारण तीर-शीर्ष सामान्य रूप से पूरी दुनिया मे पाये जाते है और भारतीय काँटेदार बछियाँ निश्चित रूप से उस तरह की नही है। मानपुर से प्राप्त छुरा सामान्य रूप से बाद मे विदेशो से प्राप्त मध्यशिरे की तरह के छूरे और मोहेंजोदडो से प्राप्त छूरे की ही तरह है और दूरस्थ रूप मे वे संबधित भी हो सकते है, परतु एंटेन-पद्धति की तलवारें और छूरे इस तरह के है कि उस तरह की चीजें दूसरी जगह नहीं मिलती, यद्यपि उनका तैथिक महत्त्व बहुत अधिक है जिसपर बाद मे विचार किया जाएगा। पुरुष-विध अस्त्र बहुत ही असामान्य हैं और उस तरह का दृष्टांत दूसरी जगह नहीं मिलता है। दूसरी तरफ भाले के फल जिनकी एकमात्र विशेषता यह है कि उनके मूल मे अंकुश लगे हैं अपने उद्‌गम-स्थान के संबध मे कोई जानकारी देने मे मदद नहीं करते।

इन ताम्र-औजारो और हथियारो के काल और उनके प्राप्ति-स्थान-संबंधी बातों की जानकारी की संभावनाएँ बहुत कम हैं और सक्षेप में उनका वर्णन निम्नलिखित रूप मे किया जा सकता हैं। विकल्प यही हो सकता है कि या तो वे हड़प्पावासियों द्वारा प्रस्तुत की गयी थीं, या आदिमजातियों का उनपर प्रभाव पड़ा, या वे वैदिक आर्यों की हैं या वे पश्च-वैदिककाल की हैं। इन्हें सन्निकट तिथि मे रखने के लिए हमें उन विशिष्ट स्थानों को ध्यान में रखना होगा जहाँ ये विभिन्न वस्तुएँ पायी गयी थीं। इससे तीन वैकल्पिक काल की संभावना है—ई० पू० २,०००-१,५००, ई० पू० १,३००-८०० और ई० पू० ८०० के बाद। इनमें से पहले काल को छोड़ा जा सकता

है, क्योंकि वह अधिक असंभाव्य है। यदि इनमे से कोई भी ताम्र-औजार और हथियार, जिसका हम वर्णन कर रहे हैं, हडप्पावासियो द्वारा बनाया गया था, तब ऐसा क्यों है कि इस क्षेत्र मे हडप्पा-संस्कृति का कोई भी अन्य अवशेष नही दिखलाई पड़ा है। ये औजार, यहाँ तक कि साधारण चौड़ी कुल्हाडियाँ भी, हड़प्पावासियों के प्रभाव से आदिमजातियों द्वारा प्रस्तुत किये गये, नितान्त असभावित है। उन्होंने बिना इस प्रकार के किसी प्रभाव के सहज रूप से इन विचारो की कल्पना की, यह भी असगत है। यह विचारणीय है कि इन कुल्हाडियो का प्रयोग उस समय से हुआ होगा जब लोग अन्न उत्पन्न करने लगे होगे और जगल काटने के लिए इन कुल्हाडियो की आवश्यकता प्रतीत हुई होगी। इसमे सदेह नही किया जा सकता कि पंजाब की आदिमजातियाँ, जो लकडी काटने और लकडी का कोयला जलाने का काम करती है, कुल्हाडियो का प्रयोग करती होंगी। और, वे हडप्पावासियो की ही तरह रही होगी और उन्होने उन्ही लोगो से इसे प्राप्त किया होगा।

यह बात पजाब के साथ नही है, जहाँ हडप्पा-सस्कृति-क्षेत्रो से ऐसी कुल्हाडियाँ, जिनका हम वर्णन कर रहे है, नही पायी गयी हैं, लेकिन गगा-यमुना के दोआब के साथ, ऐसी बात है जहाँ रूपर और कोटला निहांग के आस-पास हडप्पा-अवस्थापन से सबध रहा होगा। और, इसमे सदेह है कि इनका प्रभाव जगलो पर, जो अब उत्तरप्रदेश है, पडा या नही। यदि हम जानते कि किसने इन चमकीली प्रस्तर कुल्हाडियो का प्रयोग किया और कब किया, तब हम कही ताम्र-औजारो के विषय मे अपनी कोई निश्चित राय दे पाते। निश्चयरूप मे उनका अस्तित्व साथ-साथ रहा होगा और अगर हम यह सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि वे प्राचीन आक्रामक आर्यलोग थे जो चमकीली प्रस्तर-कुल्हाडियो को साथ लाये, तो यह हास्यास्पद बात होगी। इस प्रकार की बात असभव नही। हिसार III के लोग प्राचीन आर्यों से सबधित थे और उनकी संस्कृति भी समान थी, जिनसे बहुत अधिक परिमाण मे प्रस्तर की कुल्हाडियाँ मिली थी और नाल, राणा गु डाई, ओरगी और शादीपुर मे पायी गयी कुल्हाडियाँ उन आक्रामक आर्यों की हो सकती हैं और उनके पुरातात्त्विक प्रसग की कोई भी बात इस विचार का खडन नही कर सकती।

इन कुल्हाडियों के अलावा, जो लंबी टाँकी के साथ हड़प्पा-धातु के काम की परंपरा का सातत्य प्रदर्शित करती है, दूसरे औजारो और हथियारों की बनावट हडप्पा-सस्कृति से पूर्णतया भिन्न है और जैसा कि उन स्थानो से, जहाँ से ये पायी गयी हैं, उस संस्कृति से या आर्यों से हमे ताँबे की जानकारी होती है। अतः इस दूसरी बात की ओर हमें ध्यान देना पडेगा। अगर ये ई० पू० १,०००-८०० के

प्राचीन आर्यों के हथियार हैं, जिस समय उनका फैलाव संभवत: गंगा-यमुना के दोआब तक बतलाया जा सकता है, तो वे मानपुर छुरे के अलावा, उस समय पश्चिमी एशिया और ईरान मे किसी अन्य विशिष्ट औजारो में प्रचलित नहीं हुए और इनके उठे मध्य सिरे को छोड़कर, दूसरी किसी विशेषता के आधार पर ऐसी बातें नहीं कही जा सकती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि काँटेदार बर्छी का प्रयोग उन विशिष्ट स्थानो में होता होगा, जहाँ से वे प्राप्त हुई हैं। विशेषत: जहाँ काँटेदार बर्छी का प्रश्न है वहाँ ताँबे या काँसे के बहुत ही महत्त्वपूर्ण टुकड़ों का प्रयोग हुआ है। इस परिच्छेद के प्रारंभ मे वर्णित हर्निमन अजायबघर का दृष्टांत धातुकर्म का अनूठा दृष्टांत है जिसे उत्तरप्रदेश मे ई० पू० द्वितीय सहस्राब्दी का मानने मे कठिनाई प्रतीत होती है। अभी आईबेरियन काँटेदार बर्छी से बहुत ही अधिक समानता पायी गयी है जिसका सिरा ठीक ऐसा ही है परंतु यह लोहे का बना है, इसका एक ही जोड़ा काँटेदार है और एक टुकड़े में धातु का कुंदा है।

भालाग्र अपने आकार के कारण महत्त्वपूर्ण है जो दो फुट लंबे हैं और इनके स्पर्श-बिंदु पर एक विशिष्ट प्रक्षेप लगा हुआ है। इसके प्रतिरूप के बारे मे कोई भी बात कहना कठिन है; लेकिन इसका एक भाग उस संस्कृति का है जिसने ये तलवारें और काँटेदार बर्छियाँ प्रस्तुत की और कुछ कारणों से दंडाकार छिद्रवाली कुल्हाड़ी का बहिष्कार किया। एंटेन-तलवारें बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं और पुन: इनसे निकटतम सामीप्य के लिए प्राचीन विश्व की ओर जाना बेकार है। ये तलवारें चीन में ई० पू० पाँचवीं सदी या ई० पू० ७०० के पहले बनी ज्ञात नहीं होतीं; क्योंकि भारत मे प्राप्त तलवारें इस आधार पर तर्कसंगत नहीं प्रतीत होती हैं बल्कि अभी तक का जो निर्णय है उससे इन बातो के समर्थन मे वास्तविक प्रमाण कम हैं। इसी तरह, जैसी प्राचीन चीन की काँसे की तलवारें हैं,[१] भारतीय तलवारें अपनी मूँठ के साथ एक ही पूर्ण टुकड़े की बनी हैं। इसलिए ये स्प्रोकहॉफ और दूसरे जर्मन-लेखको द्वारा बतलाये गये 'फॉल्ग्रिफ्फसवेर्त्तें' की श्रेणी में हैं और ऐसी तलवारों की उल्लिखित तिथि के पूर्व भारत में पहुँचना असंभाव्य प्रतीत होता है। यह ध्यान देने की बात है कि ये तलवारें पदसंबंधी समारोहिक प्रयोग के अलावा केवल योद्धाओं द्वारा धारण की जाती थीं। यह ऐसा हथियार है जिसका प्रयोग इस तरह के कार्य को छोड़कर पूर्णतया बेकार है। धनुष और तीर तथा भालों का प्रयोग शिकार में

१. जेन्स, ओ०, नोट सुर क्वेलकुएस एपीस एनसीनेस ड्राउवीस एन चाईन, बुल० म्युजियम ऑर इस्टर्न एंटिक्विटीज नं० २, १९३०

होता था और कुल्हाडियो और छूरियो का अनेक घरेलू उपयोग था, लेकिन तलवार का प्रयोग लडाई के सिवा अन्य जगह नही होता था। प्राचीन आर्य यद्यपि योद्धा थे, परंतु वे भारत में तलवार साथ मे नही लाये थे और अभी हमें स्वीकार करना पडेगा कि इसका थोडा भी संकेत नही मिलता कि ये तलवारें यहाँ किस तरह बनी। (प्लेट XXVII ब)

पुरातात्त्विक सदर्भ मे सिर्फ उन वस्तुओ, तलवारो, भालाग्रो और काँटेदार बर्छियो को प्राप्त करने पर ही उनका काल निर्धारित किया जा सकता है जिससे उनका काल जानने मे हम समर्थ हो सकते है। पजाब के अधिकाश भाग के शून्य खड के कारण ई० पू० १,४०० और ५०० के बीच इस महत्त्वपूर्ण भूभाग में किसी तरह के लोगो और सस्कृति के फैलाव को जानना असभव हो गया है। यहाँ आर्यों द्वारा विस्तृत भूमि की अधिकृति और पूरब की तरफ गगा-घाटी की ओर उनका फैलाव केवल आख्यानमात्र और अवास्तविक ही रहा है। केवल एक ही ऐसा दृष्टात है जिसमे पश्च-हडप्पाकाल की ताम्र-कुल्हाडियो का सबध निश्चित और प्रत्यक्ष रूप से मृत्तिका उद्योग से जोडा गया है। जोरवे से प्राप्त छह कुल्हाडियाँ ऊपरी गोदावरी के विशिष्ट चमकीले बर्त्तनो के समान है और यदि यहाँ प्रस्तावित काल स्वीकार कर लिया जाय तो ये अपरिष्कृत ताँबे की चौडी कुल्हाडियाँ ई० पू० ७५०-५०० की बतलायी जा सकती है जो हस्तिनापुर और ब्रह्मगिरि से प्राप्त ताम्र-वस्तुओ से पूर्णत. जुड जाती है, जिनका काल भी इसी अवधि के अंतर्गत है।

यद्यपि अनुमान से इन ताम्र-वस्तुओ मे कुछ का संबध गैरिक बर्त्तनो से जोडा जा सकता है, परतु वास्तव मे इनमे से कोई भी खुदाई मे उनके साथ नही निकली है। कुछ अपरिमित ताँबे के टुकडे जिसमे हथौड़े से बनाया गया वृत्ताकार छड़ का एक अपरिष्कृत तीराग्र भी सम्मिलित है, हस्तिनापुर के भूरे बर्त्तनो के स्तर मे पाये गये, लेकिन रूपर के उसी तरह के स्तर मे कोई भी हथियार, औजार या ताँबे का टुकडा अभी तक प्राप्त नही हुआ है। अब प्रश्न है कि इन महत्त्वपूर्ण भूरे बर्त्तनों का काल क्या है। ये चमकीले बर्त्तन है और इसके बनाने की विधि स्पष्टत: उत्तरी काले चमकीले बर्त्तनो के समान है, इसलिए अगर एन० बी० पी० की ऊपरी काल-सीमा ई० पू० ४०० मान ले तो लाल द्वारा बतलाए गये हस्तिनापुर के चमकीले भूरे बर्त्तनो के प्रारंभ की अवधि ई० पू० १,१०० के बहुत पहले हो जाती है। तो भी लाल इन चमकीले भूरे बर्त्तनो का सबध वैदिक आर्यों से जोड़ते हैं और दावा करते हैं कि उन्होंने स्टेन द्वारा सिस्तान में सगृहीत बर्त्तनों में इन ठीकरों को पहचाना था। ऐसा हो सकता है और यह बतलाया गया है कि इस बर्त्तन

का एक ठीकरा हड़प्पा के अजायबघर में वर्त्तमान है लेकिन झोब के चमकीले भूरे बर्त्तन, जो पंजाब के पश्चिम के हैं और जिनका वर्णन ठीक इसी तरह का है, वह मैट का बर्त्तन है जिसका आकार पूर्णत: भिन्न है और बहावलपुर में घागर-घाटी के पश्चिम कितनी दूर तक इन चमकीले भूरे बर्त्तनों का फैलाव बतलाया जा सकता है, यह देखना बाकी है।

इस दावे के समर्थन में कि इन चित्रित भूरे बर्त्तनो के निर्माता वैदिक आर्य थे, लाल जोर देते है कि हड़प्पावासियो द्वारा अपना नगर छोडने और रावी के लोगो द्वारा इसपर कब्जा करने के बीच मे एक लबे अन्तराल के प्रमाण हैं। जैसा हमने प्रारंभ के परिच्छेदों मे देखा है, यह केवल प्रमाणों की गलत ढंग से व्याख्या नही है बल्कि रूपर और बारा के सदर्भ में रावीवासियो से संबधित एक मृत्कला है जो बाद की हड़प्पा-अधिकृति और चमकीले भूरे बर्त्तनों के आगमन के बीच अतरा-क्षिप्त थी। इसलिए यह सभव जान पडता है कि इन अनिश्चतताओ के बावजूद ताँबे की अधिक वस्तुएँ ऊपर बतलाए गए समय की है जो ई० पू० ८०० है। हस्तिनापुर और निकटवर्त्ती स्थानो के चमकीले भूरे बर्त्तनो का काल ईस्वी सन् ६५० के बाद है और अधिक आधुनिक ढग की तलवारो और काँटेदार बर्छियो का काल ई० पू० ७०० के पहले नही हो सकता, बाद मे भले ही हो। तो भी यह संपूर्ण काल सूक्ष्म पुरातात्त्विक ज्ञान की व्याख्या की अपेक्षा परिकल्पनाओ के लिए अधिक खुला हुआ है। इन चमकीले भूरे बर्त्तनो के उच्च की अपेक्षा निम्नकाल-निर्धारण के समर्थन मे एक बात पीठ पर पॉलिश किए हुए उत्तरी बर्त्तनो का आरभ-काल ई० पू० ४०० होना भी है, जिसे अगले परिच्छेद के क्रम में प्रमाणित किया जाएगा।

परिच्छेद ८

इतिहास का द्वार और लोहे का आगमन

ई० पू० प्रथम सहस्राब्दी के मध्य मे आने पर हम उस युग मे पहुँचते हैं जो सपूर्ण प्राचीन विश्व मे ऐतिहासिक काल माना जाता है। इसी समय साइरस ने बेबिलोन को जीता और सामत-राज्य ने चाऊ-राजवंश का अत किया; एथेन्स मे सोलन 'आर्कन' था तथा सर्वियस तुलियस रोम का राजा था। उसी समय भारत मे दो धार्मिक व्यक्ति महावीर जैन और सिद्धार्थ गौतम बुद्ध का प्रादुर्भाव हुआ था। इस समय के विषयवस्तु तक पहुँचने का हमारा मार्ग कल्पनात्मक कम और ऐतिहासिक अधिक होना चाहिए, काल के सबध मे अधिक यथार्थता और सामान्य मतैक्य होना चाहिए, लेकिन ऐसी बात नही है। महाभारत मे वर्णित अधिकतर आख्यान कौरवों और पाडवों के बीच लडाई तथा पुराणो पर आधारित कहानी-शृंखला, ईस्वी सन् तृतीय सदी तक सकलित पुरावृत्त से हमे सहायता मिलनी चाहिए। परतु वाद-विवाद को और अधिक तीव्र करने के सिवा उनसे कुछ फायदा नही होता है।

यदि विचार किया जाय कि पुराण मे वर्णित कोशल-राजवश के अतर्गत मनु से लेकर रामायण के राम तक तिरसठ राजा हो चुके थे, और मनु से बृहद्बल तक, जो महाभारत की लडाई मे मारा गया, ९१ राजा हो चुके थे और बुद्ध के समय तक २२ राजा और हो चुके थे, तो यह बिल्कुल स्पष्ट है कि इसे तथा ऐसी अन्य वंशावलियो को अक्षरश· सत्य मानकर इनका संबध पुरातात्त्विक खोजों से प्राप्त तथ्यों के साथ जोडने का प्रयास कल्पनात्मक और निरर्थक बकवास ही हो सकता है। दूसरी ओर, इससे अधिक निराशा होगी यदि हम शिशुनाग और नंद-राजाओ की संभावनाओ, शक्तिमती के यादवो और वास्तव मे प्रारंभिक बौद्धिक काल के सोलह महाजनपद को न माने। इस अतिम परिच्छेद मे जो कहना बाकी है वह किसी को भी विश्वास दिला देगा कि हमे अभी काफी रास्ता तय करना है।

दुनिया के किसी भी देश मे आर्थिक महत्त्व की सबसे बड़ी घटना लोहे का आगमन और विशेषत: इसके खनन और प्रद्रावण की विधि की जानकारी है। इस-लिए यह महत्त्वपूर्ण बात होगी यदि हम निश्चित करें कि भारत मे यह घटना कब

घटी। अतीत में शोध-कार्य संस्कृत के अनेक शब्दों के अर्थ जानने के लिए, उनके संदर्भ के आधार प्रयत्न तक सीमित रहा है। ये प्रयत्न पूर्णरूप से आत्मगत रहे हैं और जिनका द्वार किसी भी तरह की व्याख्या के लिए खुला हुआ है। यह साबित करने के लिए कि अयस् का अर्थ लोहा होता है—बहुत बातें लिखी गयी हैं। वैदिक-काल के साहित्य में इस सदर्भ मे बहुत कम सदेह हो सकता है और इस काल से संबंधित पुरातात्त्विक खोजो में कुछ भी सदेह नही है कि अयस् का अर्थ तॉबा होता था। यजुर्वेद मे वर्णित श्याम अयस् का अर्थ संभवः कांसा होता था परंतु लोहम् (लोहितम्) अयस् का अर्थ पूर्णरूपेण लोहा होता है और ये बातें बाद मे मालूम हुई है। जैसा कि सभी प्राप्य प्रमाणो से ज्ञात होता है आर्यों के पास तॉबे और प्रस्तरों के हथियार थे। इससे यह निष्कर्ष निकाला गया है कि उन्होने बिहार के आदिम-असुर लोहारों से, जो लोहे गलाने का काम करते थे, लडाई की होगी और यह कला उन्ही लोगों से सीखी होगी। इस विचित्र बात के समर्थन में कुछ भी नहीं मिलता है और इन असुर-स्थानो और लोहारो के विषय मे इसी परिच्छेद में बाद मे बतलाया जाएगा।

सक्षेप में यह भी बताना उचित होगा कि प्राचीन काल मे ई० पू० द्वितीय सहस्राब्दी मे लोगो को लोहे का कितना ज्ञान था। तृतीय सहस्राब्दी की समाप्ति के पहले एशिया माइनर के लोग लोहा गलाना जानते थे; लेकिन-इसका पूर्णरूपेण निर्यात नहीं होता था और लोहा गलाने की विधि को बहुत समय तक गुप्त रखा गया। जबतक लोहे का सामान्य स्रोत दैवयोग से किसी की प्राप्ति के रूप में रहा, यह धातु बहुत ही विरल और बहुमूल्य रही और यह किसी भी तरह तॉबे और कांसे से प्रतियोगिता नही कर सकती थी। ई० पू० १,४०० के करीब लोहा गलाने और मोड़ने के ज्ञान में बहुत वृद्धि हुई; लेकिन बाद के २०० वर्षों तक हिट्टाइट लोगों ने इस विधि को गुप्त रखा जिससे कि लोहा कांसे का पूर्णरूपेण प्रतिद्वंदी नहीं बन सका और ई० पू० १,२०० के बाद ही जब हिट्टाइट-राज समाप्त हो गया, हम लोह-कार्य को संपूर्ण पश्चिमी एशिया, काकेशश और पूर्वी और मध्ययूरोप मे फैलते पाते हैं तो भी द्वितीय सहस्राब्दी के बाद से ईरान के पठार मे इस बात की जाँच करते हैं तो पाते हैं कि लोहा सामान्य नही था।

ई० पू० १,१०० तक ईरान के पठार में कांसे पर लोहे का अतिक्रमण हो गया था और लुरिस्तान की कब्र मे और सियाल्क के नेक्रोपोल 'बी' मे यह दिखलाई पड़ता है। लेकिन इस बात के बावजूद कि सियाल्क VI के लोग, संगठित समुदाय के लोग थे, आलीशान दुर्ग बनाने में समर्थ थे और भारत की निकटवर्ती सीमा के लोगों

की तरह सुसंस्कृत थे, उनकी कब्रों में लोहे के हथियारो की अपेक्षा काँसे के हथियार अधिक सख्या मे मिलते हैं।[1] १२वी और ९वी सदी के बीच में काँसे का स्थान लोहे ने ले लिया और लोहा इतनी प्रचुर मात्रा मे बढा कि सपूर्ण पूर्वी यूरोप और पश्चिमी एशिया मे पूर्ण रूप से लौहयुग आ गया। ताँबा और काँसा अधिक दिनों तक आर्थिक साध्य नही रहा और लोहे ने इनका स्थान ले लिया। लोहे की वस्तुएँ अधिक तादाद मे और सस्ते रूप में बनने लगी और जो लोग अबतक प्रस्तर के हथियारों से सतुष्ट थे उनके लिए लोहे के हथियार रखना सभव हो गया।

अब प्रश्न है कि धातु-कर्म की प्रगति की यह पृष्ठभूमि किस तरह भारत मे लोहे के आगमन को प्रभावित करती है। इसके द्वारा इस बात का निराकरण होता है कि लोहा १८०० ई० पू० और १४०० ई० पू० के बीच के आक्रमणों मे शामिल होनेवाले लोगो की सामग्री का अग बनकर आया। ई० पू० १,१०० के बाद तक भी उस भूभाग मे जहाँ से आर्यों के क्रमिक आक्रमण होते रहे, यह सामान्य नहीं था और ऋग्वैदिक आर्यों के पजाब, सिंध और मध्यदेश में अपने प्रस्तर, ताँबे और काँसे के हथियारो के साथ पूर्ण रूप मे बस जाने के सौ वर्ष पहले तक, उन्हे लोहे के अस्तित्व का पूर्णरूपेण ज्ञान नही था। यह तस्वीर कि आर्यलोग अपने विरोधियो के ऊपर अपने श्रेष्ठ लोहे के हथियारो के कारण ही विजयी हुए, ७०० ई० पू० तक सभी कालो की दृष्टि से, सर्वथा कल्पनाजनित है। प्राप्त प्रमाणो के आधार पर यह नही कहा जा सकता कि ऐसा कुछ भी हुआ होगा।

इस पूर्वकालिक लोहे की सभावनावाले स्थलो की काफी खुदाई हुई है, किंतु ऐसी बात भी तो रहती। अब तक बात बिल्कुल स्पष्ट है। और यदि हम उन सग्रहो की तरफ देखते हैं जो ई० पू० ४०० के पहले के है तो यह प्रतीत होता है कि उस समय की सस्कृति के अधिकतर स्थानो मे लोहा वर्त्तमान नही था और लोग ताँबे और प्रस्तरो का प्रयोग करते थे। तब भी हम यह कहने का लोभ नही छोडते है कि इस काल के पहले भी लोहे का अस्तित्व रहा होगा। लेकिन सभी मे जग लग गया था और यह सभव जान पडता है यदि कुछ प्रारभ के लेखको पर विश्वास किया जाय कि अभी तक के प्राप्त प्रमाणो के काल के पहले भी भारत मे लोहे का अस्तित्व था।

ई० पू० ४८३ मे गौतम बुद्ध की मृत्यु के करीब हेरोडोटस और कटेसियस का जन्म हो गया था जो प्रथम लेखक है जिन्होने भारत मे लोहे का अविवाद्य वर्णन किया है। हेरोडोटस द्वारा वर्णित लोहे के तीर जो एक्सरसस की सेना के भारतीय

---

१. वर्धमैन, फाउलिस ड़ी सियाल्क, वॉल० II

सैनिकों के हाथ में थे, ये किसी भी जगह से प्रस्तुत किए जा सकते थे, परंतु संभवतः भारत मे ही बने होंगे। दूसरी ओर, कटेसियन आर्टाक्जेर्क्सस नेमन को उपहार में दी गई दो भारतीय इस्पात की बनी तलवारो के प्रकर्ष का वर्णन करता है जिससे लगता है कि अच्छे लोहे और इस्पात की ख्याति, जो पश्चिम के साथ चेराज (शिराज) के लोहे और इस्पात के व्यापार के लिए महत्त्वपूर्ण था, पूर्णरूपेण हो चुकी थी। इस तरह जबतक कि यह दिखलाया नही जाय कि एक्सरसस के भारतीय सैनिकों के लोहे के तीर-शीर्ष, उन्हे किसी विदेशी भूभाग मे मिले या जब कटेसियस भारतीय इस्पात की तलवारो का जिक्र करता है उस समय उन्हे नही मालूम था कि वह क्या बोल रहा है, तबतक अभी तक की खुदाई से प्राप्त निषेधात्मक प्रमाण के बावजूद यह मानना होगा कि ई० पू० ४५० तक भारत के सभी सभ्य नगर-केन्द्रों मे लोहे का प्रयोग होता था।

वास्तव मे धातुओ का लोप होता रहता है और ये ही बातें ताँबे और काँसे के साथ भी लागू हैं। प्राचीन काल मे भी धातुओ के टुकड़ो के व्यापारियों का अस्तित्व था। नई धातुओ को गलाने की अपेक्षा व्यर्थ वस्तुओ का व्यापार करना अधिक आसान है और लोहार लोग हमेशा धातुओं के टुकडो को जमा करते थे और अपनी भट्ठी में गलाते थे। वास्तव मे लोहारों के ये सचय धातु-सबधी जानकारी के महत्त्व-पूण स्रोत हैं और इसके बिना और कब्रो मे धातुओ के सग्रहो के बिना हमे अतीत के धातु-कार्यों के विषय मे बहुत ही कम जानकारी हो पाती। इस तरह यह सभव प्रतीत होता है कि इस काल मे लोहा यद्यपि काफी तादाद मे नही हो सकता है। फिर भी ई० पू० ४५० तक भारत मे लोगो को इसकी जानकारी थी। केवल इतना ही नही, सिंधु नदी के पूर्व एक लोहे की वस्तु मिली है जिसका काल इसके भी पूर्व हो सकता है और यह अनुमान करीब-करीब ठीक है।

दूसरी ओर, भारत की सीमा-रेखा तक लोहा उनलोगो द्वारा लाया गया जो अपने मृतको को सगोरे मे दफनाते थे। वे घोडे पर चढ़ते थे और एक विशिष्ट सजावटवाले तथा विचित्र आकारवाले बर्त्तनो का प्रयोग करते थे। अभी तक उस समय के दो बर्त्तन वर्त्तमान है जो निश्चित रूप से संबंद्ध है, परतु इन्हे बनानेवाले वही लोग है, इसे अभी न तो स्वीकार किया जा सकता है और न अस्वीकार ही किया जा सकता है। जो लोग अपने मृतको को संगोरे में दफनाते थे उन्हे उनके कब्रगाहों से, जो रुदबर से दक्षिण दक्षिण-पूर्व ईरान में किरमान से ५० मील उत्तर चाहूदरात मे, पूर्व में पर्सियन और बलूच मकरान मे कुल्ली टीले तक और उत्तर मे मध्य झालाबान में माशकाई घाटी तक है, इंगित कर सकते हैं। (चित्र २१) इस लंबे प्रत्याख्यान के साथ ही स्टेन मे चौबीस संगोरे शवाधान के स्थानों का वर्णन

चित्र २१ संगोरा-शवाधान तथा लोडो-स्थानों का वितरण

किया है और इन शवाधानों से संबंधित बर्त्तन संपूर्ण खोजदार और बाथ में पाए जाते हैं। ये बर्त्तन झालावान और सारावान की समस्त मध्य घाटी में भी पाए जाते हैं। स्टेन ने डांबा कोह, गाटी, जिवानरी और जांगियन के संगोरे में लोहा पाया था और जांगियन में पाई गई लोहे की तलवारें बतलाती हैं कि ये कब बाद के हैं, जिनमे ये तलवार पाई गई थीं, और वह ई० पू० ७५० की पहले के नही हो सकती।[1]

सगोरे-शवाधानवाले बर्त्तन अपरिष्कृत ढग के है। वे अधिकतर सीधे-सादे है और जहाँ ये चित्रित किए गए है वहाँ लगातार शखाकार या सर्पिल धारियाँ खींची गई हैं। ये बर्त्तन इस सस्कृति के लिए अनोखे हैं। पर्सियन मकरान में फनुच से लेकर झोब मे मोगल गुंडाई तक के स्थानों मे एक होठवाली बोतल मिली है जिसमे डोरी लगाने के लिए 'लग' लगा हुआ है। अब यह मानने के लिए सभी तर्क वर्त्तमान हैं कि उनलोगो, जो सगोरे-शवाधान के बर्त्तनो का प्रयोग करते थे और लोडो के बर्त्तन बनानेवालो, के बीच अवश्य ही कुछ संबध रहा होगा। शामी डब, परोम से लेकर कुलो कलात, छापार तक छत्तीस स्थानो मे कुछ बर्त्तन मिले हैं जिन्हे मिस डी कार्डी ने लोडो कहा है।[2] पुरातात्त्विक सदर्भ बतलाता है कि इस क्षेत्र में बने और प्रयोग किए गए बर्त्तनो मे यह सबसे बाद के बर्त्तन हैं। यह लाल रग के बर्त्तन हैं जिनपर लाल रग की पतली धारियाँ है और इसकी विशिष्ट काले रग की सजावट के कारण इसे लोंडो-बर्त्तन कहा गया है और इसे पतले और सूक्ष्म कड़ी मिट्टी से मृदु किया गया है। प्राप्त टुकडों की जाँच से यह कहा जा सकता है कि भले ही ये बाद की वस्तु हो, ये हाथ की बनी हुई हो सकती हैं क्योंकि इनपर कोई भी घुमाव या दूसरी तरह का चक्राकार चिह्न दृष्टिगोचर नहीं होता है। तब भी यह सभव है कि दक्षिणी लाल और काले रग के बर्त्तनों की तरह, चक्के के घुमाव का चिह्न मिट गया होगा (चित्र २२; ९-११ और १८)।

बर्त्तनो पर शखाकार सजावट असामान्य है और बाद की हो सकती है। चिया कबुद और बाघी लिमु के ठीकरो पर स्टेन ने इसी तरह का सर्पिल चिह्न पाये थे। ये दोनों स्थान पच्छिमी ईरान में, टेप गियान के आसपास हैं और चीगा कबुद से पाये गये बर्त्तनो के टुकड़े, लौहयुगवाले स्थान से प्राप्त हुए है, जहाँ एक ही तरह के दो लोहे के हँसिये भी प्राप्त हुए हैं जो सियाल्क VI के कब्रिस्तान

---

१. स्टेन, ऑर्क्योलॉजिकल रेक० इन एन० डब्लू० इंडिया, एन० एस० ई० ईरान

२. डी कार्डी, अन्यू प्रीहिस्टोरिक वेअर फ्रॉम बलूचिस्तान

चित्र २२. त्रिह्नो लौंडो और संबद्ध बर्त्तन

और नेक्रोपोल 'बी' से पाये गये हँसिये के सदृश्य है।[1] यह हँसिया पीछे की ओर विशेष तरह से मुड़ा हुआ है जो ई० पू० १,२००-९०० के ईरान के हँसिये के समान है। यहाँ सर्पिल पद्धति फिर पर्सियन ब्लूचर के हाजार मारदी में पायी जाती है। फनुच, डंबा कोह, जिवांटी और कासानो डंब मे इसी तरह की सजावट बर्त्तनों मे पायी जाती है और बलूच मकरान के निहिंग-घाटी तक के सभी स्थानों मे इसी तरह के सगोरा-शवाधान पाये गये हैं। (चित्र २२ : १२-१६)

यद्यपि इस तरह की सर्पिल सजावट और शवाधान-सगोरे उत्तर-पूर्व में भी बहुत दूर तक पाये जाते हैं, वे अभी तक निहिंग-घाटी के पूरब नही पाये गये हैं, जंगियन में भी ये नहीं पाये गये हैं यद्यपि यह स्थान सभी तरह से जिवांटी और डंबा कोह के सदृश ही है। यद्यपि ये तत्त्व अब नही मिलते हैं, तो भी झाउ के स्पेट डब, फिरोज खाँ डब, माशाकाई के कबर डंब और खारान के झायक में सर्पिल पद्धति के बर्त्तन दिखलाई पडते हैं। इस अंतिम स्थान के शवाधान संगोरा-पद्धति की ही तरह के हैं और कुछ फुट की दूरी पर प्रस्तरो का वृत्ताकार घेरा है; लेकिन इनमे कही भी सर्पिल सजावट नही पायी गयी है। इनमें बहुत कम संदेह है कि अगर लोंडो-बर्त्तनवाले लोग सगोरा-शवाधानवाले लोगों के सदृश्य नही थे, तो सम-कालीन अवश्य होगे। लोंडोलोगों के सर्पिल बर्त्तन स्पष्टत शंखाकार संगोरा-शवाधान के बर्त्तनों के ही कुछ बढे-चढ़े रूप हैं। इसके अतिरिक्त, असामान्य सर्पिल सजावट को छोडकर, दोनो तरह के लोग घोडे पर चढते थे। जंगियन के दो सगोरों में घोडे की खोपडियाँ पायी गयी है और लोंडोलोगो के घोडो के चिह्न शामी डंब गुशानाक (एक घोडसवार के साथ), बघवाना के बिट डंब, हादी और स्वयं लोंडो मे दृष्टिगोचर होते है।

क्वेटा से तीस मील दक्षिण मसतंग और झोब के लोरालाई के बीच मे प्राप्त कुछ संगोरों का वर्णन मिलता है। क्वेटा से दस मील दक्षिण फेयरसर्विस ने एक सगोरे की खुदाई की थी, लेकिन यह ४० गज लबा और २० गज चौड़ा है। ये संगोरे एक क्रम-जैसा प्रतीत होते है और इससे उसे अनेक काँसे और लोहे के तीन-कोरवाले तीर-शीर्ष प्राप्त हुए थे। इस महत्त्वपूर्ण स्थान की पूरी बातें अभिलिखित नही हैं। उसे मिरी या खास क्वेटा की आयुधशाला मे लोंडो-बर्त्तनों के ठीकरे प्राप्त हुए थे। लोरालाई के २७ मील पूरब और लोरालाई-डेरा गाजी खाँ

---

१. स्टीन, ओल्ड रूट्स इन वेस्टर्न ईरान, प्लेट V, १३, १७ एवं १८; गॉर्डन, द पॉटरी इ डस्ट्रीज ऑव द इंडो-ईरानियन बॉर्डर, फिग० ६, न० ७, ८ एव १४

की मुख्य सड़क के ठीक उत्तर कुछ संगोरे हैं जिनमे विशिष्ट तरह के बर्त्तन हैं। स्टीन के पास, जिसने दुर्भाग्य से इनका वर्णन किया, अच्छी तरह से इनकी जाँच करने का समय नहीं था, लेकिन सैंडमैन किले के ९ मील दक्षिण-पश्चिम, मोगल गुंडाई मे उसने अनेक सगोरो को खोला और जो वस्तुएँ उसे मिली है, वे वर्त्तमान पुरातत्त्ववेत्ताओ के लिए एक कठिन तैथिक समस्या उत्पन्न कर देती हैं।

यह स्पष्ट रूप से मस्तिष्क मे रखते हुए भी कि किरमान से लेकर मुगल गुंडाई तक फैले हुए क्षेत्रो के सगोरा-शवाधान के बर्त्तन एक ही जैसे है, विशेषत. पेंदेदार होंटवाली बोतल एक ही सदृश हैं और उनलोगो का सांस्कृतिक स्तर जो अपने मृतको को सगोरे मे दफनाते थे, एक ही जैसा है जो घुड़सवारी, लोहे के प्रयोग और हाथ मे बने बर्त्तनो मे दिखलाई पड़ता है। यह मानना पड़ता है कि मुगल गुंडाई-सगोरे से प्राप्त सभवत बाद की किसी वस्तु से पूरी सगोरा-शवाधान-शृंखला की बात तो दूर, इस विशेष समूह के बारे मे भी कोई अधिभावी निर्णय नही दिया जा सकता है। यह निराली वस्तु एक बर्त्तन है जिसपर मबतकारी सजावट है, दुर्भाग्यवश जिसका कोई स्पष्ट नमूना वर्त्तमान नही है। इसके अतिरिक्त, मबतकारी सजावटवाला बर्त्तन बाद का हो सकता है और यह हर हालत मे सगोरा-शवाधान या आसपास के स्थानो से प्राप्त बर्त्तनो से भिन्न है।

इन शवाधानो मे स्टीन द्वारा प्राप्त बर्त्तन शिल्पविशिष्ट सगोरा-शवाधान-शैली का है जिसमे एक पेंदादार बोतल भी शामिल है और यह दक्षिण-पश्चिम मे ६०० मील दूर फारस और बलूच मकरान की सीमा पर पाया गया लगता है। तीर-शीर्ष जिसमे तीन कोरवाला दृष्टात समिलित है, अनेक कब्रो मे पाए गए थे, लेकिन तिथि की दृष्टि से इनका महत्त्व नही है; क्योकि काफी लबे अरसे तक इनका प्रचलन रहा। तीन पैरवाले कांसे के घड़े की तुलना सियाल्क VI के उसी तरह के घडो से की जा सकती है। वास्तव मे इन सगोरो और लोडो-बर्त्तनो की धातुओ और सियाल्क VI के बर्त्तनो के रूप-साम्य का वर्णन पीगॉट, डी कार्डी और गॉर्डन ने किया था। प्राप्त की गयी वस्तुओ मे एक कांसे की तिरछी अँगूठी थी जिसपर एक आदमी का चित्र खुदा हुआ था जो सर पर पगड़ी या टोप पहने था, हाथ मे तीर और भाला लिये हुए था और उसके सामने एक औरत खड़ी थी। यह अँगूठी बहुत पहले की नही हो सकती है। यह ई० पू० ६५० से ४५० के बीच की हो सकती है जो इन क्षेत्रो के अधिकतर सगोरो का काल है।

एक छोटे समजनीय कगन की एक प्रकृष्ट खोज हुई है जिसका अंतिम छोर शुंडाकार है और कगन की गोलाई के चारो ओर घुमा हुआ है जिससे कि कगन

स्वेच्छापूर्वक फिसल सके और आवश्यकतानुसार इसके आकार को बदला जा सके ।[1] ऐसे कंगन चारों तरफ प्रचलित हैं और ये किश, गियान, कारा कुजक को कारचेमिश के पास है, कोमाता और काकेशश, ला तेन आदि अन्य जगहों में प्राप्त हुए हैं। किश के कब्रिस्तान-अ से ला तेन तक के काल की अवधि बहुत अधिक है और ला तेन से मुगल गुंडाई तक का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है; लेकिन अधिकतर कंगन ई० पू० द्वितीय सहस्राब्दी के बीच के प्रतीत होते है और इनका लगाव काकेशस, पूर्वी सीरिया और ईरान से रहा होगा जहाँ उस समय धातु के कार्यों मे बहुत अधिक सास्कृतिक एकरूपता थी। पश्चिमी परिधि मे वर्णित ला तेन के वितरण का काल भी कुशानकाल को ठीक तरह से प्रमाणित नहीं करता, क्योंकि ये विवरण पहले के है।

जबकि भारत और पाकिस्तान मे प्रारंभिक ऐतिहासिक काल के बर्त्तनो में सगोरा-शवाधान के बर्त्तनो या लोडो के बर्त्तनों की तरह की कोई चीज कही भी नही पाई गई है, बलूच-वजीर-क्षेत्र मे आज भी सगोरा-शवाधान वर्त्तमान है। इसलिए यह अनुमान निकाला गया है कि मुगल गुडाई की कुछ कब्रें उनलोगो की हो सकती है जो बौद्धकाल मे अपने अवशेषो को निकटवर्ती स्थानो मे छोड गए थे। दश्त नदी के किनारे इनलोगो के पहुँचने का काल ई० पू० ९०० मानना ठीक नही लगता है, लेकिन उन्होने अपना क्षेत्र अधिक समय तक अधिकृत रखा, जिसमें डबा कोह के पास की एक छोटी-सी जगह मे मोटे तौर पर २,००० सगोरे वर्त्तमान थे। वे धीरे-धीरे फैलने लगे और ई० पू० ९५० तक जोब मे पहुँच गए जहाँ वे करीब-करीब ई० पू० ४५० तक रहे।

उनके बहुत ही रोचक अवशेष वर्त्तमान थे और कुछ हद तक अभी भी राजपुताना के कुछ हिस्सो मे मिलते हैं यद्यपि अभिलेखो से मालूम होता है कि इनमे से बहुतो का लोप हो गया है। १८७१-७३ ई० मे कार्लाइल ने अपने भ्रमण के सिलसिले मे अकस्मात एक खोज की जिससे इन हिस्सो मे लोहे और सगोरा-शवाधानो मे एक सबध जुट जाता है। वे कहते है कि—"बिसालपुर के निकट एक पहाडी के ढलान पर कुछ पुराने संगोरों के कुछ बिखरे प्रस्तरों के बीच मुझे एक प्राचीन तीर-शीर्ष मिला।" इस खोज का वर्णन जे० एंडरसन ने भारतीय अजायबघर के पुरातात्त्विक संग्रहों की सूची में लोहे के टुकडों के रूप में किया है। फतहपुर सिकरी के बीस मील के अंदर कार्लाइल ने खेरा, देवसा और सतमस में अनेक

---

१. स्टीन, ऑर्क० टूअर इन् वजीरिस्तान एंड नार्थ बलूचिस्तान, पृ० ४६-४९, प्लेट X, XII एव फिग० ११

शवाधान-संगोरों को देखा और अनेक संगोरों को खोला भी। वहाँ ऊँचे गोल शवाधान-संगोरे थे जो प्रस्तरों में खुदे नाद से आच्छादित थे। वहाँ आयताकार चौकूटे संगोरे भी थे जो किसी समय नाद की तरह के शवाधानवाले ही रहे होंगे। सभी आयताकार संगोरो और कुछ शवाधानो में दाह-सस्कार की वस्तुएँ थी।[1]

खेरा के संगोरे लुप्त हो गए-से प्रतीत होते है क्योकि ह्वीलर की १९४७ ई० की रिपोर्ट से मालूम होता है कि हाल की जाँच-पडताल से वहाँ कुछ भी प्राप्त नही हुआ था। यह प्रतिकूल जान पडता है कि इन शवाधानों और महापाषाणिक सरचनाओं के चिह्नों को, जिनका वर्णन इसी परिच्छेद मे किया गया है, प्रस्तर-भवन और सडक बनानेवाली धातु के परिश्रमी संग्राहको द्वारा लोप कर दिया गया हो। बैराट मे दो बडे गोलाश्म और एक छोटी परत के नीचे, अशोक के एक प्रस्तर-लेख के ठीक सामने, कार्लाइल ने एक ही कतार मे रखे तथा एक ही सतह में मिट्टी के चार घडो को देखा था, जिनका वर्णन ऐसे कलश के रूप मे किया गया है जिसमें मनुष्य की हड्डियाँ रखी जाती थी।[2] बैराट से सात मील दूर ककेरा मे पुराने जमाने का एक बडा टीला है और उसके ठीक उत्तर-पूर्व मे देवसा के एक ऐसे ही टीले मे कार्लाइल ने प्राकृतिक मिट्टी के ११ फुट नीचे तक खुदाई की और चार भिन्न-भिन्न स्तरो को पहचाना जिनमे तीसरे स्तर के ऊपर उसने 'ढक्कन के साथ मिट्टी के गोल-गोल घडो को पाया जिनमे हड्डियाँ रखी हुई थी।'[3] जबतक कि भरतपुर और अलवर के सामान्य क्षेत्रों की पूर्णरूपेण गवेषणा नही होती और इनके अवशेषो का पूर्णरूपेण निरीक्षण नही होता, ये महत्त्वपूर्ण सगोरे महापाषाण और अधिकृति-स्थल भारत मे लोहे या महापाषाण के आगमन की समस्याओ को सुलझाने मे बहुत कम मदद करेंगे।

यहाँ पर लोगो को सिर्फ यही विश्वास नही है कि भारत में लोहे का प्रयोग बहुत प्राचीन जमाने से होता था, बल्कि एक समय यह दावा किया जाता था कि प्राचीन भारत मे लोहा एक विशेष विधि से तैयार किया जाता था जो इसे जंग लगने से रोकता था। इस विधि के बारे मे हमे जानकारी नही है, लेकिन इसके अस्तित्व का ज्ञान दिल्ली की कुतुब-मस्जिद के अहाते में खड़े मशहूर लौह-स्तंभ-जैसे स्मारकों से जो सभी मौसम के लिए अरक्षित है, प्राप्त हो सकता है। दिल्ली के उक्त मशहूर लौह-स्तंभ को इस स्थान पर मथुरा के निकट के इसके वास्तविक स्थान से हटाकर

१. कार्लाइल, रिपोर्ट ऑव अ टूअर इन ई० राजपुताना, पृ० १३-१५, ३३-३९
२. कार्लाइल, वही, पृ० १००
३. कार्लाइल, वही, पृ० १०२

मध्यकाल में लाया गया था। एस० सी० ब्रिटन ने बहुत सावधानी से इस दावे का निरीक्षण किया और १९३४ ई० में 'नेचर' में इसके परिणाम को प्रकाशित किया जिसमें हैडफिल्ड के प्रयोग भी सम्मिलित हैं।[1] ईस्वी सन् ४१५ के करीब प्रथम कुमारगुप्त के लिए एक लौह-स्तंभ बनाया गया था जिसे हैडफिल्ड ने बतलाया है कि यह गोल-गोल लोहों को जोडकर बनाया गया है जो विश्लेषण करने पर बहुत ही विशुद्ध सिद्ध हुए हैं। दृष्टांत के रूप मे एक को प्रयोगशाला के वातावरण में चार दिनों तक छोड़ दिया गया। उसमे कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ, बल्कि ज्योंही इसे पानी में भिगोया गया, एक ही रात में उसमें जंग लग गया। दिल्ली के स्तभ की सतह को ताँबे से रंगा गया है और ब्रिटन बतलाता है कि ऐसा लोहे की शुद्धता की अपेक्षा वातावरण और ऋतु की परिशुद्धता बनाए रखने के लिए किया गया है। काँसे की तरह की काई वास्तव में जंग है और यह लौहिक हाइड्रोक्साइड की सुगठित सतह है और यह बहुत ही धीमी अभिक्रिया थी जिसने इसे पूर्णरूपेण जंग की सतह बना दिया, जो हाइड्रोस्कोपिक लवण से रहित है। इसलिए जंग गर्म ऋतु मे धातु को गीला नही बनाता है बल्कि उसका परिरक्षण करता है।

एक मशहूर मूषा इस्पात भी प्राप्त है जिसे तेलगू मे वोत्ज कहा जाता है। यह अच्छी तरह कहा जा सकता है कि मिट्टी मूषा में सगलन-पद्धति से इस्पात बनाने की विधि का मूल स्थान भारत ही था। अवश्य ही कोई प्रकृष्ट गुण वर्तमान होगा जिससे चेराज का इस्पात इतना अधिक लोकप्रिय बन सका और कटेसियन द्वारा वर्णित तलवारो मे अगर कोई खास बात नही रहती तो वह हमारा ध्यान आकर्षित नही कर पाता और न प्रशसा का पात्र ही बनता। अभी तक यह बतलाना सभव नही हो सका है कि दक्षिणभारत से खोदकर निकाली गई लौह-वस्तुएँ मूषा-इस्पात की थी, लेकिन यदि हम उस काल को मस्तिष्क मे रखते हैं जब कटेसियन ने आर्टाक्जेक्र्जस नेमन के दरबार में इन तलवारों को देखा था, तब यह सभव प्रतीत होता है कि भारतीय लुहारो ने वोत्ज-विधि का आविष्कार ई० पू० ५वी सदी के प्रारंभ में ही कर लिया था। स्थान-स्थान पर इस विधि मे कुछ अतर दिखलाई पड़ता है, लेकिन फॉरबेस और हंट ने ऊरे और दूसरे प्राचीन लेखकों का हवाला देते हुए जो वर्णन किया है, उससे लगता है अग्रलिखित विधि ही सामान्य रूप से व्यवहार मे लाई जाती होगी। ऊष्मसह मिट्टी के मूषों में लोहे की छोटी-छोटी कतरनें कसकर

१. ब्रिटन, एस० सी०, इंडियन आयरन, नेचर, वॉल्यू १३४, १९३४ ई०, पृ० २३८-४० एवं २७८

भर दी जाती थीं। कार्बुरीकर तत्त्व के रूप में इसमे झुलसे चावल की भूसी, एक्लेपियस जिगांटिया की पत्ती, या कन्भलभुलस लाउरीफोलिया और कासिया आउरीकुलाता की लकड़ी मिलाई जाती थी। मूषो को हवाबंद रखा जाता था और लकड़ी के कोयले की आग में गर्म किया जाता था और निरतर धोकनी के प्रयोग से चौबीस घंटों तक ऊँचे तापक्रम मे रखा जाता था। इस अवधि की समाप्ति के पश्चात् मूषा टूट जाता था और १½ पौड के करीब का एक इस्पात का टुकडा बाहर निकल आता था। इन्हे आघातवर्ध्य बनाने के लिए पुन. मिट्टी से ढंका जाता था और १२ से १६ घटो तक मृदुकृत किया जाता था।'

यह ज्ञात नही है कि ये कटेसियन तलवारे भारत के किस हिस्से की बनी थी और यह सभव है कि वे उत्तर की हो। उत्तरी क्षेत्रो मे प्राचीनकाल मे इतना कम लोहा पाया जाता था कि ऊपर लिखी बातो के बावजूद यह निश्चित करना कठिन है कि किस तरह और किस काल मे इस धातु का आगमन हुआ। जब खनिज-लोहे के तत्त्वो और इससे धातु निकालने की विधि का ज्ञान हो गया, तब हथियार और औजार के योग्य आसानी से उत्पन्न लोहे का तात्कालिक आगमन हो गया और विस्तृत कच्ची धातु के उद्गम-स्थलो का ज्ञान प्राप्त हो गया। ताम्रकारो द्वारा सचित ज्ञान का प्रयोग इस नई धातु के लिए किया गया होगा और लोहे की जिन वस्तुओ का अभी अस्तित्व है उनकी प्रामाणिकता को सिद्ध करने के लिए अधिक लबे काल को मानने की आवश्यकता नही पडनी चाहिए।

लोहे के आगमन की रीति और काल-सबंधी अनेक प्रमाणो की जाँच के पश्चात् हमे अपने बर्त्तनो की पद्धति और दूसरे पुरातात्त्विक मिश्रित तत्त्वों को वास्तविक ऐतिहासिक लोगो और घटनाओ से सबंध स्थापित करने की समस्याओ की जाँच का प्रयास करना चाहिए। इस समय अगर हम केवल शिशुनागवश और नन्दवंश का ही वास्तविक रूप से निरीक्षण करते हैं और सच्ची सास्कृतिक और राजनीतिक वातावरण मे बिबिसार-जैसे चरित्रो को महत्ता प्रदान करते है तो जो चीजें अर्थहीन लगती हैं वे बहुत ही अर्थपूर्ण बन जायेगी। यह सभव माना गया है कि उत्तरी भारत से गौतम बुद्ध और महावीर जैन के जीवन का लगाव स्पष्ट अविवाद्य है और अगर ई० पू० तृतीय सदी मे वर्णित जातक-कहानियो को हम स्वीकार करते हैं तो ऐसी बातें हो सकती है, लेकिन करीब-करीब तीन सदी के अनेक काल-दोषों की

१. फॉरबेस, आर० जे०, मेटेलर्जी इन् ऐंटीक्विटी, पृ० ४३७-८, लीडेन, १९५०; हंट, ई० एच०, हैदराबाद केअरनस् जर्न० हैदराबाद आर्क० सोस०, पृ० २१८, जुलाई १९१६

जाँच करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। यदि बुद्ध के काल को ई० पू० ५७० से ४८० तक माना जाय और निःसंदेह यह काल कुछ लोगों द्वारा तीव्र विवादग्रस्त बन जायेगा, तब, यदि परंपरा ठीक है, तो हम अनेक शासकों को समकालीन की श्रेणी में रख सकते हैं। इनमे मगध के बिंबिसार (शिशुनाग), वत्स के उदयन, कोशल के प्रसेनजित्, अवन्ती के चन्द प्रद्योत महासेन हैं। ये चार महत्त्वपूर्ण राज्य थे जो कुछ हद तक १६ महाजनपदों पर अधिक्रमण कर चुके थे और हम गांधार के राजा पुकुसती के विषय मे भी सुनते हैं जिसने बिंबिसार के पास एक दूत भी भेजा था।[1]

११वीं सदी में सोमदत्त द्वारा संकलित बृहद् लोककथा 'कथासरित्सागर' मे कौशांबी, पाटलिपुत्र, अयोध्या और उज्जैनी का, जो चार महान् राज्यों की राजधानियाँ थे, वर्णन हमेशा आया है, राजगृह, वाराणसी या काशी, तक्षशिला, मथुरा, श्रावस्ती और ताम्रलिप्ति का वर्णन कहीं-कहीं आया है जबकि दूरस्थ नगर पुष्कलावती, साकल, अमरावती और प्रतिष्ठान (पैथान) का वर्णन सिर्फ एक ही बार आया है। इस सूची से यह प्रतीत होता है कि पजाब का प्रतिनिधित्व न्यून था, क्योंकि वहाँ केवल तक्षशिला और अनिश्चित आकारवाला साकल ही था। यह सभव है कि उस हिस्से मे कोई बड़ा नगर न रहा हो, क्योंकि तक्षशिला के पास के भीर टीलेवाले नगर, जो कभी-कभी आधुनिक लेखको द्वारा आदर्श नगर बतलाए गए हैं, वास्तव मे साधारण ढंग के बने असंबद्ध भवनो के समूह थे, जो हड़प्पावासियो को गदे और बर्बर प्रतीत हुए होंगे। वास्तव मे वहाँ शोरकोट का टीला भी है जो सिबीलोगो की राजधानी का प्रतीक हो सकता है, लेकिन वास्तव में इस ओर, सगालावाला टिब्बा और पुष्कलावती की तरफ अभी ध्यान नही गया है।

परपरागत रूप से मगधराज्य की राजधानी दो बार बदली गई। यदि पाचाल, गिर्यक और गिरिव्रज-सबंधी कनिंघम की पहचान सही है, तो राजधानी वहाँ से हटकर राजगृह गई होगी जो वर्त्तमान राजगीर से छह मील पश्चिम है। तब यद्यपि राजगृह की अधिकृति बनी ही रही, फिर भी शिशुनागवंश का अजातशत्रु राजधानी को हटाकर गगा के किनारे पाटलिपुत्र ले गया। वत्स की राजधानी कौशाबी थी। निचाक्षु बतलाता है कि यह राजधानी हस्तिनापुर से बदलकर यहाँ पर आई जब हस्तिनापुर एक बाढ़ से नष्ट हो गया। पारजिटर इस पौराणिक व्याख्या में तर्कपूर्ण प्रश्न उठाते हैं क्योंकि तीन सौ से अधिक मील दूर राजधानी का आना संभव प्रतीत नहीं होता। कोशल की राजधानी अयोध्या थी, लेकिन रामायण के सातवें अध्याय मे बतलाया गया है कि जब यह स्थान नष्ट हो गया तब राजधानी श्रावस्ती

१. बैशम, द वंडर दैट वाज इंडिया, पृ० ४५-४८

लाई गई। अब यदि हम पौराणिक परपरा मे विश्वास करते हैं तब यह बाबवाला स्थान श्रावस्त द्वारा बसाया गया जो मनु के बाद का दसवाँ राजा था और राम के शासन के बाद ही अयोध्या से राजधानी हटी होगी जो मनु के बाद का ६३वाँ राजा था। लेकिन महाभारत का काल बृहद्बल के शासन के समय ही रहा होगा जिसमें वह अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु द्वारा मारा गया, जो मनु के बाद का ९१वाँ राजा था। इस तरह अगर पुराण में विश्वास किया जाय तो इस नगर की स्थापना बहुत पहले ही हो गयी प्रतीत होती है।

इस सभावना के अलावा कि 'सिधु' शब्द का, जो ई० पू० ६६८-६२६ मे असुर-बानीपाल की पुस्तकालय-सारणी मे मिलता है, अर्थ भारतीय कपास हो सकता है। पश्चिमी एशिया और भारतीय परपराओ मे कही भी थोडा-सा भी संकेत नही मिलता है कि ई० पू० १,४०० के करीब आक्रमण-काल की समाप्ति से लेकर दारियस के समय तक बाहरी दुनिया से भारत का कोई सबध हो। यहाँ के राजा ने तबतक भी सिंधु के बाहर अपने प्रभुत्व का विस्तार नही किया था और सिकदर के आक्रमण का सास्कृतिक प्रभाव बहुत ही कम पडा। स्पष्टत मौर्यकाल मे ही बाह्य संचार की स्थापना हुई और उत्तरी भारत का अधिक भूभाग प्राचीन ऐतिहासिक दुनिया का भाग बन गया। बेबिलोनियनो, फोयनिसियनो और सेवायियनो ने पश्चिमी किनारे पर बसी बस्तियो के साथ व्यापार किया, यह बात उनके व्यापारियो के साहसिक कारनामो को देखते हुए अब निर्णीत परिणाम प्रतीत होती है। परंतु अगर वे व्यापार करते थे तो उन्होने अपने देश की विशिष्ट व्यापारिक वस्तुओं का या व्यापारिक केंद्रो का जो, उनके व्यापारियो के गोदामो की रक्षा करते थे, कुछ भी चिह्न नही छोड़ा है और ऐसी कोई भी वस्तु नही पाई गई है।

यहाँ उत्तरी चिकनी-काली मिट्टी के बर्त्तनो को, उनके तैथिक क्रम मे प्रस्तुत करने का प्रयास होना चाहिए जिसके महत्त्व के विषय मे अतिशयोक्ति नही होनी चाहिए। दुर्भाग्यवश हम इसके गलत नाम के आदी हो गए है जिससे इसकी मिट्टी का गलत परिचय मिलता है। वास्तव मे यह पॉलिश किया हुआ बर्त्तन नहीं है, यह एक चमकीला बर्त्तन है जो न तो पॉलिश किया हुआ है और न वार्निश किया हुआ। काले एटिक-बर्त्तनो के लाल चित्रो की तरह ही इसकी चमकीली सतह को उत्पन्न किया गया है। वास्तव मे गंगा-घाटी के मध्य के स्थानो, प्रमुखत: राजघाट से अनेक ठीकरे प्राप्त हुए हैं जिनमे एटिक-लाल चित्रो की तरह ही काले रंग की सजावट पर लाल रग चढ़ाया गया है। तो भी सभी एन० बी० पी० एक ही तरह के नहीं दीखते हैं और इनके तत्त्वों का अभी भी निरीक्षण हो रहा है।

अब हम यह जाँच कर सकते हैं कि कहीं एक भी स्थान है या नहीं जहाँ आसानी से काले चमकीले बर्तनों का काल ई० पू० ४०० के पहले मिल सके। तक्षशिला के पास भीर टीला से प्राप्त ठीकरों में प्रारंभिक तिथि-संबंधी सभी बातों का उल्लेख है। 'अहिच्छत्र के बर्तनों' के परिशिष्ट में संक्षेप में भीर टीला में पाए गए १८ ठीकरों का उल्लेख है जिनमें केवल दो ही, सतह से सात फुट से कम ही नीचे मिले थे, बाकी ठीकरे जो अनिर्दिष्ट हैं, ७ से १३ फुट नीचे मिले थे, जो अधिकतम गहराई प्रतीत होती है।[1] भीर टीला के काल पर दो तरह से विचार किया गया है। पहला यह कि ई० पू० १८० में बैक्ट्रियन-यूनानियों के आक्रमण के समय इस स्थान का परित्याग कर दिया गया था और दूसरा मापदंड यह है कि तीन संग्रहों का काल निश्चित है।

जहाँ तक भीर टीलावाले नगर के विनष्ट होने का प्रश्न है, यह कल्पना का विषय रहा है—न तो ऐतिहासिक अनुमान और पुरातात्विक बातें ही इसका समर्थन करती है। डेमेट्रिअस, यूक्रेटाइड्स और अगाथोकल्स का काल अशांति का काल था और इसमे सदेह है कि ई० पू० १६० मे मीनाडर के गांधार के राजा बनने के पूर्व कोई भी इडो-यूनानी तक्षशिला मे रहा हो। तो भी साकल में उसे अपनी राजधानी बनाने से, इडो-यूनानी तक्षशिला नगर के अस्तित्व की बात बहुत ही कम यथार्थ प्रतीत होती है। जैसा कि बाद में मालूम होगा, दृढ़ीकृत मिट्टी की लघु-मूर्त्तियो का प्रमाण बतलाता है कि ई० पू० प्रथम सदी के पहले तक भीर टीला पर लोगो का कब्जा रहा और शको के आगमन के साथ ही इसका अंत हुआ।

तीन सग्रहो में केवल १९४५ ई० मे प्राप्त संग्रह का स्तरीकरण-सदर्भ विश्वसनीय है। इसके काल-सबधी महत्त्व की प्रामाणिकता मे इससे फर्क पड़ता है कि न कहीं खुदाई के और न खुदाई मे प्राप्त की गई अन्य वस्तुओ के विवरण प्रकाशित किए गए हैं। इसपर अधिक जोर देने की जरूरत नही है कि पूरी सांस्कृतिक सामग्री के इकट्ठे होने से ही उनके काल के सबध में निर्विवाद परिणाम निकाला जा सकता है। एक वस्तु या अधिक वस्तुओं के संचय के बारे में भी गलत धारणा हो सकती है क्योंकि सर्वदा एक काल-निर्देशक वस्तु अधिक मूल्यवान हो सकती है और अपने मूल संदर्भ के बाहर भी वर्त्तमान रह सकती है। इस संचय का काल-निर्धारण उत्कृष्ट रीति से किया गया है जिसे ई० पू० चौथी सदी में स्पष्ट रूप से आयोनियन-यूनानी कार्य कहा गया है। यह वैहिक वर्णन और काल-निर्धारण न्यायोचित नहीं है।

---

१. द पॉटरी आव अहिच्छत्र, पेप० ५०, एंसिएंट इंडिया, नं० १, १९४६, पृ० ५५-५८

इसी तरह बारहसिंघे, यूरियल या पर्वतीय जंगली बकरे का एक ही रूप में जो चित्रण किया गया है वह पार्थियनकाल या उसके बाद का हो सकता है। १९२४ ई० का संग्रह जिसे १९४५ ई० के ही स्तर का बतलाया गया है, जो सतह से करीब ७ फुट नीचे है, उसका काल फिलिप एरिडेअस के एक हाल के सिक्के के आधार पर ईस्वी सन् C. ३१७ बतलाया गया है। लेकिन यह सिक्का ३२३ के पहले जब जून में सिकंदर का देहांत हो गया या ३१८ के बाद, जब फिलिप की हत्या कर दी गई, नहीं बन सका होगा और सम्भवत: यह सिक्का मेसिडोन में बना, अत वह ई० पू० ३०० के बाद ही किसी समय भारत में पहुँचा होगा और जमीन मे इसके दब जाने मे भी कुछ समय अवश्य ही लग गया होगा। १९१२ ई० के सग्रहो का काल डियोडोटस के एक सिक्के के आधार पर ईस्वी सन् C. २४८ बतलाया गया है। यह सिक्का द्वितीय एनटियोचोस के नाम पर है जिसका २४७ मे देहात हो गया था, परतु यह बैक्ट्रियन-आक्रमण के समय ही जमीन मे दबा होगा या इसे उस समय कही बाहर से मँगाया गया होगा और कुछ समय के पश्चात् घरेलू सचयो के साथ ही यह भी दब गया होगा।[१]

इनमें कोई भी प्रमाण अधिक सहायक नही है, लेकिन कुछ ऐसी बातें है जिनसे पता चलता है कि सतह से पाँच फुट नीचे की वस्तु मौर्यकाल की होगी। ई० पू० २०० और १६० के बीच की कडी मिट्टी की लघुमूर्त्तियाँ भीर टीला मे पायी गयी थी, परंतु उनके सदर्भ अभिलिखित नही है। कडी मिट्टी से विरजित शुग की मूर्ति सतह से ५ फुट नीचे पायी गयी थी और इनका काल अधिकाशत. ई० पू० १५० से १२० बतलाया जा सकता है जबकि एक लडकी का चित्र, जिसका हाथ सर के ऊपर जुडा हुआ है अधिकाशत नष्टप्राय है और यदि मूर्त्तिकला की समानता को ध्यान में रखा जाय तो यह ई० पू० १०० के पहले का नही हो सकता है। १९४६ ई० में प्रकाशित १३ फुट की लंबाई की अपेक्षा किसी अधिक विस्तृत क्रम के अभाव मे किसी भी तरह की निश्चित बात नहीं बतलायी जा सकती है, परतु ई० पू० ४५० से ५० के करीब के भीर टीला नगर के लोगो का जीवन लगता है कि तीन हिस्सों में बँटा था जिसमें ५ फुट ६ इ च तक पश्च-मौर्यकालीन, वहाँ से ९ फुट ६ इंच तक मौर्यकालीन और वहाँ से १३ फुट तक प्राग्-मौर्यकालीन वस्तुएँ लगती हैं। अगर ऐसी बात है तब एन० बी० पी०-बर्त्तनो का काल ई० पू० ४०० से २०० तक

१. यग, जो० एम०, अ न्यू होर्ड फ्रॉम टैक्सिला (भीर माउंड), एंसिएंट इंडिया न० १, १९४६

होगा और यह स्मरण रखना चाहिए कि सिर्फ यही एक ऐसी जगह है जहाँ यह किसी तरह कालनिर्देशक तत्त्वों से सबंधित है।

और किसी भी स्थान में कोई भी तर्क वर्त्तमान नही है कि इन चमकीले बर्त्तनों का काल पहले क्यों होना चाहिए। अहिच्छत्र में इसका काल यद्यपि अविश्वसनीय प्रमाणों से फिर अनिश्चित हो जाता है, ई० पू० तीसरी सदी और सार घेरी का काल ई० पू० दूसरी सदी के बीच है। महेश्वर और राजघाट में यह ई० पू० दूसरी सदी मे प्रारंभ होता है और शिशुपाल-गढ़ मे यह बहुत बाद में ईस्वी सन् की पहली सदी मे प्रारंभ होता है। कोशाबी के घोषितराम-विहार के सग्रहो मे ये वस्तुएँ पायी गयी है, लेकिन जबतक इस खुदाई की वस्तुओ का पूर्णरूपेण प्रकाशन नही होता है तबतक इससे कुछ भी अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। इसके दक्षिण भी यत्र-तत्र कुछ वस्तुएँ पायी गयी है और नासिक के स्तरो से ३४ ठीकरे प्राप्त किये गये है जो बतलाते है कि ई० पू० सपूर्ण द्वितीय सदी तक इस स्थान मे चारो ओर इन बर्त्तनों का व्यवहार होता था। हस्तिनापुर के स्थानो से सबधित १९५०-५२ ई० की खुदाई की एक बहुत ही अच्छी और पूर्ण रिपोर्ट प्रकाशित की गयी है, भले ही यह विस्तृत न हो।[1] यहाँ पर यह काला बर्त्तन तृतीय काल के स्तरो मे पाया गया था। इस स्तर में जो भी वस्तुएँ पायी गयी हैं उनका काल-निर्धारण कुछ तर्कों के आधार पर ई० पू० ३५० के पहले नही किया जा सकता है। प्राचीन कडी मिट्टी बाद के मौर्यकालीन पद्धति की है और दूसरी वस्तु ई० पू० १२० की है। अधिकांश बर्त्तनो की पद्धति वही है जो ई० पू० दूसरी या तीसरी सदी के बर्त्तनो की है। और, यद्यपि इस तरह की व्याख्या को सामान्य रूप से स्वीकृति नही मिलेगी तो भी लाल की रिपोर्ट मे वर्णित बातों के विकल्प के रूप मे एक छोटे-से तैथिक क्रम के लिए समुचित प्रमाण उपलब्ध है।

ये कुछ महत्त्वपूर्ण बातें हैं क्योंकि यही स्थान अन्य स्थानो का काल-निर्धारण करेगा, परतु प्रश्न है कि इसके अपने काल-निर्धारण के लिए कौन-सा प्रमाण है। इस काल-सारणी का प्रयोग चतुर्थ काल से होता है, जिसकी अधिकाश वस्तुएँ स्पष्टत: और अविवाद ढंग से कुशानकाल की बतलायी जा सकती हैं, जब मध्यएशिया के यू येह-ची लोगों के राजाओ ने, जो कुशानजाति के थे, ई० पू० प्रथम तीन शताब्दियों तक संपूर्ण उत्तरी भारत पर राज्य किया। कोई भी आदमी हस्तिनापुर के लिए जो भी काल चुनता है, वह बहुत लंबा हो जाता है और

१. लाल, एक्सकैवेशन्स ऐट हस्तिनापुर

यह तीन भागों में बाँट दिए जाने के योग्य है। इन स्तरों का काल-निर्धारण अधिकतर सिक्कों के द्वारा हुआ है जिसमें प्राचीन स्तरों का काल-निर्धारण शेषदत्त के मथुरा-सिक्कों के आधार पर, मध्यस्तरो का यौधेय-सिक्को के आधार पर और बाद के स्तरों का काल-निर्धारण उन सिक्को के आधार पर किया गया है जो बसुदेव के सिक्को की नकल हैं। जहाँ तक अनुमान करना सभव हो सका है, मथुरा के सिक्के ई० पू० दूसरी और ई० पू० पहली सदी में प्रचलित किये गये होंगे; लेकिन मथुरा के १२ राजा टकसाल में सिक्के बनाते थे परंतु शेषदत्त के सिक्के कब बने और कितने दिनों तक वे प्रचलित रहे, नहीं जाना जा सका है। अनेक यौधेय-सिक्के कुशान-सिक्को की नकल हैं और किसी का भी काल-निर्धारण ईस्वी सन् ५० के पहले नहीं किया जा सकता है। अपने सामान्य संदर्भ मे जब वे मिले, बाद के हो सकते है। बसुदेव के सिक्को की नकल किए गए सिक्के ईस्वी सन् २०० और ३०० के बीच के हो सकते हैं। परंतु कडी मिट्टी की लघुमूर्त्तियो मे से एक मूर्त्ति निश्चित रूप से गुप्त-काल की है, इसलिए यह सभव हो सकता है कि चतुर्थ काल ईस्वी सन् ४०० के करीब मे शुरू हुआ। इस काल की वस्तुओ मे जो सबसे पहले की लगती है वह कडी मिट्टी की बनी एक औरत की मूर्त्ति है जिसका काल करीब-करीब ईस्वी सन् ८० बतलाया जा सकता है; लेकिन वास्तव मे वह ई० पू० २० की हो सकती है जो सबसे पहले की तिथि है, क्योंकि गहनो से लदी एक औरत की एक दूसरी अधिक नष्ट-भ्रष्ट मूर्त्ति है जो करीब ईस्वी सन् ५० की हो सकती है। इसलिए यह सभव प्रतीत नहीं होता है कि चतुर्थ काल ई० पू० ५० के पहले प्रारंभ हुआ होगा।

यह प्रतीत होता है कि चतुर्थ काल के प्रारभ के और तृतीय काल के नगरो के पूर्णत: विनष्ट हो जाने के बीच मे अवश्य ही कुछ अतराल रहा होगा, लेकिन जब उत्तरी काली चमकवाले बर्त्तनो के काल को पीछे ले जाने का उद्देश्य नही है तब एक सौ साल का समय मानना बेकार है, पचास वर्ष का ही समय समुचित है, भले ही अधिक न हो। कौन-सी ऐसी परिस्थिति थी जिससे ई० पू० अर्द्ध-तृतीय सदी मे सामान्य रूप से आपत्ति का आगमन हुआ—जब मौर्य-शासन पूर्णरूपेण व्यवस्थित तथा परिरक्षित था—कहना कठिन है। लेकिन ई० पू० ८०-५० मे 'शक-आक्रमण के समय' देश की अशात अवस्था और बाद के पंजाब, राजपुताना और गुजरात की सीमाओं पर की लडाइयो से नगरो की लूट-पाट और उनके जल जाने से सबधित सभी आवश्यक बातें मालूम हो जाएँगी।

तृतीय काल के ऊपरी स्तरों मे कडी मिट्टी की लघुमूर्त्तियाँ मिली हैं जिनका काल ई० पू० २३० से १२० तक निर्धारित किया जा सकता है। इनकी शैली

तक्षशिला से तामलूक तक के उत्तर भारतीय मौर्य और शुंगकालीन मूर्तियों की तरह है। इस काल में ई० पू० दूसरी और तीसरी सदियों के अनेक बर्त्तन मौजूद हैं और बतलाया जाता है कि एन० बी० पी० के बर्त्तन इनके निम्न स्तरों से प्राप्त किए गए हैं। इन चमकीले बर्त्तनों में अधिकतर बर्त्तन मौर्यकालीन हैं, परंतु दुर्भाग्यवश इस काल के समस्त स्तरों से प्राप्त १०१ ठीकरों का प्रकाशन नहीं हुआ है, जिससे कुछ भी अनुमान नही लगाया जा सकता है। खासकर जहाँ तक एन० बी० पी० के बर्त्तनों का प्रश्न है लाल हस्तिनापुर III और अहिच्छत्र III मे बर्त्तनों में सादृश्य स्थापित करते हैं जिनका काल वे ई० पू० ४०० और ५०० के बीच बतलाते हैं, जो घोष द्वारा बतलाए गए काल से दो सौ वर्ष पहले का है। इस स्थान में तृतीय काल और एन० बी० पी० के बर्त्तनो के प्रारंभ का तर्कसंगत समय ई० पू० ३५० के लगभग प्रतीत होता है। तृतीय काल के निम्न-स्तरों में अलिखित सिक्के पाए गए थे जिनका काल लाल ने ५००-५७५ बतलाया है, परंतु इनमें से किसी भी सिक्के का काल ई० पू० २३० के पहले निर्धारित करने के पक्ष मे कुछ भी तर्क नहीं है।

फिर द्वितीय और तृतीय काल के बीच की अधिकृति में कुछ ठहराव पाते है जिसका कारण बाढ़ के कारण नगर के कुछ हिस्सो का विनष्ट हो जाना था। इस संबध मे लाल दो सौ वर्षों का ठहराव मानते हैं। तो भी चमकदार भूरे बर्त्तन जो द्वितीय काल की मृत्तिका-कला की शैली के हैं, सतह को छोडकर आकार और उत्पादन की सामान्य तकनीक मे एन० बी० पी० के बर्त्तनो के इतने समरूप हैं कि सिर्फ इसे छोडकर कि वे भी वैसी ही चमकीली मिट्टी के बने हैं कुछ भी अतर बतलाना संभव नही है। अगर हम एक सौ साल का ठहराव स्वीकार करते हैं, जिसकी आसानी से व्याख्या नहीं हो सकती है, तो इससे मालूम होता है कि द्वितीय का अंत ई० पू० ४५० और इसका प्रारंभ ७०० ई० पू० मे हुआ होगा। यह अंतिम काल इस तरह से प्रमाणित किया गया है कि इस काल के प्रारंभिक स्तरो में पाये गये नालीदार गर्दनवाले घडे और रगपुर में तृतीय काल के बाद की पायी गयी वस्तुओ में एकरूपता है जिनका काल ई० पू० ६५० बतलाया जा सकता है। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि द्वितीय काल मे काले रंग का एक बर्त्तन मौजूद था जिससे बर्त्तनों की परिसज्जा की तरफ लोगो के झुकाव के बारे मे मालूम होता है जो बहुत कम समय के पश्चात् उत्तरी काले चमकीले बर्त्तनों मे बदल गया। (चित्र २३)

इस तर्क से भरे परिच्छेद की उपयोगिता उत्तरी काले चमकीले बर्त्तनों और रंगीन भूरे बर्त्तनो के काल-निर्धारण के महत्त्व से प्रमाणित किया जा सकता है जिससे ई० पू० प्रथम सहस्राब्दी के भारत की संपूर्ण काल-सारणी का अविच्छिन्न संबंध है। इस

	हस्तिनापुर		अहीछत्रा	
	लाल	गॉर्डन	घोष	गॉर्डन
४००			स्तर III	स्तर III द
३००		युग IV	स्तर IV	स्तर IV
२००				
१००	युग IV		स्तर VI एवं V	स्तर VI एवं V
		अलग		
१००		युग III		स्तर VII
२००	अलग		स्तर VII	स्तर VIII
३००	युग III		स्तर VIII	स्तर IX
४००		अलग	स्तर IX	
५००		युग II		
६००				
600	अलग	युग I		
८००	?	?		
९००	युग II			
१०००				
११००	?			
१२००	अलग			
१३००	? युग I			
१४००	?			

टिप्पणियाँ

अहीछत्रा III द एवं ग गुप्त काल के हैं और III अ II के साथ गुप्त काल के बाद के ५५० ६००, हस्तिनापुर IV का अन्त गुप्त काल से आ मिलता है।

मध्यकालीन तथा बाद के हस्तिनापुर IV और अहीछत्रा IV के समान बहुत से कुशान दृश्यमान प्रारम्भिक हस्तिनापुर IV की पकी हुई मिट्टी की वस्तुएँ ई० पू० पहली सदी के उत्तर काल से लेकर पहली सदी के मध्यकाल के हैं।

हस्तिनापुर III की पकी हुई ईंट वस्तुएँ ई० पू० तृतीय सदी मध्य से लेकर द्वितीय सदी के उत्तर काल तक है और बर्तन अहीछत्रा VIII एवं प्रारम्भिक सिरकप से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं।

चित्रित धूसर बर्तन तथा समकालीन सादे बर्तनों में ई० पू० तीसरी सदी से पहली सदी तक के बर्तनों के बहुत से आकार और तकनीक दिखाई पड़ते हैं।

हस्तिनापुर के कपिशवर्ण भाण्ड की तुलना महेश्वर के कपिशवर्ण भाण्ड से की जा सकती है इनकी सम्भावित तिथि ई० पू० ८५०-५०० तक है।

चित्र २३. हस्तिनापुर और अहिच्छत्र के तुलनात्मक तिथिक्रम

तरह एक तालिका प्रस्तुत की जाती है जिससे हस्तिनापुर और अहिच्छत्र के लिए अनुमानित कालों की एक झांकी मिलेगी और जो कौशांबी की तालिका के साथ, जब वह प्रकाशित होगी, संपूर्ण उत्तरी भारत की वस्तुओं का काल-क्रम जानने में हमारी मदद करेगी। फिर यह भी नहीं भूलना चाहिए कि एन० बी पी० बर्तनों का संबंध निश्चित रूप से सिर्फ तक्षशिला के भीर टीला के निर्दिष्ट तत्त्वों से ही है। उत्तरी भारत के तैथिक विषयों को छोड़ने के पूर्व, ई० पू० १०० से ईस्वी सन् १०० के उस काल पर विचार करना चाहिए जिसकी हम उपेक्षा किया करते हैं। इस दो सौ वर्षों की अवधि के पूर्व लगता है कि अधिकृति में अवश्य ही अंतराल रहा होगा या वह स्थान महत्त्व की कोई भी वस्तु प्रस्तुत करने मे असमर्थ है। यह प्रवृत्ति उस काल की है जब भारतीय सस्कृति मुख्यत. कलात्मक इतिहास की चीज थी। अग्रवाल द्वारा पचालकाल के नामकरण के पहले इसका कोई नाम नही था। फलतः, इसका अस्तित्व नही था।[१] शुग और कुशान के बीच के उत्तरी भारत मे किसी भी सास्कृतिक क्रियाकलाप की पहचान नही हो पायी है, जब कि उनके अभ्युदय-काल मे अनेक नगरों का अस्तित्व रहा होगा। यदि इन बातो को ध्यान मे रखा जाय तो बहुत-सी परस्परविरोधी दीखनेवाली बातें स्पष्ट हो सकती हैं।

दूसरी कठिनाई जो पुरातत्त्ववेत्ताओ और इतिहासकारो, दोनो को परेशानी मे डाल देती है वह मूर्तिकला-सबधी अवशेषो की दुर्लभता है जो निःसदेह मौर्यकालीन है। प्रत्यक्ष रूप से वे स्तभ ही इस आवश्यकता की पूर्ति करते हैं जिनपर अशोक के लेख मौजूद हैं। अन्य मूर्तिकलाएँ जिनके मौर्यकालीन होने का दावा किया गया है, जो मुख्यत यक्ष और यक्षी है, वे बहुत ही विवादग्रस्त हैं। इन्हें मौर्यकालीन बतलाने का प्रमुख तर्क इनपर मौर्यकालीन पॉलिश की मौजूदगी है और जिनपर इसका अभाव है उनपर उसी तरह की शैली और अपरिष्कृतता है। इनमे से बहुतो को आकार मे बहुत बडा बतलाया गया है जब कि वास्तव मे वे मनुष्य के आकार के हैं या कुछ बड़े हैं। इनमे कुछ पर मौर्यकालीन पॉलिश है और दीदारगज की यक्षी जिसपर मौर्यकालीन पॉलिश है उसका काल-निर्धारण ई० पू० प्रथम सदी के बीच के पहले आसानी से नही किया जा सकता है। सारनाथ की मूर्तियों के सर का, जिनपर मौर्यकालीन पॉलिश का दावा किया गया है, थोड़ा भी अवशेष मौजूद नहीं है और परखाम यक्ष की मूर्ति जिसे किसी समय में किसी नंद-राजा की मूर्ति बतलाया गया था, अवक्षीण अवस्था मे होने के कारण मुख्यतः अपरिष्कृत

१. गॉर्डन, अर्ली इंडियन टेराकोटाज, पृ० १६५ एवं १६१

सकती है। प्राचीन भारतीय लोहे की ही तरह मौर्यकालीन पॉलिश की कभी-कभी एक रहस्यात्मक प्रविधि बतलाई गई है, जिसकी कला अब विनष्ट हो चुकी है। वास्तव में यह रहस्य कडे अपघर्षी पदार्थ के साथ कुहनी की चिकनाई का असीमित प्रयोग है जो रक्तमणि के चूर्ण-जैसा है, जो बिहार मे पर्याप्त मात्रा मे प्राप्त है और इसके तत्त्वो को फैलने और उपरोध को रोकने के लिए तैल्य पदार्थों का प्रयोग किया गया है।

अब ईसाई-काल तक की प्रगति को ध्यान मे रखते हुए हम उत्तर से हटकर दक्षिण की तरफ चल रहे है जहाँ की सस्कृति, जैसा कि हमने देखा है, मुख्यतः नवपाषाणिक थी जो ई० पू० प्रथम सहस्राब्दी के मध्य तक वहाँ बनी रही और कुछ स्थानो मे उसके बाद भी वर्त्तमान रही। उसके पश्चात् अकस्मात् सपूर्ण दक्षिणी भारत मे मध्यप्रदेश के नागपुर से लेकर कन्याकुमारी तक नगरो और गाँवो मे रहनेवाले लोगो की सस्कृति ऐसी बन गयी जिसमे लोहे का अधिक प्रयोग होने लगा और खासकर जिसकी विशेषता नई मृत्तिकाकला थी, जो लाल और काले रग के बर्त्तनो मे निहित थी।

मद्रास मे पाडीचेरी के नजदीक अरिकामेडु मे ह्वीलर द्वारा खुदाई करने के पहले तक प्राचीन दक्षिणी भारत के अवशेषो—कलश और महापाषाणिक शवाधानो—का काल-निर्धारण मुख्यत अनुमान का विषय था। भाग्यवश इस खुदाई से रोम के अरेटीन-बर्त्तन और इनके भारतीय अनुकरण प्रकाश मे आ गये है। प्राप्त वस्तुओ को या तो अरेटीन या प्राक् या पश्च-अरेटीन-श्रेणी मे रखने की समर्थता के कारण सर्वप्रथम ईस्वी सन् २० से ५० के काल के अनुसार मशहूर दक्षिणी बर्त्तनो का काल-निर्धारण करना सभव हो सका, जिस काल मे अरेटीन-बर्त्तनों का आयात होता था। दुर्भाग्यवश लाल और काले रग के महत्त्वपूर्ण बर्त्तन पर्याप्त सख्या में उपलब्ध नहीं हैं, परतु इनके सदर्भ के द्वारा इनका काल-निर्धारण ईस्वी सन् की मध्यवर्त्ती प्रथम सदी मे किया जा सकता है।[१] बाद मे ब्रह्मगिरि मे ह्वीलर द्वारा की गई खुदाई से सास्कृतिक सचयनो का प्रमाण प्रस्तुत हुआ जो लाल और काले रंग के बर्त्तनो और एक विशेष तरह के लोगो से सबधित है। राजनीतिक सभावनाओ के आधार पर, जो मौर्यों द्वारा इस क्षेत्र के प्रभावशाली नियत्रण पर आधारित है, बतलाया जा सकता है कि इनलोगो ने ई० पू० २३२ मे अशोक के मृत्यु-काल के करीब स्थानीय नवपाषाणिक लोगो को अपनेमे मिलाना प्रारभ किया।

१. ह्वीलर, अरिकामेडु, एंसियंट इंडिया, न० २

लोहे का प्रयोग करनेवाले इनलोगों से संबंधित अनेक तरह के विचार प्रस्तुत किए गए हैं। ऐसे अनेक लोग अपने मृतकों को महापाषाणिक कब्रों में दफनाते थे। सी० एफ० हेमनडोर्फ बतलाते हैं कि इस तरह के क्षेत्र, जहाँ ऐसे शवाधान पाए जाते थे, उन स्थानों से समानता रखते हैं जहाँ के लोग द्रविड़-भाषा—तमिल, तेलगू, कन्नड और मलयालम बोलते हैं। वे बतलाते हैं कि इसमें जरा भी संदेह नहीं है कि जो लोग महापाषाण बनाते थे वे ई० पू० प्रथम सहस्राब्दी के अंत तक दक्षिण के अनेक भागो में प्रभुत्वशाली जाति के लोग थे, और चूँकि द्रविड़-भाषा का वर्तमान वितरण पूर्णरूप से महापाषाणिक कब्रो के समरूप है, अत. महापाषाण-निर्माता यदि द्रविड़ नहीं बोलते थे तो वे क्या बोलते होगे?[1] इस सामान्य तर्क के समर्थन में यह याद रखना चाहिए कि जिस काल का हम वर्णन कर रहे हैं वह कोई दूरस्थ प्रागैतिहासिक काल नही है बल्कि ई० पू० ३३२ से लेकर ईस्वी सन् ५०० तक का प्राचीन ऐतिहासिक काल है जब हमे ऐसे ऐतिहासिक लोगों—कोले, चेराज और पन्देजों—का वर्णन करना है। वास्तव मे ये वे ही लोग हो सकते है जिन्होंने लोहे और लाल और काले रंग के बर्त्तनो का सर्वप्रथम प्रयोग किया और अपने मृतको को विविध ढग से दफनाते थे जिनमे दाह-कलश या महापाषाणिक कब्र विशिष्ट है और यह युक्ति के प्रतिकूल प्रतीत होता है कि उन्होने अपनी भाषा की उपेक्षा कर अपने पूर्ववर्त्ती की भाषा अपनाई होगी, जिनपर उनका प्रभुत्व था।

पुरातात्त्विक रूप मे द्रविड़ो के आगमन की समस्या उतनी ही जटिल है जितनी कि आर्यों के आगमन की। इसके दो संभव समाधान हो सकते हैं। या तो, आर्यों के आगमन के समय द्रविडलोग भारत मे ही थे जो आर्यों द्वारा अंतर्लयन कर लिए गए, बर्बाद कर दिए गए या खदेड़ दिए गए, या वे कुछ बाद मे समुद्र से होकर आए, स्वयं दक्षिणी भारत पर उन्होने आक्रमण किया और नर्मदा के उत्तर कभी नहीं बढ़ सके। जहाँ तक उद्‌गम-स्थान और भाषा के सादृश्य का सबध है, द्रविड आर्यों से अधिक रहस्य से घिरे लोग है। बलूचिस्तान के ब्राहुअस द्रविडजाति के नही है, फिर भी उनकी बोलचाल की भाषा में द्रविड-तत्त्व वर्त्तमान है और यह बतलाया गया है कि हड़प्पावासी आदिद्रविड़ थे। ब्राहुअसलोग जाति के रूप मे नही बल्कि भाषा के संबध में प्राचीन हड़प्पा के द्रविड़ो के उत्तराधिकारी लगते हैं और वर्तमानकाल के दक्षिण के द्रविडलोग अपने स्थानांतर के फलस्वरूप विजेता-आर्यों के सामने से धीरे-

१. हेमनडोर्फ, सी० एफ०, इंडियन मेगालिथिक कल्चर्स, एंशिएंट एंड मॉडर्न, इलस० लंडन न्यूज, जुलाई १, १९५०

धीरे हटते गए। कोई भी आदमी यह महसूस नही कर सकता है कि यह तस्वीर पूर्णतः मिथ्या है। जैसा कि बतलाया जाएगा कि यह दक्षिणभारतीय और अनुमानतः द्रविड़-संस्कृति पूर्णत' एक वस्तु थी। इस तरह हड़प्पावासी अगर प्राचीन द्रविड़ थे तब सपूर्ण द्रविड-प्रदेश में उस तरह की सस्कृति व्याप्त होनी चाहिए या दक्षिणी लोगो के स्थानातर के फलस्वरूप दक्षिणी भारत की प्राचीन संस्कृति मे कम-से-कम व्यापक और महत्त्वपूर्ण हड़प्पा-तत्त्व होना चाहिए। लेकिन इन विकल्पों के पक्ष मे कोई आशिक प्रमाण भी नही मिलता है।

हमने देखा है कि इसे मानने के सभी तर्क वर्त्तमान है कि हड़प्पावासियों में जो लोग बच गये वे आर्यों के सामाजिक ढाँचे मे मिला लिए गए। जैसा कि ए० एल० बैशम ने बतलाया है—"ऋग्वेद के अनेक शब्द किसी भी ज्ञात इंडो-यूरोपियन मूल स्रोतो से संबंधित नही है और स्पष्ट रूप से क्षेत्रीय शब्दो से उधार लिये गए हैं।"[१] यह कभी भी नही बतलाया गया है कि ऐसे शब्द द्रविड-भाषा के हैं। अधिकतर उत्तरी द्रविडभाषी—गोंडी, खोंडी और कोलामीवाले लोग हैं जिनकी परपरा से मालूम होता है कि इनके पूर्वजो का दक्षिण से सबध रहा होगा और अधिक बातो मे प्राचीन मुण्डारी-भाषा पर द्रविड-भाषा का अतिक्रमण रहा होगा, जिस तरह इन क्षेत्रो मे हिंदी का प्रयोग बढता जा रहा है। तुलनात्मक तौर पर दक्षिण मे सुगठित सास्कृतिक समुदाय का प्रादुर्भाव अकस्मात हुआ है जो गोदावरी के दक्षिण की प्राप्त वस्तुओ मे सर्वोत्तम है और यह एक महान् ऐतिहासिक घटना है।

नवपाषाणिक संस्कृति को कुछ विस्तारपूर्वक जाँच करने के बाद प्रथम सहस्राब्दी के पूर्वार्द्ध मे सपूर्ण दक्षिणी भारत मे सामान्य रूप से वर्त्तमान द्रविड-सस्कृति के सबध मे यह प्रश्न उठता है कि उस सस्कृति का स्वरूप क्या था। यह सस्कृति अंतर्वेधी प्रतीत होती है। यहाँ लाल और काले वर्त्तनों का एक नया मृत्तिका-उद्योग है और लोहे की बनी अनेक वस्तुओ का अचानक वहाँ प्रादुर्भाव हुआ। अगर यह मान लिया जाय कि लोहा एक या दूसरी रीति से प्रस्तुत किया गया तब इसके विकास के लिए कोई दीर्घकालीन समय की आवश्यकता नही रह जाती है बल्कि इन लोहे की वस्तुओं से दो बातें मालूम होती हैं। प्रथमत', एक ही साथ पूर्णरूपेण अनेक वस्तुओ का प्रादुर्भाव हुआ और द्वितीयतः यह कि उन क्षेत्रों में जहाँ इनका प्रसार हुआ, इनकी बनाने की विधि मे बहुत ही कम परिवर्तन हुआ। वास्तव में द्रविड-समस्या के समाधान मे अनेक कठिनाइयाँ हैं जिनका सतोषप्रद समाधान नही निकल सकता

१. बैशम, द वण्डर दैट वॉज इंडिया, पृ० ३३

है। हम यह नहीं जान सकते हैं कि प्रस्तर की कुल्हाड़ीवाले लोग कौन-सी भाषा बोलते थे, इसलिए हम यह नही कह सकते हैं कि वह द्रविड़-भाषा थी या नही। हम यह नहीं जानते है कि आर्टाक्जेर्क्जस नेमन को उपहार में दी गयी भारतीय इस्पात की तलवारें दक्षिणभारत की थी या उत्तरभारत की। हम द्रविड़-भाषा का उद्गम-स्थान भी नही जानते, न यह कि भारत मे इसके आगमन का काल क्या था।

हमारे पास यह जानने का कोई भी साधन नही है कि उन आर्यों की वास्तविक संख्या कितनी थी जिसने उत्तरी भारत के आर्यों को प्रभावित किया; परंतु यह मानने का कोई कारण नही कि वे दसगुने नहीं बल्कि लाखगुने थे। इसी तरह से द्रविडलोग पहले व्यापारी के रूप मे आये होगे, तब पश्चिम के समुद्र-तट से उपनिवेशी के रूप मे आये होंगे और उन्होने दक्षिण-पश्चिम से अपना प्रसार किया होगा और अपनी संस्कृति फैलाई होगी। उन्होंने ही दक्षिणभारत को द्रविड़ बनाया होगा। यदि ऐसी बात ई० पू० ६ठी सदी के प्रारभ मे हुई होगी तब आर्यों के साथ किसी भी तरह की उनकी टक्कर नही हुई होगी, जो उस समय तक सिर्फ अश्मक और विदर्भ को ही अधिकृत कर सके थे। अभी तक इस अनुमान के विरुद्ध सबसे महत्त्वपूर्ण तर्क इस संस्कृति का अपरिवर्त्तनशील स्वरूप है, जो अगर प्रारंभिक मध्यकाल तक वर्त्तमान रही, जिसका अधिक सकेत मिलता है, तो इस तरह से हजार वर्षों से अधिक तक वर्त्तमान रही। यह कोई दुस्तर संस्कृति नही थी क्योंकि इसे बदलने का भी थोडा प्रयास किया गया और किसी तरह कुछ साधारण परिवर्त्तन घटित हुए; उत्तर से बौद्ध और जैनधर्मों का अतिक्रमण हुआ और मद्रास के उत्तरी दूरस्थ हिस्सों, मैसूर और आन्ध्रप्रदेश मे आन्ध्रराजवश का अभ्युदय हुआ।

मुख्यत: तक्षशिला से प्राप्त अवशेषो की जाँच करने पर पता चलता है कि उत्तरी भारत के लोहे के औजारो और हथियारो का ढाँचा दक्षिण के औजारो और हथियारों से भिन्न था। दक्षिण के औजारों और हथियारो मे कुर्ग, कोयंबटूर और ब्रह्मगिरि से प्राप्त लबे छडवाले लोहे के भाले, लोहे के छड के त्रिशूल, लोहे के छल्लेवाले बधन लगे फावडे, सॉकेट के रूप मे मुड़े हुए किनारेवाले फावड़े, लग्गी, तस्तरी, खूँटी से टगे लैंप और लोहे की तिपाइयाँ हैं। इसके अतिरिक्त, तलवारें, छूरे, हँसिये, सॉकेट लगे भालाग्र, तीर-शीर्ष और चपटी कुल्हाड़ियाँ भी है। पठार के बिल्कुल दक्षिणी छोर पर अदिचनालूर से लेकर जिवार्गी के उत्तर तक और ६०० मील दूर मध्यहैदराबाद के अन्य स्थानो मे सामान्य रूप में किसी भी प्रकार का परिवर्त्तन या अतर नही दिखलाई पड़ता। (चित्र २४)

अब हमें महत्त्वपूर्ण लाल और काले रंग के बर्त्तनों पर विचार करना चाहिए और यह भी देखना चाहिए कि इनके मूल स्रोत और काल-सबंधी कोई
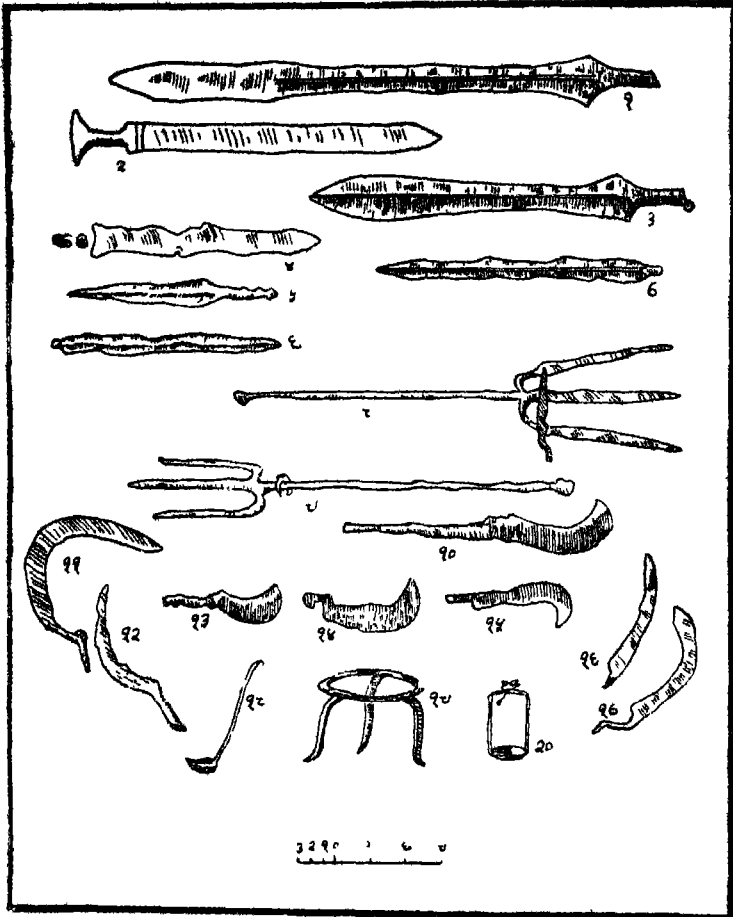
२४. दक्षिणभारत और दक्कन से प्राप्त लोहे की वस्तुएं

सूचना मिलती है कि नहीं। नियमतः इन बर्त्तनों को आग में पकाने के पहले चिकनी मिट्टी या किसी हड्डी के औजार से रगडा गया है जिससे कि इनकी सतह किनारे तक चमकीली बन गई है। बर्त्तन का भीतरी भाग काले रंग का है और इसलिए बाहर घेरे के नीचे बहुत विभिन्नता है। यह काला रंग इसलिए है कि आग में पकाने के समय इस बर्त्तन को उलटकर रख दिया गया था। इसका यह मतलब है कि भट्टी में बर्त्तनो से हवा निकाल देने पर आग मे वर्त्तमान कार्बन-मोनोक्साइड, मिट्टी मे वर्त्तमान फेरिक-आक्साइड से मिल जाता है जो इसे लोहस बना देता है और इसका रंग काला बन जाता है। इसकी निचली सतह ऊपर रहती है जिसे अधिक मात्रा में हवा मिलती है जो उसे आक्साइड बना देता है और मिट्टी मे वर्त्तमान फेरिक-आक्साइड का आक्साइडेशन होते जाने पर, पकने के बाद मिट्टी लाल बन जाती है। इसका रग भिन्न-भिन्न तरह का हो सकता है। उसमे चार प्रतिशत आयरन ऑक्साइड होने से यह भूरे रग का होता है और उससे अधिक होने पर नियमतः लाल मे ही भिन्न-भिन्न तरह की आभाएँ बन जाती हैं।[1]

इस काल के दक्षिणभारत से बर्त्तनो की शैली का महत्त्व इस बात से है कि मृत्तिका-उद्योग लोहे की वस्तुएँ और शवाधानो का पूरा समुदाय लोहे के विशिष्ट प्रकार मूका पट्टीवाली महापाषाणिक कब्रों और सबसे अधिक सर्वव्यापी लाल और काले बर्त्तनो की परस्परसंबद्ध वर्त्तमानता के सयोग-सूत्र में बँधा है। वास्तव मे यह इस सस्कृति की स्थिरता है जो सभी प्रकार के शवाधानों और मृत्तिका-उद्योगों के सभी रूपों और विधियों मे कुछ स्थानों मे लक्षित होती हैं।[2] इसके यथार्थ वितरण के विषय मे बाद मे बतलाया जाएगा, परतु जहाँ तक दक्षिणभारत की प्रारंभिक लौह-सस्कृति की जटिलता का सबध है, वह सिकन्दराबाद से होकर पूरब से पश्चिम की ओर खीची गयी एक रेखा के दक्षिण तक संपूर्ण पठार मे वर्त्तमान है।

महापाषाणिक कब्रो ने निरीक्षको को इतना अधिक प्रभावित किया है कि महापाषाणिक कब्रो के सबध में उनकी धारणा भ्रांतिमूलक बन गयी है और दक्षिणभारत के लाल और काले बर्त्तनो को वे महापाषाणिक समझ बैंठे हैं जिसकी विशेषता द्रविड़-संस्कृति के लिए कोई महत्त्वपूर्ण नहीं है। इन क्षेत्रों के, जहाँ इस तरह के बर्त्तन पाये जाते थे, लोगो के शवाधान-संबंधी रीति-रिवाज भिन्न-भिन्न तरह के थे। भिन्न-भिन्न आकार-प्रकारवाली महापाषाणिक कब्रों में शवों को दफनाने के अतिरिक्त कुछ लोग दो या तीन कक्षवाली कब्रों अथवा प्रस्तरों या लेटेराइट

1. केल्सो एँड थॉरले, द पौटर्स टेकनीक पेट तेल्ल बित मिरशीम, पृ०-८९-९१
2. गॉर्डन, अर्ली यूस ऑव आयरन इन इंडिया एँड पाकिस्तान, पृ० ९३

नागपुर
मद्रास
अमरावती
आदिचन्नालुर
दक्षिरा भारत
ताबूत एवं शवाधान
मूका सहित एवं मूका रहित
महा पाषाणी ताबूत
पॉट एवं शव पेटिका शवाधान
ऊपर वाले प्रस्तर चक्रों के
लोह कारीगरी वाले स्थान
मील की दूरी

चित्र २५.

को काटकर बनाई गई कब्रों में दफनाते थे। शवाधान के प्रमुख रूप नाद जैसे कलश थे और मिट्टी की एक बड़ी शवपेटिका थी (प्लेट XXX, अ और ब) । ये सभी प्रकार के शवाधान पूर्णतः दक्षिणभारत की एक ही संस्कृति के हैं और शवाधान-कलशों, शवपेटिकाओ और महापाषाणिक कब्रों मे लाल और काले बर्तन भी पाए गए हैं। राजगीर की एक महापाषाणिक कब्र तथा हैदराबाद और मालाबार प्रस्तर-कब्रो से प्राप्त लोहे के लंबे त्रिशूल को अदिचनालूर से प्राप्त शवाधान-कलशों के साथ रखा गया था। दक्षिणी आरकोट के देवानुर की एक महापाषाणिक प्राचीन कब्र के मूके से एक मिट्टी की बनी शवपेटिका प्राप्त की गयी थी।[1] इससे स्पष्ट है कि क्षेत्रीय शवाधान के रीति-रिवाजो की असामान्य विभिन्नताओ का कोई अधिक महत्त्व नहीं है।

शवाधान और अंत्येष्टि-संस्कार की कुछ वस्तुएँ—तिपाई और चतुष्पद कलश—कुछ हद तक क्षेत्रीय हैं; परतु सुदूर दक्षिण से लेकर सपूर्ण जटिल द्रविड-संस्कृति के क्षेत्रो तक महापाषाणिक मूकेवाली प्रस्तर कब्रो का विस्तृत ढग से प्रचलन था। ये कब्रें यूरोप, उत्तरी अफ्रिका और पश्चिमी एशिया के विस्तृत रूप से यत्र-तत्र बिखरी कब्रों के समान हैं, विशेषतः जहाँ तक कब्र-द्वार को बद करनेवाले मूको का संबंध है। इन मूको का प्रयोग इसलिए किया गया था कि कब्र को ढकने और कब्र-द्वार को बंद करने के बाद भी भेंट चढाया जा सके और हड्डियो का निर्मांसन किया जा सके। मृतको को दफनाने की इस विधि को 'हरा' और 'सूखा' शवाधान कहा जाता था जिसमे शवो को तबतक के लिए छोड दिया जाता था जबतक मांस विलीन न हो जाय और उसके बाद घरेलू कब्रो मे हड्डियो को उत्सव के साथ दफनाया जाता था। (चित्र २५)

इस क्षेत्र मे अनेक प्रकार की महापाषाणिक कब्रें वर्त्तमान हैं। यद्यपि सामान्य रूप से इनमे एक ही कक्ष है तो भी इसे तीन कक्षों तक बढ़ाया जा सकता है। इनका आकार सामान्यतः 'L' की तरह है और इनकी दीवारें ग्रेनाइट की एक ही चट्टान से बनी हैं। प्रस्तर की सतह पर आग जलाने से ऐसी चट्टानें प्राप्त की जाती थीं जिससे ग्रेनाइट की परत पर एक विस्फोट होता था, जिसमें एक पतली परतवाली ग्रेनाइट की चट्टान बन जाती थी। प्रस्तरो की बनी कब्रों के ढक्कन कब्रों की दीवारों से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इनसे साबित होता है कि इन्हें खोदकर लाने का अवश्य

१. गर्सटोम, जे० एम०, सिस्ट एड अर्न ब्यूरिअल्स इन द साउथ आरकोट डिस्ट्रिक्ट, इं० ऐंटीक्वेरी V, १८७६

ही कोई साधन रहा होगा और किसी भी इस तरह की कब्रों मे कुछ ढक्कन अभी भी मौजूद हैं। मिडोज टेलर ने बतलाया है कि हैदराबाद के एक ऐसे कुछ ढक्कन बहुत बड़े आकार के हैं और उन्हें ढोकर लाने और उस अवस्था में रखने मे काफी परिश्रम और क्षमता की आवश्यकता पडी होगी और अनुमानतः रोलर और रपटे की सहायता से इन्हे लाया गया होगा।[1] अनेक शवाधान-कलश जमीन पर अड़े प्रस्तर-खंडो द्वारा ढके हुए है और गर्त्त शवाधान मे गर्त्त के द्वार को बद करने के लिए प्रस्तर-खंडो का एक द्वार है।

इन प्रस्तर-कब्रो के अतिरिक्त महापाषाणिक वृत्त और मार्ग-रेखाएँ है। दक्षिण-भारत के ये सभी घेरे शवाधानो से संबधित प्रतीत होते हैं और वे प्रस्तर-कब्रो, शवाधान-कलशो और गर्त्त-शवाधानो के चारो तरफ पाए जा सकते हैं। कोयबटूर जिले मे अनेक कब्रो की जाँच और उनकी खुदाई की गई। पेरुदुराई से सात मील उत्तर नलमपत्ती मे एक, दो या तीन घेरो के बीच सगोरे के नीचे कुछ कब्रें पाई गई थी जिनमे से कुछ बहुत ही महत्त्वपूर्ण कब्रें प्रतीत होती हैं जिनके घेरे मे महत्त्वपूर्ण आकार के मलगे प्रस्तर लगे है जिसमे एक १३ फुट ऊँचा और ६½ फुट चौड़ा है। मालाबार की सीमा के नजदीक नल्कलपलियम मे किसी भी घेरे के प्रस्तर ६ फुट से कम ऊँचे नही हैं।[2] मार्ग-रेखाओ के कार्य अभी भी रहस्यपूर्ण है और सभव है कि रहस्यपूर्ण ही रहे। मुख्यत हैदराबाद और खासकर रायचूर और गुलबर्ग जिले मे ये पायी गयी है। वे पचवृक्षी की तरह के बने एक विस्तृत भूभाग को आच्छादित करती हैं और इन्हे बनानेवाले प्रस्तरो की ऊँचाई बहुत अधिक नही है। ये सामान्यत सतह से ३ से लेकर ८ फुट तक ऊँचे हैं। सभवतः वे शवाधान-संस्कारों की कुछ वस्तुएँ हो जिनकी न तो अब कोई परपरा है और न ईस्वी सन् की प्रथम सदी के लेखो मे इनका कोई सकेत है।

किसी भी विशेष तरह के शवाधानो को किसी विशेष लोग, जाति या वर्ग से सबधित करना संभव नही जान पडता है क्योकि करीब-करीब एक ही जगह एक ही तरह की अंत्येष्टि-वस्तुओ के साथ भिन्न-भिन्न प्रकार के शवाधान पाए जाते हैं। मेत्तूपलयम से करीब ५ मील दक्षिण करायमदाई के नजदीक कोयबटूर मे सैडफोर्ड द्वारा

१. मेगालिथिक टूम्स एंड अदर एंसियंट रिमेंस; कलेक्टेड पेपर्स बाई कर्नल मिडोज टेलर, आर्क० सिप०, हैदराबाद स्टेट, १९४१

२. ब्रालहाउस, एम० जे०, नोटस ऑन द मेगालिथिक मॉन्यूमेंटस ऑव द कोयम्बटूर डिस्ट्रिक्ट, जौर० रॉयल एसियाटिक सोस० (न्यू सीरीज) VII, १८७५

उखाड़ी गई कब्रों में शवाधान-कलश पाए गए थे जिनमें शवाधान-कलश के ऊपर प्रस्तर-खंडों का एक ढक्कन था। कोई भी जो ओटकामंड गया होगा, इसे जानता होगा। वहाँ प्रस्तर-खंडों के मूकेवाली एक, दो या तीन कक्षवाली कब्रें भी थी जिनमें अधिकतर छोटे टीलों के नीचे थीं और प्रस्तरों से घेरी गई थी। मास्की के एक भाग में जिसे सुलतान मुहम्मद का मैदान कहा जाता है एक बहुत ही दिलचस्प कब्र है जिसकी खुदाई १९४३ ई० मे हुई थी। इसकी रिपोर्ट प्रकाशित नही की गई है, लेकिन तस्वीरो से पता चलता है कि वहाँ विस्तृत और सकुचित शवाधान हैं जो कडी मिट्टी की बनी बेलनाकार और ट्यूब के आकार की दूसरी दो शवपेटिकाओं पर उपस्थित है और इन सभी शवाधानो मे बहुत-से बर्त्तन पडे हुए हैं। स्पष्टत. वहाँ बड़े-बड़े वर्तुल बर्त्तन और ढक्कन भी हैं जो बिना पेटीवाले शवाधानों और लाल और काले बर्त्तनों के साथ के या उनके समकालीन लगते है जिनमे कुछ शवपेटिका के चारो ओर कस-कर बाँध दिए गए हैं। (प्लेट XXXI, अ और ब) मनुष्य के अवशेषों से पूर्ण वर्तुल घडे तीन तरह के समकालीन शवाधानो से प्राप्त किए गए है जिनका ऊपरी भाग वर्तमान सतह से करीब-करीब १ फुट से कुछ कम है और कडी मिट्टीवाली पेटिका सतह से ३ या ४ फुट नीचे भिन्न-भिन्न गहराई मे हैं। ये कब्रें महापा-षाणिक न होकर गरीब लोगो की है—इस विचार के समर्थन मे कुछ भी प्रमाण नहीं मिलता है। श्रीनिवासन उन बातो का उद्धरण देते हैं जो कोलराजा की-ली वलयन के निधन पर कवि अयूर मुदावनर ने कुम्हारों को सबोधित करते हुए कहा था—"इतने प्रभुत्वशाली राजा को दफनाने के लिए तुम्हे एक लंबे चौडे मुँहवाला कलश बनाना चाहिए। क्या इस महान् पृथ्वी को अपना चक्का और महान् पर्वतों को अपनी मिट्टी के गोले बनाए बिना तुम्हारा काम चलेगा?"[१]

दक्षिण के महापाषाण को छोडने के पहले, निम्न गोदावरी के तट पर हैदरा-बाद के वारागल जिले के कातापुर और मलूर मे जे० मुलहेरान द्वारा पाई गई अर्गलाओं के बारे में कुछ बतलाना आवश्यक है। मुलहेरान द्वारा बतलाई गई कातापुर की अर्गलाएँ प्रस्तर-खंडों से बनी हैं और ६ से ७ फुट तक ऊँची हैं। वे अनेक प्रस्तर-शवाधान कब्रों के पास हैं और उनसे सबंधित हैं। इन अर्गलाओं के परवर्ती निरीक्षण-संबंधी कोई दूसरा अभिलेख नही मिलता है और अगर इनका मूल स्रोत ईसाई है और ये प्रस्तर कब्रो के समकालीन हैं, तब ये बहुत पहले के होंगे और है।

१. श्रीनिवासन्, के० आर०, द मेगालिथिक ब्यूरीअल्स एंड अर्न फील्ड्स ऑव साउथ इंडिया इन द लाइट ऑव टामिल लिटरेचर एंड ट्रेडिशन, एंशियंट इंडिया, नं० २, १९४६.

ई० पू० सातवीं सदी के बाद के नहीं होंगे। यह सभव है कि इनका काल कुछ भी हो, ये ईसाइयों से सबधित हैं क्योकि प्राक् या गैर-ईसाई अर्गलाएँ भारत में अज्ञात है।[1]

दक्षिणभारत में लौह-प्रयोग करनेवाली सस्कृति के लोगो के उद्गम-स्थान की समस्याओ से संबंधित ही लाल और काले रग के बर्त्तनों और उत्तर के महापाषाण के प्रसार की समस्या है। अब प्रश्न है कि अभी तक पाए गए लाल और काले रंग के बर्त्तनो के सभी दृष्टात क्या एक ही विशेष तरह के लोगो की वस्तु हैं या उनसे प्रभावित है और अगर ऐसी बात है तब वे लोग कहाँ से आए और किस दिशा मे उनका प्रसार हुआ। बात यह है कि इन प्रश्नो का ठीक उत्तर देने के लिए हमारे पास अभी समुचित प्रमाण उपलब्ध नही हैं। अभी हमारे पास अस्थाई सम्मति के लिए भी क्या आधार वर्त्तमान है ?

जैसा कि हमने देखा है गोदावरी तक का सपूर्ण दक्षिणभारत लाल और काले बर्त्तनो से भरा पडा है जिनका विस्तार नागपुर के पास वेनगगा तक है। ऊपरी गोदावरी के पास नेवासा और नासिक मे ये ई० पू० ३०० और ईस्वी सन् १०० के अधिकतर क्षेत्रो मे पाए जाते है और ताप्ती के पास के प्रकाश के साथ भी ये ही बातें लागू है और यह लोहे से सबधित है। नर्मदा के उत्तर महेश्वर के क्षेत्र के प्रमाण कुछ विपरीत हैं। नागदा मे ये वस्तुएँ द्वितीय काल की वस्तुओ मे पाई गई है जो प्रागैतिहासिक है, परतु ये ताम्रपाषाणिक प्रथम काल की वस्तुओ मे नही है और उज्जैन मे जहाँ पर ताम्रपाषाणिक चित्रित बर्त्तनो का अस्तित्व नही है, ये प्रारंभिक ऐतिहासिक स्तरो मे पाई जाती हैं। तो भी यह दावा किया जाता है कि महेश्वर मे ताम्रपाषाणिक निम्नस्तरो मे भी ये वर्त्तमान हैं जिनका प्रचलन प्रारभिक ऐतिहासिक काल तक रहा ; परतु अन्य स्थानो से प्राप्त प्रमाणो के आधार पर इन बातो पर पुनः जाँच आवश्यक है।

गुजरात और काठियावाड से प्राप्त एक लाल और काले बर्त्तन का जिक्र किया गया है, लेकिन कभी-कभी 'लाल और काले' का अर्थ लाल के ऊपर काले रंग की रँगाई समझी गई है जिसमे अनिश्चितता आ गई है और सही निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन बन गया है। गुजरात के रगपुर मे वास्तव मे इस तरह के एक बर्त्तन का

१. मुलहेरन, जे०, कौमलेक्स ऑव सेंट्रल इंडिया एंड नोट्स ऑन द कौसेज एंड कौमलेक्स ऑव द छिंदवारा डिस्ट्रिक्ट, प्रोक० एसियाटिक सोस० बंगाल, १८६८, द साइट्स मेनशंडऑर इन द प्रेजेंट वॉलंगल डिस्ट०, इट हैज नॉट बिन फाउंड पॉस्सीबल टू एकाउंट फॉर दिस रेफेरेंस टू द छिन्दवारा डिस्ट० इन् दिस एरिया।

अस्तित्व है जिसे उलटकर पकाया गया है। यह बर्त्तन दक्षिणभारतीय संस्कृति-वाला ही विशिष्ट बर्त्तन है—इसमें संदेह है; क्योंकि यह उजले रंग से चित्रित है और ऐसी विशिष्टता दक्षिण में कभी नहीं पाई गई। दूसरी ओर, इन बर्त्तनों का उचित मूल्यांकन करना कठिन है, क्योंकि इन बर्त्तनों के संबंध में उनलोगों के विचारों और कथन में विभिन्नता और अस्पष्टता है। यद्यपि स्पष्ट रूप से क्षेत्रीय संदर्भ मे ये बर्त्तन बाद के हैं, तो भी गुजरात-कठियावाड के ये लाल और काले बर्त्तन लोहे के साथ नहीं मिले हैं और न रगपुर III के बर्त्तनो से सबंधित हैं। वर्त्तमान प्रमाण के आधार पर ये बर्त्तन ई० पू० ६५० से अधिक बाद के नही हो सकते हैं।

अनेक स्थानो के लिए बतलाए गए काल से गुजरात और दक्षिण के बर्त्तनों के संबध में पूर्णरूप से कोई रुकावट नही होती है। कठियावाड़ से ऊपरी गोदावरी तक लाल और काले बर्त्तनो के निरतर शृंखलाबद्ध क्षेत्रो से लगता है कि इनके संबध की सभावनाओ को स्वेच्छापूर्वक नही मिटाया जा सकता है। और न इनके प्रसार से कुछ समुद्री लोगो द्वारा स्थापित की गई इस सस्कृति के तत्त्व विनष्ट हुए होगे। कठियावाड के बर्त्तनो का प्रारभिक काल ई० पू० ६५० से ५५० बतलाने से ये सारी बातें स्पष्ट हो जाएँगी, परंतु महेश्वर के लिए प्रारभिक काल बतलाना समुचित नही होगा। वहाँ इसकी स्थापना के लिए कुछ बाद का काल बतलाना आवश्यक होगा। फिर, अगर हम दक्षिण की तरफ नासिक मे आते है तो फिर यही कठिनाई होती है, क्योकि ई० पू० २५० के पहले का बतलाया गया काल यहाँ उचित नही जँचता है। बात यह है कि इस बर्त्तन के सबध मे हमारा वर्त्तमान ज्ञान बतलाता है कि ऊपरी गोदावरी के उत्तर जो इनका उद्गम-स्थान है, सभी संभवत: कठियावाड के भूदर्श से लेकर पश्चिमी समुद्रतट के क्षेत्रो के भीतर है जहाँ प्रारंभ मे इनका प्रसार हुआ था।

दक्षिणभारत के भारतीय लोहे की वस्तुओ के विषय मे हमे कब्रों की वस्तुओं से ही पूर्ण जानकारी प्राप्त हुई है और नर्मदा के उत्तरी भूभाग में जहाँ लाल और काले बर्त्तन पाए जाते हैं ऐसी शवाधान-वस्तुएँ बहुत ही कम हैं और अभी तक यहाँ से लोहा प्राप्त नही हुआ है। दक्षिण की कब्रो, खासकर तिनेवेली जिले के अदिचनालूर की कब्रो से लोहे के सूक्ष्म हथियार, औजार और बर्त्तन प्राप्त हुए हैं। इस कब्रगाह से प्राप्त दो तलवारें पत्तों के आकार की हैं जो पूर्णत: प्रारंभिक हालस्टाट-पद्धति के लोहे की तलवारों की सस्मृति हैं। वे वस्तुएँ जिसे छल्ला बतलाया गया है एक लोहे के लगाम के साथ नागपुर के नजदीक के एक स्तूप से खोदकर निकाली गई और इन बातों से मालूम होता है कि दक्षिण में बहुत प्रारंभिक समय मे ही घुड़सवारी का प्रचलन था। इसके अतिरिक्त, हैदराबाद के जनमपेट में हेमेनडोर्फ ने लोहे की एक वस्तु पाई थी जिसे वे सभी प्रकार से एक लोहे का छल्ला ही बतलाते हैं।

इन प्राप्त वस्तुओं के आधार पर भारत मे छल्ले के प्रादुर्भाव-संबंधी संभव-काल पर विचार हो सकता है। साँची के कुछ घुड़सवारों के चित्रों में लटकी हुई रस्सी-जैसी वस्तु को छल्ला बतलाया गया है। मार्शल ने इन्हें चाबुक बतलाया है परन्तु स्मारकों पर लिखी गयी मार्शल और फाउचर की पुस्तको मे वर्णित सर्वोत्तम दृष्टांतों की सूक्ष्म जाँच से पता चलता है कि वे ऐसी कोई वस्तु नही हैं। हर हालत में रस्सी या सभवत: कपड़ों की बनी पूँछ-जैसी वस्तु घुटने पर पैर के बाहर लटकती है। एक हालत मे ये नीचे लटकी होती है और दूसरी हालत में स्पष्टत: पैर के सामने लटकी रहती है, परतु यह फदादार नही बन सकती है, इसलिए चढ़ाई या घुड़सवारी के लिए ये बेकार चीजें होंगी। एक गोलाकार जंगले में यह एक घुड़सवार की कलाई मे बँधा हुआ है और यह बतला देना आवश्यक है कि साँची के २८ घुड़सवारों में केवल छह के हाथो मे रस्सी-जैसा यह बधन है।[१] कुलु से प्राप्त ब्रिटिश-सग्रहालय मे स्थित ताम्र-कलश पर अवस्थित घुड़सवार, रस्सी के फँदे मे अपना पैर टेके हुए है जिससे प्राचीन ढग का एक छल्ला बन जाता है, जो सभवत. ईस्वी सन् की दूसरी सदी का है। दक्षिणभारत से प्राप्त वस्तु जिसे छल्ला बतलाया जाता है, दूसरी सदी से बाद की हो सकती है, और इसी उद्देश्य से बनाई गई होगी यद्यपि इसके सूक्ष्म अनुपयुक्त स्वरूप के कारण यह बहुत अधिक सदेह का विषय बन जाती है।

बाह्य व्यापार के द्वारा भारत मे टीन लाया गया होगा जिसका बहुत अधिक प्रयोग नीलगिरि और अदिचनाल्लूर की कब्रो से प्राप्त ताँबे की मूर्त्तियों और घडो में होता था। इसका कुछ भी प्रमाण नही है कि भारत मे टीन उत्पन्न किया जाता था और न उस समय बर्मा और इंडोनेशिया मे ही इसे उत्पन्न किया जाता था और दक्षिणभारत मे यह ईरान की तरह यूरोप या एशिया माइनर से आया होगा। अलेक्जेंड्रिया और लेवां के व्यापारी भूमध्यसागर से आसानी से टीन लाते होंगे जैसा कि फारस की खाडी के बंदरगाहों से होकर ईरान के टीन की खानो से कारवाँ द्वारा लाया जाता था। भारत मे व्यवहार किए जाने-वाले बहुत-सा टीन सभवत स्पेन से आया। यह टीन सीरिया के व्यापारियो द्वारा अलेक्जेंड्रिया से ईस्वी सन् प्रथम सदी या सभवत. उसके बाद के महत्त्वपूर्ण सुसंगठित स्रोतों से भारत लाया गया।

---

१. मार्शल, जे० एंड फाउचर, ए०, मौन्युमेंट्स ऑव साँची, वॉल० II, प्लेट XXII, XXIX, LVIII एंड LXI, वॉल० III, प्लेट० XXXIX, 8 1b (राइडर ऑन किन्नरी) LXXXII, 4 0b एंड X C, 8 4b (पार्ट ऑव वेस्ट सेस)

उस समय के विदेशी संबधों से संबंधित खोज करने के लिए दक्षिणी अरब सम्भवतः अच्छी जगह है। वहाँ फिलबी-जैसे लेखकों द्वारा वर्णित समोरे-बाबाबाब और कब्रों के बहुत-से संक्षिप्त उल्लेख हैं जो अर्द्ध-महापाषाणिक पद्धति के हो सकते हैं। बहरेइन द्वीप में टीलो के नीचे अनेक कब्रें हैं जो यद्यपि साधारण प्रस्तर के सूक्ष्म टुकड़ो से बनी हैं, उसके ऊपर एक लंबे प्रस्तर की छत है जो उन्हें महापाषाणिक बना देती है। इनका परीक्षण उन्नीसवी सदी के उत्तरार्ध में थिओडर बेंट द्वारा, १९०६-०८ ई० मे प्रीडियक्स और १९२८ ई० मे अर्नेस्ट मैके द्वारा हुआ था।[1] बेंट ने हाथी दाँत की बनी कुछ वस्तुएँ प्राप्त की थी जिन्हें ब्रिटेन के अजायबघर के डा० ए० एस० मुरे ने फोयनिसिएन कलाकृति बतलाया है। प्रीडियक्स की खुदाई से बहुत ही कम चीजें प्राप्त हुई है जिनमे सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु हाथी दाँत का बना एक साँड का पैर था जो उसी तरह का है जिसका बेंट ने वर्णन किया है। मैके ने पाया है कि सभी दो कक्षवाली कब्रों को बर्बाद कर दिया गया है, परंतु उसने अनेक बर्त्तनों, कुछ काँसे के भालाग्र और उनका खोल और हाथी दाँत की वस्तुएं जिनमे बक्सों के टुकडे और कुछ वस्तुएँ जो अज्ञात थी और जिनका ढाँचा हाथी दाँत काटनेवाली वस्तु के जैसा है समिलित है, का उल्लेख किया है। उसने स्तम्भों का काल ई० पू० १६००-१२०० के करीब बतलाया है, जो तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता है।

अगर बहरेइन हाथी दाँत की फोयनिसियन कलाकृति ई० पू० १०वी सदी की है तब हमे ई० पू० १०वी और ७वीं सदी के बीच के इनलोगों और दक्षिणी अरब के लोगों के सामुद्रिक क्रियाकलाप की ओर दृष्टिपात करना होगा जिससे उपनिवेशी लोगो के भारत मे आने की बात मालूम होगी। इस जटिल समस्या के किसी तर्कसंगत समाधान तक पहुँचने के पूर्व अनेक भाषा, शारीरिक मानव-विज्ञान और भौतिक संस्कृति की समस्याओ को सुलझाना होगा। सबसे पहले हमें यह ध्यान मे रखना है कि हमारे सामने एक समस्या है जिसके सही समाधान के ऊपर आर्य-द्रविड़-संबध की हमारी पूरी जानकारी निर्भर करती है, जिसे अभी तक बहुत सहल समझा जाता रहा है।

अब प्रश्न है कि क्या उत्तर-पश्चिम के ये महापाषाण उन सामुद्रिक लोगों से किसी भी तरह संबंधित है कि नही जिसका कि हम वर्णन कर रहे हैं। अभी

---

१. बेंट, थ्योडोर, सदर्न परेबिया, चैप्टर्स 1 एंड 2; प्रीडिऑक्स, द सेपुल्चरल टुमुली ऑव बेहराइन, एनुअल रिप० आर्क० सर्वे इंडिया १९०७-८; मैके, ई० बेहराइन एंड हेमामीयह, ब्रिट० स्कूल ऑव आर्क० इन् इजिप्ट, १९२९

इनकी संख्या बहुत ही कम हैं और इनमें कुछ का ही अस्तित्व है। और इनके विषय में हमारी जितनी जानकारी होनी चाहिए उससे कम ही हमारी जानकारी है। उत्तरी गुजरात के दारापुर मे एक महापाषाणिक संरचना है जो एक प्राचीन चैत्य हो सकती है यह भी हो सकता है कि किसी कब्र को चैत्य मे बदल दिया गया हो, जिसे मण्डव, मण्डप और गृहभाग कहा जाता है जिसमें एक शिवलिंग है, या यही उसकी अवस्था थी जिस समय १८७४ ई० मे वाटसन ने इनका उल्लेख किया था। उन्नीसवी सदी के मध्य मे कराची के जिलाधीश कैप्टन प्रीडी ने कहा था—"अनेक संख्या मे प्रस्तर की कब्रें सपूर्ण पर्वतीय जिले मे वर्त्तमान है, जो हमारी पश्चिमी सीमा तक बढ आयी हैं।" उसने फिर बतलाया था कि "इन कब्रो मे सिर्फ द्वार का अभाव है, नहीं तो बाकी सभी बातें दक्कन और नीलगिरि-सबंधित उल्लिखित बातो की ही तरह है।" इस तरह ये मूकेदार कब्रें नही हैं और इनमे अतर्निहित वस्तुओ की हमे कुछ भी जानकारी नही है, तो भी ये कब्रें सभवत: भूदर्श-क्षेत्र मे ही वर्त्तमान हैं।[1]

और अधिक महापाषाणिक कब्रो की खोज करने के लिए उत्तर मे राजपूताना की तरफ जाना होगा, जिस क्षेत्र का कार्लाइल के बाद थोडा भी पुरातात्त्विक महत्त्व नही रहा है। १८७१ ई० और १८७३ ई० के बीच कार्लाइल ने पूर्वी राजपूताना के प्राचीन स्थानो का दो बार भ्रमण किया। फतहपुर सिकरी के पास उसने अनेक सगोरा-शवाधानो का उल्लेख किया है, लेकिन ये वास्तविक महापाषाणिक कब्रें नही है। मोटे तौर पर ये प्रस्तरो के आयताकार ढेर है जिनमे प्रस्तरों के ही छोटे शवाधान-कक्ष बने हैं और इन कब्रो की छतें भी प्रस्तरो की ही हैं। इन सगोरो मे अधिकतर राख और निस्तप्त हड्डियाँ भरी हुई है जो अंत्येष्टि के अवशेष है। ऐसा प्रतीत होता है कि कार्लाइल के समय मे फतहपुर सिकरी से दक्षिण और दक्षिण-पश्चिम १८ मील की दूरी तक अनेक सगोरे, प्राचीन दीवारें और दूसरे इसी तरह के अवशेष थे। अलवर से २२ मील दक्षिण माचारी मे उन्होने एक लबी पहाडी देखी थी जिसके शिखर रक्षात्मक दीवारो से घिरे हुए थे।[2]

कार्लाइल ने देवसा मे महापाषाण-समूहो को देखा था। यहाँ वे बहुत स्पष्टता से चार प्रस्तर-घेरो का उल्लेख करते है जिनका दुर्भाग्यवश अब कोई भी अवशेष वर्त्तमान नही है। एक घेरे के बीच मे उन्होने एक प्रस्तर की बनी कब्र

१. वॉटसन, जे० डब्ल्यू, ए० रूड स्टोन मॉन्यूमेंट इन गुजरात, इं०ए० एंटीक्वेरी III, १८७४; प्रीडी, जर्न० बॉम्बे ब्रॉच रॉयल एसिआटिक सोसा० V, १८५७

२. कार्लाइल, रिपोर्ट ऑन अ टूअर इन ई० राजपूताना, पृ० ७७,८८ एवं ८६

पाई थी जिसका उन्होंने इस तरह वर्णन किया है—"घेरे की मध्य छत की सतह ६ फुट है और इसकी ऊँचाई करीब-करीब ४ फुट है। इसकी चहारदीवारी चार स्थूल प्रस्तर-खंडों से बनी है जो अंत मे खड़े कर दिए गए हैं। छत का ऊपरी भाग दो पतले प्रस्तर-खंडो से अपूर्ण ढंग से आच्छादित है जो इसके ऊपर और इसके आर-पार रखे गए हैं।" कार्लाइल ने महत्त्वपूर्ण संरचना की एक रूपरेखा भी प्रस्तुत की है जिसका नाम वे 'तोतपुर का आदिमजातीय दुर्ग' बतलाते हैं। उसकी योजना अडाकार घेरे के जैसा प्रतीत होती है जो ऊपर की ओर ४०० फुट लबी और २८० फुट चौडी है। यह माप बाहरी दीवारो की है और एक भीतरी दीवार भी है जो इसके भीतर ३० से ५० फुट तक है। बीच में ५० फुट का एक छोटा-सा घेरा है। इसका कोई लिखित वर्णन नही है बल्कि कार्लाइल की योजना मे, कुछ बहुत लबे प्रस्तर जो दीवारों मे दिखलाए गए हैं, लकीरो द्वारा एक दूसरे से मिला दिए गए हैं। देवसा के घेरो के आकार-सबंधी कुछ महत्त्वपूर्ण अनुमानो के सबंध में वे कहते है—"कुछ लोगो मे एक मैं भी हूँ जो इन मापों के महत्त्व को इनके ऐन्द्रजालिक अर्थ मे समझ सकता है।" इससे प्रतीत होता है कि तोतपुर का आदिमजातीय दुर्ग इन महत्त्वपूर्ण मापों से भरा पडा होगा जिन्हे कनिंघम ने असहानुभूतिपूर्ण ढंग से बतलाया है।[1] इस सपूर्ण क्षेत्र की पुन: गवेषणा आवश्यक प्रतीत होती है। यद्यपि इन शवाधानो और महापाषाणिक वस्तुओ से हमारी समस्या पर कोई प्रभाव पडेगा कि नही, इसमे सदेह है, फिर भी इन वस्तुओ से इसकी जानकारी हो सकती है कि वे वस्तुएँ उनलोगो से सबंधित थी या नही।

अभी तक सिर्फ कश्मीर का महापाषाण, जिसका दूसरे परिच्छेद में उल्लेख किया जा चुका है, और पाकिस्तान के उत्तर-पश्चिम सीमान्तर प्रदेश के अशोक का प्रस्तरचक्र वर्त्तमान हैं। बुर्झाम महापाषाण के सास्कृतिक क्षितिज के बारे मे हमे ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त नही है न हमे यही मालूम है कि यह किस उद्देश्य से बनाया गया था; लेकिन इसका सकेत मिलता है कि सभवत: ई० पू० ४०० और ३०० के बीच नवपाषाणिक-काल की समाप्ति के समय इन्हे इन स्थानो मे लाया गया था। असोटा का प्रस्तरचक्र भी एक पहेलीमात्र ही है, क्योंकि उस स्थान से इस तरह की अन्य कोई वस्तु प्राप्त नही की गई है। मरदान से साढ़े सात मील दूर स्वाबी के मुख्य पथ से उत्तर की तरफ शेवा नामक एक बड़े गाँव तक

---

१. कार्लाइल, रिपोर्ट ऑन अ टूअर इन ईस्ट राजपूताना, देवसा, पृ० १०५-३ एवं प्लेट XII, टोटपुर, प्ले० III

एक रास्ता आता है। इस रास्ते से दाहिनी ओर अशोत नामक एक गाँव के पास प्रस्तरों का एक घेरा है। इस घेरे में ३२ प्रस्तर-खंड हैं। उनमे मोटे तौर पर सभी की ऊँचाई १० फुट है और ये ५७ फुट चौड़े एक प्रस्तर-खंड पर रखे गए हैं। ये प्रस्तर-खड अनियमित ढग से रखे गए है जिनका न्यूनतम फासला ४ फुट ४ इंच और अधिकतम फासला ४ फुट ४ इच है। ये प्रस्तर तुरलडी की एक प्रस्तर-खान से निकाले गए थे जिसकी खुदाई अभी भी जारी है। बीच मे उत्तरी खंड के दो प्रस्तरो के सामने दो छोटे-छोटे प्रस्तर-खड हैं जिससे इसके दरवाजा होने का पता चलता है, लेकिन इसके उद्देश्य और काल-सबधी कुछ भी प्रमाण मौजूद नही हैं। जबतक कि सभी प्रश्नो का समाधान नही हो जाता है तबतक इन उत्तर-पश्चिमी स्मारको मे से किसी को भी किसी भी तरह के महापाषाणिक संस्कृति से संबद्ध करना असभव प्रतीत होता है। (प्लेट XXXII, ए और बी)

उत्तरी भारत के पूर्वी भाग मे, बिहार और उड़ीसा की महापाषाणिक कब्रो और स्मारको की उचित गवेषणा नही हो पाई है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन स्थानों मे महापाषाणिक परपरा वर्त्तमान थी जिसका अस्तित्व वर्त्तमानकाल तक रहा है। प्रस्तरो के एकाश्मक स्मारक और कब्र एक बडे प्रस्तर-खड से ढकी हुई है जो चारो कोनो पर छोटे प्रस्तर-खभो पर अवलबित है। इन खंभो की ऊँचाई करीब १ फुट या १८ इच है। यह उत्तर-पूर्वी परपरा-जैसी प्रतीत होती है जो असम के महापाषाणिक प्रयोगो का विस्तार हो सकती है या इसके विपरीत भी। इन कब्रो की प्राचीनतम सस्कृति का कोई स्पष्ट चित्र नही मिलता है और न उनका काल जानना भी अभी सभव हो सका है। हम सिर्फ यही जानते हैं कि वे ऐसे लोग हैं जिनके पास लोहे के औजार और हथियार थे। इन स्थानो से प्राप्त कुछ दृष्टांत दक्षिणभारत के जैसे नही प्रतीत होते हैं और खासकर डंडे के छिद्रवाले बसूले का दृष्टांत प्राचीन प्रतीत नही होता है।[१]

बिहार के राँची-पठार के आदिकालीन लोहा गलानेवाले असुरलोगो को कुछ लोगो ने ऋग्वेदीय असुर बतलाया है जिन्होने सर्वप्रथम भारत मे लोहा गलाना आरंभ किया। हेमनडोर्फ ने डब्ल्यू रूबेन की पुस्तक 'आइजेनश्मीदे उन्द दामोनेन इन इन्दीन' की समीक्षा मे इन महत्त्वपूर्ण बातो का उल्लेख किया है। वह कहता है कि "असुर

१ राय, एस० सी०, रेलिक्स ऑव द कॉपर एज फाउंड इन् छोटानागपुर, जर्न० बिहार एंड उड़ीसा रिस० सोसा० II, १९१६; डिस्ट्रीब्यूशन एंड नेचर ऑव असुर साइटस इन् छोटा-नागपुर, जर्न० बिहार एंड उड़ोसा रिस० सोसा० VI, १९२०

अपने पड़ोसी मुंडा की अपेक्षा बहुत अधिक पिछड़े हुए हैं" और "यह प्रश्नातीत है कि लोहे का आविष्कार असुरों-जैसे पुरातन संस्कृति के लोगों द्वारा हुआ होगा।" वह उचित ढंग से पूछता है कि आदिमजातियों में पुरातन संस्कृतिवाले लोगों ने ही क्यों लोहे का आविष्कार किया और बतलाता है कि प्राचीनकाल में लोहे का जब सर्वप्रथम प्रयोग प्रारंभ हुआ तब ये लोग किसानों की अपेक्षा, जिनका जीवन अपने उपजाऊ खेतों में ही बँधा रहता है, दुर्गम पहाड़ी रास्तो से लकडी का कोयला और खान से कच्ची धातु प्रस्तुत करने में अधिक समर्थ सिद्ध हुए।[1] फिर भी सपूर्ण विश्व मे लोहारों की स्थिति का प्रश्न व्यापक और जटिल है, जिसका विवेचन यहाँ अपेक्षित नही।

बिहार मे संरचना-अवशेषो के दृष्टात भी मिलते है जिन्हें समय-समय पर बहुत प्राचीन बतलाया गया है। ब्लॉच ने लौरिया नदनगढ के कुछ शवाधान-टीलों को वैदिक शवाधान-टीला बतलाया था; परन्तु एन० जी० मजुमदार ने बाद की अपनी खुदाई से इन्हे उत्तरवर्त्ती मौर्यकालीन या पूर्ववर्त्ती शुंगकालीन ईंट के बने स्तूप सिद्ध किया है, जिनका सबध पार्श्ववर्त्ती लोगो के जीवन से था, जिनका काल शुंगकाल से बहुत पहले नही प्रतीत होता है। दूसरा स्मारक राजगृह की दीवार है जो वर्त्तमान राजगीर मे है, जिसकी परिधि, नगर के स्थलो को घेरे हुए छोटी-छोटी पहाडियो के शृंगो के साथ २५ मील लबी है। यह दीवार करीब १२ फुट मोटी और १० फुट ऊँची है और उसके सामने बडे-बड़े स्थूल प्रस्तर-खंड और यत्र-तत्र बाहर निकली हुई बुर्जे हैं। सबसे प्राचीन बाह्य दीवारों का काल ई० पू० ६ठी सदी हो सकता है क्योकि ये नि.सदेह शिशुनाग राजा अजातशत्रु की राजधानी की दीवारें हैं। तो भी खुदाई द्वारा इस सभव प्रतीत होनेवाले काल के सत्यापन की जाँच नहीं की गई है और वास्तव मे ऐसा करना बहुत कठिन है।

फिर एक बार दक्षिण की ओर लौटने पर, ई० पू० प्रथम सहस्राब्दी की मध्य सदी के अस्पष्ट प्रमाणो का उत्तर जो भी हो, ई० पू० २०० के लगभग तक द्रविड़-भाषा बोलनेवाले कुछ सुगठित लोग थे जो संपूर्ण अधित्यका को, पेनर की सामान्य रेखा, बेलारी के पश्चिम और तुंगभद्रा तक, अधिकृत कर चुके थे और यही उनकी सीमाएँ थी। जैसा कि ह्वीलर बतलाता है—"अगर ब्रह्मगिरि का प्रमाण सर्वमान्य है, तब सिकंदर के काल के एक सदी के पश्चात् किसी समय डेक्कन की अधित्यका में पुरातन, मुख्यतः प्रस्तर-कालवाले लोगो पर लौहकालीन महापाषाणिक संस्कृति

१. हाइमेंडॉर्फ, सी० एफ०, मैन, ११४, १९४३

का अतिक्रमण हुआ होगा जिसने नाटकीय ढंग से लोगों में उत्प्रेरणा पैदा की होगी।"[१] इस स्थान पर और पहले अपने ब्रह्मगिरि की रिपोर्ट में वे यह स्पष्ट कर देते हैं कि यह उत्प्रेरणा प्रसार-सबंधी अवसर प्रदान करने के लिए उत्पन्न की गई थी और ऐसी बातें ई० पू० २३२ मे अशोक की मृत्यु से उत्पन्न अशांति और कमजोरी के कारण हुई थी। इस नई सस्कृति के प्रसार की सभी बातें जो द्रविड़-भाषा से पूर्णतः जुडी हुई है। अनेक सदी पूर्व के उत्तर के आर्यों के समान हैं। किसी भी वैकल्पिक सिद्धांत के पोषण के लिए लोहे और महापाषाण के अकस्मात आगमन—और सभी जगह लाल और काले बर्त्तनो के साथ और द्रविड-भाषाओ के साथ—अन्य किसी बर्त्तन या भाषा के साथ नही—इनके सबंधो की विवेचना करनी पडेगी तथा सुदूर दक्षिण से उत्तर की तरफ उनके प्रसार की भी विवेचना करनी होगी।

तुगभद्रा के ठीक दक्षिण अशोक के प्रस्तर-लेख-क्रमो के बावजूद, इन हिस्सो मे मौर्यों का नियत्रण बहुत ही कम था और सास्कृतिक प्रभाव कुछ भी नही था। इसीला (ब्रह्मगिरि), स्वर्णगिरि (मास्की ?) और ऐसे स्थानो मे कुछ ही राजनीतिक पदाधिकारी नियुक्त थे। वे सीमा की स्थिति पर कडी नजर रखते थे और स्थानीय सरदारो को फुसलाते या धमकाते रहते थे। केंद्रीय सत्ता से उन्हे जितनी तात्कालिक सहायता मिलती थी . उसी पर वे निर्भर थे। प्रस्तर-लेख सीमावर्त्ती सूचना-पट थे जो सामान्य राजकीय नियत्रण से दूर थे। जब द्रविडलोग उत्तर की तरफ बढे तब स्पष्टत. मौर्यों का कोई विरोध नही हुआ और उन्होने आसानी से सपूर्ण डेक्कन को उत्तर की ओर से सिकदराबाद तक कब्जे मे कर लिया और इसके पश्चात् वेनगगा की तरफ बढ़े जहाँ जुनापानी तक शवाधान-कलश और नागपुर के पास पिपलगाँव तक महापाषाण प्राप्त हुए है। इस विस्तार-नीति की प्रतिक्रिया कभी-न-कभी अवश्य हुई होगी। अनुमानत. ई० पू० मध्य प्रथम सदी तक इन द्रविडो का एक नाम देने मे हम समर्थ हो सकेंगे और सिर्फ एक ही सभव समाधान है और वह यह कि वे लोग प्राचीनकाल के कोल थे और अश्मक और विदर्भ के आर्यों से प्रतिक्रिया प्रारभ हुई होगी जो प्राचीन आध्र रहे होगे। यदि आध्र अश्वक से संबधित है तब उनका परपरागत सबध अधक महाभोज और हैहय-यादवो से रहा होगा और प्रादेशिक और जातीय रूप मे यह तर्कसगत अनुमान है। किसी भी तरह ई० पू० ३० से १२ तक के लगभग प्रथम शातकर्णी के काल तक नि संदेह महारथी सरदारो का एक राष्ट्रसघ रहा होगा जो कोलो को रोकने मे काफी समर्थ था। फलत:, ज्योही

१. ह्वीलर ब्रह्मगिरि एड चद्रावली, १९४७, पृ० ३०४

सातवाहन-राजवंश का प्रभुत्व बढ़ा, उन्होंने आक्रमण कर ब्रह्मगिरि के दक्षिण आंध्र, चंद्रावली, बनवासी तथा कृष्णा और गोदावरी पर नियंत्रण करने के लिए पूर्वी समुद्री किनारों पर कब्जा कर लिया।

पूरब की तरफ यह फैलाव बन्दरगाहों और समुद्र से इन नदियों के मार्ग से होनेवाले व्यापार की रक्षा करने के लिए था। वे पहले ही, चेरराज्य से उत्तर-पश्चिमतटीय व्यापार पर नियंत्रण करने के लिए शकों से भीषण रूप में लड़ चुके थे और अब इनका उद्देश्य उत्तर से कलिंग और चोल या दक्षिण से पांड्यों की बढ़ती हुई शक्ति को रोकना था। इस प्रयास मे वे सफलीभूत हुए और बम्बई के पास के सौवीर और कल्याण बदरगाहों से लेकर, कृष्णा के तट के पिटीद्र और गोदावरी के तट के अलोसिगनी (कोरिंगा ?) तक, तागरा (तेर) होकर आंध्र सड़क तक व्यापार के लिए, एक नए समुद्री तट का उन्होने उद्‌घाटन किया जिससे कि पश्चिमयी समुद्री तट के व्यापार के अवपतन के पश्चात् भी वे पूर्व की तरफ अपना प्रभाव जमा सके और रोम के साथ महत्त्वपूर्ण व्यापार करने मे समर्थ हो सके।

पुरातात्त्विक तौर पर एक विशिष्ट बर्त्तन को 'आन्ध्र' कहा जाता है, जिसका सांस्कृतिक ढग से उनसे बहुत कम सम्बन्ध है। मुख्यत· उल्टे पकाए गए लाल और काले बर्त्तनो का नाम ह्वीलर ने 'आध्र-बर्त्तन' बतलाया था, क्योंकि ये ब्रह्मगिरि और चन्द्रावली मे व्यवहृत होते थे, जब इन क्षेत्रों मे आध्रों की तूती बोलती थी। परन्तु आध्रो के सबसे विशिष्ट बर्त्तनो मे से एक लाल रग का बर्त्तन, नासिक मे प्राप्त सकलिया के ९वें प्रकार के नौतल कटोरे और ब्रह्मपुरी के ३७ वें प्रकार का बर्त्तन है। ह्वीलर द्वारा प्राप्त ब्रह्मगिरि के टी १७७, चन्द्रावली के ए ४६ और बेलगाँव के नजदीक माधवपुर मे पाए गये दूसरे बर्त्तन भी विशिष्ट सातवाहन-आध्र-बर्त्तनो के दृष्टात हैं।[1] नासिक, ब्रह्मपुरी और माधवपुर मे ये बर्त्तन ई ट के बने घरो से सम्बन्धित है जो विशिष्ट प्रकार के खपड़ों से छाए हुए थे। इन घरो मे दो छिद्रो से होकर लकडी या लोहे की कड़ी लगी हुई थी। इन खपड़ों की दूसरी ओर प्रत्येक किनारो पर एक कटाव है जिससे कि खपडे एक दूसरे पर रखे जा सकें। इन घरों की नीव सामान्यत· कडी नीली मिट्टी पर बैठाये गये ककड़ों की मोटी परत के ऊपर ई टो को बैठाकर दी जाती थी। वास्तविक सातवाहन-बर्त्तनों की अगर थोड़ी भी सजावट होती थी तो उनका ढाँचा कटावदार या छापेदार होता

१. संकलिया एंड देव. एक्सकेवेशंस ऐट नासिक एंड जोर्वे, फिग० १४. संकलिया एंड दीक्षित एक्सकेवेशंस ऐट ब्रह्मगिरि. फिग० १७; ह्वीलर, ब्रह्मगिरि एंड चन्द्रावली, फिग० २९ एंड ४८; गॉर्डन, डी० एच० एंड एम० ई०, द कल्चर्स ऑव मॉस्की एंड माधवपुर, पृ० ६१-२

था, और वे चित्रित नहीं की जाती थीं। ह्वीलर द्वारा बतलाये गये चित्रित और गेरुए रंग के 'आन्ध्र-बर्त्तन' की विधि दक्षिण भारतीय है। इनका उद्‌गम-स्थान कोयंबटूर जिला और उसके निकटवर्ती भाग हैं जहाँ ये महापाषाणिक और शवाधान-कलशों के साथ पायी जाती हैं।

प्राक् और आद्य-इतिहास के तत्त्वों को उस बिन्दु तक ले जाया गया है जहाँ वे प्राचीन ऐतिहासिक काल से संबंध स्थापित कर सकें। इन सभी बातों से एक तस्वीर हमारे सामने उपस्थित होती है जो उतनी स्पष्ट और पूर्ण नहीं है जितना होना चाहिए लेकिन उनलोगों को उनके भिन्न-भिन्न सांस्कृतिक स्तरों में निश्चित रूप से मान्यता प्रदान करता है जिन्होंने भारत को ऐतिहासिक बनाया। हम सिर्फ उन स्तरों, जैसे बौद्ध-गुफाओं के प्रस्तर खंडों में अनुकरण की गई लकड़ी की वास्तु-कला का अनुमान लगा सकते हैं, परंतु ये स्तर स्पष्ट हैं और इनका आधार भी स्पष्ट है। मौर्यों की नीति, शुंगों की कला, सातवाहनों की सप्रभुता की बात, दक्षिण के द्राविड़लोगों के बाह्य संबंधों की बात अकस्मात् अपने रूप में नहीं आ गई। उनका रूप अटूट घटनाओं के क्रम से स्थापित हुआ होगा। उन सभी सांस्कृतिक विशेषताओं पर जिनके कारण भारत अतिप्राचीन माना जाता है, कोई भी दृढ़ आधार नहीं बन सकता है और हमारे प्रयासों से कोई महत्त्वपूर्ण बात नहीं मालूम हो सकती है। प्राचीन इतिहास को इसी तरह की दृढ़ पृष्ठभूमि प्रदान करने के लिए इस पुस्तक की रचना की गई है।

●

प्लेटों एवं चित्रों का विवरण

प्लेट	I	लैवलायशी किस्म के शल्कल ब्लेड एव नुकीले पत्थर, ऊपरी पंक्ति, बाद के सोअनकालीन नुकीले पत्थर एवं ब्लेड, पश्चिम पंजाब, निचली पक्ति बाएँ, नुकीले पत्थर एवं शल्कल ब्लेड, येरा-ग्रापालेम, नल्लामल्लाई श्रेणी होकर जाने वाला दर्रा दोरनाल-आत्मकूर दर्रा के पूर्वी मुहाने के निकट, दाहिने, नुकीले पत्थर, गु डला ब्रह्मेश्वरम्, नीचे, बनाते समय टूटी हुई प्रस्तर-मुद्रिका, नन्दीकाणम् दर्रा, आंध्र प्रदेश ।
,,	II	बुन्देलखड एव बघेलखंड के पर्वताश्रयों मे ए० सी० कार्लेले द्वारा एकत्रित लघुपाषाण जो कि पूरे ज्यामितीय नमूने दिखलाते हैं ।
,,	III	(अ) कराची के निकट ल्यारी नदी के आसपास से प्राप्त शिल्प-तथ्य जिनमे चद्रिका एव समलम्ब दिखलाए गऐ हैं (बाएँ), हड़प्पा किस्म के सकरे नुकीले पत्थर एव शल्कल ब्लेड तथा दो एपी-लैवेलायशी नुकीले पत्थर (दाहिने) । (ब) हैदराबाद के रायचूर जिले मे प्राप्त बैसाल्ट के नवपाषाणिक प्रसार कुठार; बाएँ वाली जोडी तराशे हुए किनारो वाली है, दाहिने वाली जोडी घर्षित एवं परिष्कृत किनारो वाली है ।
,,	IV	काश्मीर के बुर्जहामा नामक स्थान पर महापाषाणिक वस्तुएँ । (अ) मे आदमी के ठीक बायी ओर डी टेरा की खाई दिखलाई गई है किन्तु सबसे ऊँचे पत्थर से छोटा है ।
,,	V	ऊपर, राणा गु डाई के 'बुल' स्तर से प्राप्त लारालाई II युग के राँसवाले तेजडिया बर्तन, बाएँ एवं दाहिने, उत्तरी बलुचिस्तान के पेरियानो घु डई से प्राप्त पेरियानो III काल के दो बीकर, नीचे मेही से प्राप्त कुल्ली शैली के कटोरे एव तश्तरियाँ ।
,,	VI	मध्य बलूचिस्तान के सोहर डंब से प्राप्त बर्तन जिन पर (अ) मछली एवं (ब) पंखो वाले दानवाकार जन्तु की बहुरंगी आकृतियाँ बनी हैं ।

प्लेट VII जोब देवियो की चार आकृतियाँ जैसी पेरियानो घुंडई एवं अन्य स्थानो पर पाई गई है, तथा घुटने के बल अथवा साधारण ढंग पर बैठी मूर्तियाँ। ये सब बलूचिस्तान की कच्छी सतह पर छल-गढ़ी नामक स्थान पर पाई गई हैं।

„ VIII असाधारण किस्म की सिधु घाटी की मुहरे (क) बकरा (ख) गिलगमेश की शैली मे शेरो को वशीभूत किए हुए नायक, (ग) मनुष्य को रौंदते हुए साँढ, (घ) भैसे पर भाले से प्रहार करते हुए मनुष्य, (ङ) पवित्र वृक्ष एव सीगो वाले स्तम्भ के साथ मन्दिर के समक्ष साँढ पर छलाग लगाता हुआ मनुष्य, (च) उरु बैल जिसके सामने अजीब तरह का एक पूँछवाला मानव अथवा दानव खडा है (छ) पक्षी (ज) पीपल के वृक्ष मे देवता का दृश्य, पुजारी, मनुष्य की आकृतिवाला पशु एव सात पुजारिनें, (झ) सगमरमर की विदेशी मुहर जिसपर दो बारहसीगे बने है, कोई स्पष्ट दृष्टान्त नही किन्तु पूर्वी भूमध्यसागरीय आकृति, (ञ) मनुष्य को सीग मारता हुआ भैसा, सभवत भैंसों से लडने का दृश्य। ये सभी मोहेजोदडो से प्राप्त हुए है केवल (ग) चन्हुदडो से मिला है।

„ IX मोहेजोदडो के काँसे के बर्त्तन एव पशु। बाएँ, छोटा बर्त्तन, काँसे का, ३.३५ ई० ऊँचा, केन्द्र मे, ऊपर काँसे का बकरा और नीचे काँसे का भैंसा, दाहिने, नौललयुक्त ताँबे का कटोरा।

„ X मोहेजोदडो से प्राप्त हडप्पाकालीन पकी हुई मिट्टी की मूर्त्तियाँ। बाएँ एव ऊपर केन्द्र मे दाढीवाले पुरुषो की मूर्त्तियाँ; केन्द्र एव दाहिने स्त्रियो की मूर्त्तियाँ जिनमे कधे, सिरस्त्राण, ऊँची हँसुली, एक हार तथा कमर-सकीर्ण वस्त्र; नीचे केन्द्र मे मार्जारी सिर।

„ XI चूना पत्थर की मूर्त्तियाँ जो हडप्पा से प्राप्त हुई है। बाएँ ३.५ इ० ऊँचा टोरसो, कंधो पर गड्ढे, दूसरी जोडी बाँहो के लिए; दाहिने, ३ ९ इ० ऊँचा नर्तक, शायद पूर्ण होने पर महा-लिंगी होता।

„ XII मोहेजोदडो से प्राप्त काँसे की महिला-मूर्त्तियाँ। दाहिने अधिक विख्यात मूर्त्ति जो कि ४ ५ इच ऊँची है, बायें, उसी तरह की दूसरी मूर्त्ति जिसकी आकृति पहले से अच्छी नही है। रूपरेखा

,, भी कम आस्ट्रालायड । ये नर्तक भी हो सकते हैं किन्तु यदि ऐसा है भी तो वे बहुत ही विशिष्ट प्रकार के हैं ।

प्लेट XIII मोहेंजोदड़ो एवं खुराब से प्राप्त पश्चिमी ढंग के हथियार, बाएँ काँसे की छेदवाली कुल्हाडी, ऊँट की आकृति का हत्था जो कि ७.२५ इंच लंबा है तथा खुराब से प्राप्त हुआ है; दाहिने १८.५ इंच लम्बी ताँबे की कटार, नीचे १०.१५ इंच लम्बा एवं छेदवाला बसूला; ये दोनों मोहेंजोदड़ो की ऊपरी सतहों से प्राप्त हुए हैं ।

,, XIV झुकार युग की मुहरें एवं हथियार । ऊपर सेलखड़ी मुद्रा जिस पर आइबेक्स एवं बारहसीगे की आकृति बनी है; बाएँ बर्त्तन के मनके के दोनों ओर क्रास के चिह्न तथा चिड़ियो की आकृतियाँ, दाहिने, पत्थर की मनकानुमा मुहर के एक ओर अजीब तरह का पीठ पर कुकुदवाला पशु जिसकी सीधी खडी सीग दिखलाई पडती है और दूसरी ओर हिट्टाइट नमूने की फदो की कडी, केन्द्र मे काँसे के राजदड का सिरा और ताँबे के छेदवाला कुठार ।

,, XV झुकार युग के चित्रित बर्त्तन । चन्हुदडो से प्राप्त ये चार ठीकरियाँ झुकार युग के सबसे उत्तम नमूने प्रस्तुत करती हैं ।

,, XVI (अ) रावी I के पाँच पादप बर्त्तन, निचले सतह के शवाधान-एच०, हड़प्पा; (ब) रावी II के तीन सजे कलश, ऊपरी सतह शवाधान-एच० हड़प्पा ।

,, XVII तीन कटोरे, बीकर तथा प्रसाधन (?) घट जो भूरे रंग के उकीर्ण झंगार बर्त्तन हैं, (लगातार) चित्रित त्रिहनी बर्त्तन की तीन ठीकरियाँ, ऊपर और दाहिने, चन्हुदडो से प्राप्त; बाएँ तथा नीचे त्रिहनी से ।

,, XVIII धुँआधार आश्रय, पचमढी, मध्यप्रदेश, यह बहुत सी चित्रकारियो वाले आश्रय का अच्छा नमूना है जिनमे अधिकाश तृतीय श्रेणी के हैं ।

,, XIX (अ) तृतीय श्रेणी के कई तलवारधारी मनुष्यो की आकृतियाँ प्रारम्भिक तृतीय श्रेणी के तीरंदाजों पर उत्कीर्ण कर दी गई हैं; सबके ऊपर एक विशाल सींग वाले दानव के पैर दिखलाई

पड़ते हैं जो पचमढ़ी के निकट बोरी से प्राप्त हुए हैं। (ब) ऐसे तीरंदाज जिनका नेता हार गया है तथा उसकी तलवार, ढाल और झंडा नीचे गिर पडे हैं। इन तीरंदाजो पर घुड़सवार और पैदल सवार आक्रमण कर रहे हैं, जम्बूद्वीप न० ३, पचमढी के निकट।

प्लेट XX ऐसे योद्धा जिनके हथियार, कपडे, बाल वैसे ही हैं जैसा कि महादेव पर्वत, पुराना महादेव मदिर, हरशनाथ, जैपुर, राजपुताना मे १० वी सदी के मध्य मे पाए जाते थे।

,, XXI (अ) महिला एव बच्चा झोपडी मे बैठे; सामने की जमीन पर दो बेंच, दीवालों तथा थैलो के चारों ओर बर्त्तन रखे गए हैं, तरकश तथा तीर छत से लटके है, एक महिला तकुआ पकडे है, तृतीय श्रेणी, मारोदेव, पचमढी। (ब) बडी मूछोवाला सरदार चाँदनी के नीचे अपनी पत्नियो के साथ बैठा है, सभवत १२ वी सदी, सोनभद्रा, पचमढी के निकट।

,, XXII (अ) ऊपर विशालकाय व्यक्ति का एक भाग जो रस्सी से बँधे बाघ को ले जा रहा है (या सभवत सामान्य आदमी एव बाघ का बच्चा), नीचे प्रारभिक ४ थी श्रेणी के घुडसवार एव तीरदाज व्यक्ति, दौरी, महादेव पर्वतश्रेणी। (ब) लबी गर्दनवाले घोडे पर चढा सवार जिर्राफ की तरह लम्बी गर्दन वाले साभर का पीछा कर रहा है, आदमगढ खदान, होशगाबाद, मध्यप्रदेश।

,, XXIII (अ) पत्थर पर खुदाई जिसमे हाथी पर सवार एक पौराणिक व्यक्ति दिखलाया गया है। उसके दाहिने हाथ में एक आदमी है और बाए हाथ मे एक औरत। दाहिनी ओर खरोष्ठी अभिलेख—असोरक्षित और नीचे सी, मडोरी, उ० प० सीमा प्रान्त, पाकिस्तान। (ब) जुआवाले बैल ऊपर से दिखलाई पड रहे है, मडोरी।

,, XXIV (अ) घुडसवारो की दो भद्दी नक्काशियाँ, घडियाला, पश्चिम पंजाब, (ब) निरूढ मानव, एक बैल तथा अन्य चिह्न, घडियाला।

,, XXV (अ) पत्थर काटकर बैल बनाया गया है और सीगो के साथ धनुष संलग्न हैं और दोनो के बीच एक चिह्न है; ऊपर अन्य कटाई की वस्तुएँ जिनमे एक चिडिया भी है, कुपगल्लू, बेलाडी।

(ब) एक आदमी, जिसके इरादे स्पष्ट हैं एक औरत के बाल पकड़े है, कुपगल्लू ।

प्लेट XXVI (अ) एक तलवारधारी व्यक्ति एक लहगा पहने महिला को भगा कर ले जा रहा है, गडब, उत्तर पश्चिम सीमा प्रदेश, पाकिस्तान (ब) घुडसवार, नर्तक एवं पशुओ के चित्र; बाएँ नीचे, तीन आदमी एक महालिगी और दूसरा कुठार से लैस, दोनों मे से प्रत्येक ने एक महिला को पकड रखा है, बेंकल जंगल, रायचूर ।

,, XXVII (अ) बिठूर प्रकार की तांबे की काँटेदार बर्छी, हौर्नीमैन संग्रहालय । (ब) शृंगिका तलवार जो २५ इंच लबी है, फतहगढ, उत्तर प्रदेश, ब्रिटिश म्यूजियम । (स) सींगोवाला चाँदी का मडलक, गगेरिया ढेर से प्राप्त, मध्यप्रदेश, ब्रिटिश म्यूजियम ।

,, XXVIII (अ) ऊपरी गोदावरी के जोरवे तथा (ब) प्रवार नदी के तट पर नवासा नामक स्थान से प्राप्त ताम्रपाषाणिक चित्रित बर्त्तन ।

,, XXIX चित्रित भूरे बर्त्तन, (अ) सीधे किनारे वाला पात्र, पानीपत (ब) छिछला कटोरा, अहिच्छत्र । बर्त्तनो के ये बहुत सामान्य आकार हैं ।

,, XXX (अ) नाशपाती जैसा शवाधान कलश, ३.२ इ० ऊँचा, जो पोरकलाम से प्राप्त हुआ है, इसमे सात पात्र, कुछ अस्थियाँ, कई मनके तथा लोहे का एक छुरा है । यह एक बडे पत्थर से ढके गढे मे था जिसके चारो ओर पत्थर का वृत्ताकार घेरा है (ब) टब के आकार के तीन सैक्रोफागी बर्त्तन जो डॉलमेनायड ताबूत मे हैं, ये मूल रूप मे पत्थर से ढके थे, सानूर, चिंगलपेट, मद्रास ।

,, XXXI (अ) मास्की के "सुल्तान मुहम्मद मैदान" में खोदे गए शवाधान का एक सामान्य दृश्य जिसमे एक बढाया गया तथा बहुत से अन्य पात्र शवाधान दिखलाए गए है (ब) नम्य शवाधान एवं बेलनाकार ताबूती बर्त्तन, मास्की शवाधान, रायचूर, हैदराबाद ।

,, XXXII पत्थर के वृत्त के दो दृश्य, असोटा, मर्दान जिला, उ० प० सीमा प्रदेश, पाकिस्तान ।

चित्र १. सूखे एवं भीगे मौसम का संबंध बतलाता है और अभिलिखित श्रेणियों को प्रदर्शित करता है जो कि इस मौसम-परिवर्तन-शृंखला मे बैठाए जा सकते है। पत्थर के औजार अधिकांशतः कंकड़ियों की परत मे या उसके बिल्कुल निकट पाए गए हैं।

,, २. लैवेलायशी किस्म के शल्कल—१ एवं २ से प्राप्त, भेड़ाघाट, मध्य प्रदेश; ३-५ अदिलाबाद जिला, हैदराबाद; ७, ९ एवं १० गुंडला ब्रह्मेश्वरम्, आध्र प्रदेश; ६ एव ८ येराकोंडा, पालेम, आध्र प्रदेश; ११ एवं १३ खाडीवली, बम्बई, १२ एव १४ सोन नदी, पंजाब।

,, ३. लघुपाषाण युग की अधिकाश सामग्री प्रस्तर कुठारो का वितरण दिखलाने वाला नक्शा। यद्यपि सिंधु के पार दो तरह के कुठार नाल एव राणा घु डई मे प्राप्त हुए हैं जो दिखलाए नही गए है, ज्ञात एव प्राप्त वस्तुएँ उत्तर-पूरब एव दक्षिण मे भरी पडी है तथा ये दक्कन ट्रैप पर विरल है।

,, ४. उपयोगी शल्कल ब्लेड उद्योग के दृष्टान्त—१ से ७ तक नवादा टोली से प्राप्त, ८-१२ जारवे से, १३-१७ प्रवार सगम से; १८-२० नासिक से। १ और २ मे चोटीदार निर्देशक शल्कल हटाए जाने के पहले और बाद की अवस्था मे दिखलाए गए है; ५, १२, १६ एव १९ अर्धचद्राभ है; ६ बहुत ही लम्बा बनाया गया समलम्ब है और २०, जिसे समलंब वर्ग मे रखा गया है यह दिखलाता है कि समलब एव अर्धचद्राभ के बीच कितना कम फर्क है।

,, ५. एक नक्शा जो कि सिध एव बलूचिस्तान मे कृषक समुदायो का वितरण प्रस्तुत करता है। इन ममुदायो के बर्तन भिन्न प्रकार के है तथा इनके नाम स्थानो के नाम पर है जैसे कि आमरी एव कुल्ली।

,, ६. लोरालाई के पुन निर्मित कटोरे एव पेरियानो बर्तन-१ एवं ८ जुडवें ढेर से, २ डुकी से, ३-५, ७, ९ एव १० राणा घुंडई से, ६ पेरियानो घु डई से। सभी पीले पर बादामी रग के हैं केवल ५, ६, ९ एवं १० लाल पर काले-रंग के है।

,, ७ आक्रमण काल तक बलूचिस्तान एव सिध मे मुख्य संस्कृतियों का अस्थायी कालक्रम बतलाता है। मोटी लकीरें केचीबेग आमरी किसानो का विस्नार दिखलाता है, इसके अतिरिक्त हड़प्पा संस्कृति, पेरियानो III के लोगो तथा आर्य आक्रमणकारियो का भी।

चित्र ८. यह तालिका सिंधु घाटी में हुई घटनाओं की प्रगति का आसपास के इलाको के साथ सबंध बतलाती है जो कि हड़प्पा के उत्थान एवं पतन के समय हुई थीं। साथ ही मोहेंजोदड़ो मे एक फीट नीचे मैके की बतलाई स्थितियो के बारे मे जिन्हे उसने अपनी रिपोर्ट मे अभिलिखित किया है तथा स्टुअर्ट पीगॉट ने विवरण दिया है।

९. एक अस्थायी कालक्रम जो भिन्न भिन्न जाति के लागों के आगमन का क्रम बतलाता है। ये अपने बर्तनों के आधार पर ही पहचाने जाते थे। इनका काल आक्रमण काल से लेकर १ली सदी तक है। ई० पू० छठी शताब्दी मे लोहे की प्राप्ति की कल्पना का केवल साहित्यिक प्रमाणों से ही पुष्टीकरण होता है।

,, १०. हड़प्पा एवं रावी संस्कृति की ठीकरियो के बीच तुलना, ४,५,७,८, ११ एव १२, कुछ रूपर से २,३, से १० तक, एव बारा ६ एवं ६, रूपर से भी ठीकरियाँ, १४ एव १५ और बारा, १३, १६, १७ एव १८ जो हड़प्पा किस्मो से भिन्न हैं। सख्या १ नुकीला आधार दिखलाता है जो कि उत्तरकालीन हड़प्पा सस्कृति का जामपान है।

,, ११. जोरवे से प्राप्त कटोरा (१) रगपुर के कटोरे से तुलना की गया है। (२)जोरवे से पूँछवाली बर्फीदार ठिकरियाँ, ३ एव ४ रंगपुर के उसी तरह के नमूने से तुलना की गई है, ५।

,, १२. चित्र १ से ३ सिंघनपुर, रायगढ; ४ एव ७ काब्रा पहाड़, रायगढ़, बाकी महादेव पर्वतमाला के आश्रमो से।

,, १३ महादेव पर्वत से प्राप्त उत्तरकालीन द्वितीय श्रेणी वर्ग जिनमें ऊपर गलपट्टे धारी तीरंदाजो के जुलूस दिखलाए गए है, केंद्र मे, एक विशाल शेर के सामने खड़ा एक आदमी, नीचे, योद्धा अथवा गिल-गमेश की आकृति वाला मनुष्य जो कि शेर (?) को वशीभूत कर रहा है। तथा एक जगली साँढ़ जो कि रक्षक के रूप मे है।

,, १४. ऊपर मधु निकालने का दृश्य है जिसमें लोग मधुमखियों के छत्तें तक पहुँचने के लिए बाँस की सीढ़ी का व्यवहार कर रहे हैं।

,, १५. मध्य भारत के पश्चिम मे विशाल भारतीय मरूभूमि एवं विन्ध्य जंगल के बीच मुख्य रास्ते दिखलाने वाला नक्शा। लगातार खींची गई लकीरें आजकल की सड़कें दिखलाती हैं तथा टूटी लकीरें उन

प्राचीन रास्तों के बोधक हैं जो कि आधुनिक रेलवे लाइन के पास होकर ब्रोच तथा उज्जैन के बीच जाती थी। ये नवद महेश्वर एवं नासिक-नेवासा क्षेत्रों के साथ रगपुर का संबंध ... ।

चित्र १६. अश्मयुगो का एक अस्थायी कालक्रम उत्तरकालीन ताम्रपाषाणिक संस्कृतियों के साथ एन० बी० पी० बर्तन, लाल एव काले बर्तन तथा दक्कन के नवपाषाणिक बर्तनो का सबध बतलाता है।

,, १७. तांबे की ढेरो से प्राप्त वस्तुओ का संग्रह जिसमे (१) पुरुषविध आकृति अथवा शिवराजपुर से हथियार फेकना दिखलाया गया है, २ एव ३ फतहगढ से प्राप्त तलवार एव कटार, ४ एव ५ सरथौली एव बिसौली से प्राप्त कांटेदार बर्छी, ६ पोडी से प्राप्त अनामिका, ७ एव ८ शूलाग्र एव तिरछा ब्लेड वाला कुठार, सरथौली से प्राप्त, ये सभी स्थान गगा-यमुना दोआब मे हैं। ९, १२ एव १३ गगेरिया से प्राप्त एक कुठार एव दो लबी टांकी। १० उडीसा मे दुनरिया से प्राप्त कंधेदार टाकी, ११ उडीसा मे भागरापीर से प्राप्त कुठार के आकार का ताम्र-पत्र। इन वस्तुओ के प्राप्ति-स्थान के लिए चित्र स० २० देखें।

,, १८. कुरुक्षेत्र मे प्राप्त टांकी के आकार की वस्तु जिसमे गोलाकार गढ़ा है।

,, १९. उत्तर-पूर्व भारत का एक मानचित्र जिसमे दो लकीरो के द्वारा तांबे की खानो वाले क्षेत्र से लेकर बनारस तक तथा कोशाबी से सुक्तिमती, विदिशा एवं माहीष्मती होकर दक्षिण जाने के मुख्य रास्ते दिखलाए गए है तथा टूटी लकीरे भीटा से त्रिपुरी और गगेरिया एव रामटेक तक के रास्ते दिखलाती हैं। यह नक्शा यमुना एव नर्मदा नदी के किनारे व्यापारिक केंद्र के रूप मे कोशाबी एवं त्रिपुरी का महत्त्व दिखलाता है।

,, २०. १९५१ तक प्राप्त सभी ताम्र-वस्तुओ का नक्शा जिसका सकलन बी० बी० लाल ने किया है। केवल ब्रह्मगिरि तथा महेश्वर नवदा टोली एव नेवासा की हाल की प्राप्त वस्तुओं का वर्णन नही है।

,, २१ संगोरा शवाधान एवं लोडो स्थानो का वितरण। इस नक्शे मे निम्नलिखित का नाम नही लिखा गया है क्योकि इनका वर्णन अत्यल्प है :—संगोरा स्थान, लोहे के हथियारो के साथ जिसका पता फेयरसर्विस ने क्वेटा के दक्षिण १० मील पर लगाया था, वे सगोरे जिन्हे स्टीन ने लोरालाई से २७ मील पर चपरकाई नामक

स्थान पर देखा था। यहाँ संगोरा शवाधान पात्र भी मिले हैं।

चित्र २२. त्रिहुनी, लोंडो तथा तत्सम बर्त्तनों की ठीकरियाँ। १ त्रिहुनी की ठीकरी तथा २ और ६ से तत्सम ठीकरियाँ, राणा घुंडई, ३ इस्कान खाँ, ४ डाबर काट, ५ स्पीना घुंडई, ये सब जोब में हैं, ९ से ११ तक लोंडो बर्त्तन, ७ एवं ८ लगभग उसी प्रकार के पश्चिम ईरान मे गिरैरान से, शंखावर्त ठीकरियाँ, १५ डिज् पारोम से, १६ हजारमरवी, कसानो डब एव उसी प्रकार के शखावर्त, १२ एवं १३ चिगाकबूद एवं १४ बाग ए-लीमू, दोनो पश्चिम ईरान मे, १९ अ, ब, स ठीकरियाँ लोरालाई VI ब काल की अथवा संभवत· पेरियानों घुंडई से।

,, २३. एक तालिका जिसका उद्देश्य हस्तिनापुर एव अहिच्छत्र के लिए दिए गए कालक्रमो की भिन्नताओ को सरल बनाना है। बगल मे पुरातत्त्व सबधी मुख्य निर्देश भी दिए गए है।

,, २४. दक्षिण भारत एव दक्कन मे कब्रो से लोहे की बहुत तरह की वस्तुएँ मिली है। १ से ३ आदिचनाल्लूर से प्राप्त तलवारें, ४ एव ५ मालावार के प्रस्तर कटित कब्रो से प्राप्त तलवारें एव कटारें, ६ शेवारोय पर्वतश्रेणी में करादिचूर से प्राप्त तलवार, ७ कालीकट मे चलील कुरिनयोली के प्रस्तर कटित कब्रो से प्राप्त तलवार, ८ त्रिशूल, आदिचनाल्लूर, ९ त्रिशूल, प्रस्तर कटित कब्र, मालाबार, १० लग्गा, किल-मोडमबडी शेवाराय पर्वत श्रेणी, ११ एव १२ हँसिया, डोरनाकल एवं जीर्वाजी, हैदराबाद, १३ से १५ प्रस्तर कटित कब्रो से प्राप्त लग्गे, मालाबार, नल्लम पट्टी, क्वायम्बटूर एव प्रस्तरकटित कब्र, चालिल-करिनयोली, कालीकट, १६ एव १७ मद्रास मे पेरबेर एव आदिचनाल्लूर से प्राप्त हँसिया, १८ एव २० अकुश एव तश्तरीदार बत्ती, जीर्वाजी एवं आदिचनाल्लूर, १९ त्रीपाद, जीवारजी।

,, २५. ऐसा नक्शा जो साधारण ढग पर विभिन्न प्रकार के शवाधानों का वितरण दिखलाता है। इन शवाधानों का सबध दक्षिण भारत के उन लाल एवं काले बर्त्तनों के साथ है जो कि महेश्वर से उत्तर माधवपुर तथा उडीसा मे शिशुपाल गढ़ तक पश्चिम भारत मे हैं।

सन्दर्भ ग्रंथसूची

1. Allchin, F. R, 1954, 'Development of Early Cultures in the Raichur District of Hyderabad', Thesis in Indian Archaeology for London University Embodies report on Piklihal excavations
2. Basham, A L, 1957, THE WONDER THAT WAS INDIA, London
3. Cammiade, L. A, 1924, 'Pygmy Implements of the Lower Godavari', MAN IN INDIA, IV
4. Cammiade, L. A. and Burkitt, M C, 1930, 'Fresh Light on the Stone Ages of South East India', ANTIQUITY, IV, Sept.
5 Carlleyle, A. C L., 1878, 'Report of a Tour in Eastern Rajputana in 1871-2 & 1872-3', ARCH. SURVEY OF INDIA REPORTS, VI
6 Childe, V. G, 1952, NEW LIGHT ON THE MOST ANCIENT EAST, London
7. Coon, C. S, 1951, CAVE EXPLORATIONS IN IRAN, Univ. of Pennsylvania Monograph.
8. Dani, A H 1955, 'The Prehistory and Proto-history of Eastern India', Thesis in Indian Archaeology for London University.
9. De Cardi, B 1950, 'On the Borders of Pakistan', JOUR. ROYAL INDIA, PAKISTAN AND CEYLON SOC., XXIV.
10. De Cardi, B., 1951, 'A New Prehistoric Ware from Baluchistan', IRAQ, XIII, pt 2.
11. De Terra, H. and Paterson, T. T., 1939, STUDIES IN THE ICE AGE IN INDIA AND ASSOCIATED HUMAN CULTURES, Washington, D. C.
१२. De Terra, H., 1936, 'Excavations at Burjhama', MISCELLA-

NEA OF THE AMERICAN PHILOSOPHICAL SOC.

13. Deva, K. and McCown, D. E. 1949, 'Further Exploration in Sind', ANCIENT INDIA, No. 5.
14. Dikshit, M. G. 1950, 'Excavations at Rangpur 1947', BULLETIN DECCAN COLLEGE RESEARCH INST., IX.
15. Diringer, D, 1948, THE ALPHABET, London.
16. Fairservis, W. A. 1956, EXCAVATIONS IN THE QUETTA VALLEY, WEST PAKISTAN, The American Museum of Natural History, New York.
17. Foote, R. B 1916, THE FOOTE COLLECTION OF INDIAN PREHISTORIC AND PROTO-HISTORIC ANTIQUITIES; NOTES ON THEIR AGES AND DISTRIBUTION, Madras.
18. Ghirshman, R, 1938-39, FOUILLES DE SIALK, Paris.
19. Goodwin, A J H 1953, METHOD IN PREHISTORY, 2nd Edition, The South African Archaeological Soc. Handbook Series No 1, Capetown.
20. Gordon, D H. & M E, 1943, 'The Cultures of Maski and Madhavpur', JOURN ROYAL ASIATIC SOC. OF BENGAL, IX
21. Gordon, D H 1935, 'Indian Cave Paintings', IPEK.
22. Gordon, D H 1936, 'The Rock Paintings of the Mahadeo Hills', INDIAN ART AND LETTERS, X, No. 1.
23. Gardon, D H 1943, 'Early Indian Terracottas', Jour. INDIAN SOC. OF ORIENTAL ART, XI.
24. Gordon, D. H, 1947, 'Sialk, Giyan, Hissar and the Indo-Iranian Connection', MAN IN INDIA, 27, No. 3.
25. Gordon, D H, 1950, 'The Stone Industries of the Holocene in India and Pakistan', ANCIENT INDIA, No. 6.
26. Gordon, D. H, 1950, 'The Early Use of Metals in India and Pakistan, JOUR. ROYAL ANTHROPOLOGICAL INST. 80.
27. Gordon, D. H., 1951, 'The Rock Engravings of Kupgallu Hill, Bellary, Madras', MAN, 204.

28. Gordon, D. H , 1954-55, 'The pottery industries of the Indo-Iranian border : a re-statement and tentative chronology', ANCIENT INDIA, Nos 10 & 11.

29. Hargreaves, H., 1925, EXCAVATIONS IN BALUCHISTAN, Mem Arch. Survey of India, No 35.

30 Hutton, J. H., 1946, CASTE IN INDIA, London.

31. INDIAN ARCHAEOLOGY, A REVIEW, 1953-54 and 1954-55. Takes the place of the Annual Reports of the Archaeological Survey of India

32 Kelso, J. L. and Thorley, J P , 1943, 'The potter's tachnique at Tel Beit Mirsim', THE ANNUAL OF THE AMERICAN SCHOOLS OF ORIENTAL RESEARCH, XXI & XXII (in one)

33 Kosambi, D D , 1951, 'On the origin of Brahmin Gotras', JOUR BOMBAY BR. ROYAL ASIATIC SOC , XXVI (New Series)

34 Krishnaswami, V D , 1947, 'Stone Age India', ANCIENT INDIA, No. 3

35. Lal, B B , 1951, 'Further Copper Hoards from the Gangetic Basin', ANCIENT INDIA, No. 7

36. Lal, B B , 1954-55, Excavations at Hastinapura and other explorations 1950-52', ANCIENT INDIA, Nos. 10 & 11.

37. Leakey, L. B S, 1936, STONE AGE AFRICA, London.

38. Mackay, E. J H., 1938, FURTHER EXCAVATIONS AT MOHENJO-DARO, Delhi

39. Mackay, E J. H , 1943, CHANHU-DARO EXCAVATIONS, Connecticut.

40. Majumdar, N G., 1934, EXPLORATIONS IN SIND, Mem. Arch. Survey of India, No. 48.

41. Majumdar, R. C , Raychaudhari, H C. and Datta K., 1946, AN ADVANCED HISTORY OF INDIA, London.

42. Marshall, Sir John and others, 1931, MOHENJO-DARO

AND THE INDUS CIVILIZATION, London.
43. Marshall, Sir John, 1951, TAXILA, Cambridge.
44. Paterson, T. T., 1942, 'On a World Correlation of the Pleistocene', TRANS. OF THE ROYAL SOCIETY OF EDINBURGH.
45. Piggot, S., 1946, 'The chronology of prehistoric north-west India', ANCIENT INDIA, No. 1.
46. Piggot, S., 1947, 'A new prehistoric ceramic from Baluchistan', ANCIENT INDIA, No. 3.
47 Piggot, S , 1947-48, 'Notes on certain Metal Pins and a Maca-head in the Harappa Culture', ANCIENT INDIA, No. 4.
48 Piggott, S., 1950, PREHISTORIC INDIA, Harmondsworth.
49. Ross, E. J., 1947, 'A chalcolithic site in northern Baluchistan', JOUR. NEAR EASTERN STUDIES, V No. 4.
50. Sankalia, H D , 1946, INVESTIGATIONS IN PREHISTORIC ARCHAEOLOGY OF GUJERAT, Baroda.
51. Sankalia, H. D., 1953, 'Excavations in the Narmada Valley', JOUR M. S. UNIVERSITY OF BARODA, II, No. 2.
52. Sankalia, H. D , 1955, 'N ▵ Toli Dancers', ANTIQUITY, XXIX, March.
53 Sankalia, H D. and Dikshit, M , 1952, EXCAVANIONS AT BRAHMAPURI (KOLHAPUR), Deccan College Monograph Series · 5.
54 Sankalia, H D., Subbarao, B and Joshi, H. V , 1952, 'Studies in the prehistory of Karnatak', BULLETIN, DECCAN COLLEGE RESEARCH INST , XI, No 1.
55. Sankalia, H. D., Subbarao, B. and Deo, S. B., 1953, 'The Archaeological Sequence of Central India', SUTHWESTERN JOUR. OF ANTHROPOLOGY, IX, NO, 4.
56. Sankalia, H. D and Deo, S. B., 1955, REPORT OF THE EXCAVATIONS AT NASIK AND JORWE, 1950-51, Poona

57. Smith, V. A., 1905 & 1907, 'The Copper Age and prehistoric bronze implements of India', INDIAN ANTIQUARY, XXXIV and XXXVI.
58. Smith, V A., 1906, 'Pygmy Flints', INDIAN ANTIQUARY, XXXV
59. Stein, Sir Aurel, 1928, INNERMOST ASIA, London.
60 Stein, Sir Aurel, 1929, AN ARCHAEOLOGICAL TOUR IN WAZIRISTAN AND BALUCHISTAN, Mem. Arch Survey of India, No 37
61. Stein, Sir Aurel, 1931, AN ARCHAEOLOGICAL TOUR IN GEDROSIA, Mem Arch Survey of India, No 43.
62. Stein, Sir Aurel, 1937, ARCHAEOLOGICAL RECONNAISSANCES IN NORTHWEST INDIA AND SOUTHEAST IRAN, London.
63. Stein, Sir Aurel, 1940, OLD ROUTES IN WESTERN IRAN, London.
64 Subbarao, B , 1948, STONE AGE CULTURES OF BELLARY, Deccan College Dissertation Series, No. 7, Poona.
65. Subbarao, B , 1952, 'Archaeological Explorations in the Mahi Valley', JOUR. OF M. S. UNIVERSITY OF BARODA.
66. Todd, K. R. U , 1939, 'Palaeolithic Industries of Bombay', JOUR ROYAL ANTHROPOLOGICAL INST., LXIX
67 Todd, K. R U., 1948, 'A Microlithic Industry of Eastern Mysore', MAN, 27
68 Todd, K R U., 1950, 'The Microlithic Industries of Bombay', ANCIENT INDIA, NO. 6
69. Toynbee, A , 1934, A STUDY OF HISTORY, Vol. II, Oxford.
70. Van Riet Lowe, C., 1945, 'The Evolution of the Levallois Technique in South Africa', Man, 37.
71. Vats, M. S., 1940, EXCAVATIONS AT HARAPPA, Delhi.
72. Warman, E. C , 1949, 'The Neolithic problem in the pre-

history of India', JOUR. WASHINGTON ACADEMY OF SCIENCES, Vol. 39.

73. Wheeler, R. E. M., 1946, 'Arikamedu · an Indo-Roman trading-station', ANCIENT INDIA, No 2.
74. Wheeler, R E M , 1947, 'Harappa 1946', ANCIENT INDIA, No. 3.
75. Wheeler, R. E. M., 'Brahmagiri and Chandravalli 1947', ANCIENT INDIA, No. 4.
76. Wheeler, Sir Mortimer, 1953, THE INDUS CIVILIZATION, Cambridge.
77. Zeuner, F. E., 1950, STONE AGE AND PLEISTOCENE CHRONOLOGY IN GUJRAT, Deccan College Monograph Series . 6.

●

पारिभाषिक शब्द-सूची

(अ)

अगवेषित : Unexplored
अग्रिम : Fronting
अच्यूलियन : Acheulian
अर्ध चंद्राभ : Lunate
अनुक्रमण : Succession
अनुर्वर : Sterile
अनुस्थापन : Orientation
अपरदन : Erosion
अपारदर्शी : Opaque
अप्रवासी : Immigrant
अपसमविन्यास : Disconformity
अपसारी : Divergent
अपक्षरण : Weathering
अभिधारणा : Postulate
अभिनूतन : Pleistocene
अभिप्राय : Motif
अभिसारित : Converging
अल : Pin
अवतल अम्मी : Saddle back quern
अवस्थापन, बस्ती : Settlement
अवशेष : Relics
अविकल : Intact

(आ)

आइबेक्स : Ibex
आग्नेयकाच : Obsidian
आदिरूप : Prototype

आदिवासी	:	Aboriginal
आधारवस्तु	:	Datum
आधारवाक्य	:	Premise
आधारशैल	:	Bedrock
आडा, अनुप्रस्थ	:	Transeverse
आयोजित	:	Schematic
आरा	:	Awls
आरेख	:	Diagram
आवर्त्तकाल	:	Period
आवश्यकताएँ	:	Exigencies
आद्यस्वरूप	:	Archetype
(उ)		
उक्ति	·	Dictum
उत्कीर्ण	:	Incised,
उत्कीर्ण आकृति	·	Intaglios
उत्सेध	:	Eminence
उद्दीपन	:	Stimuli
उपकरण, यंत्र	:	Apparatus
उपशाखा	:	Offshoot
उपान्त	:	Fringed
उपान्त	:	Marginal
उलटा हुआ	:	Everted
(ऊ)		
ऊपरी मिट्टी	:	Top soil
(ए)		
एकरेखन	:	Alignment
(अं)		
अंकुश		Hook
अंडाकार	:	Ovate
अंश, नोंक	:	Point

(क)

कटिबंध	.	Belt
कत्तर	:	Spalls
कटार	·	Dirk
कटोरा	:	Bowl
कब्रिस्तान	:	Cemetry
कमर	:	Loin
कंबुक	.	Scalloped
करतल	:	Palm
कार्नेलियन	.	Carnelian
काटना	:	Splitting
किन्नर	·	Centaurs
कीप	:	Funnel
कुकुद	:	Hump
कुटीराकार	:	Hut pot
कुठार	:	Handaxe
कुल्हाडी		Celt
कूटना	.	Pounding
कैलसिडोनी	·	Chalcedony
कोर	:	Flangue
कोल्टर	:	Coulters
कंकड		Gravel
ककरीला	:	Gritty
कंकाल	:	Skeleton
कटीला	·	Barbed
काटेदार	.	Forked
काटेदार बर्छी	.	Harpoon
कासा	·	Bronze
कुंदा	·	Butt
क्रम	.	Sequence
क्रोड	·	Core

कृकलास : Chameleon
क्लैक्टनी : Clactonian
क्वार्टजाइट : Quartzite

(ख)

खदान : Quarry
खड़ा : Vertical
खानाबदोश : Nomadic
खुरचनी : Scrapers
खंडित : Sactioned
खाचा : Nick

(ग)

गदाशीर्ष : Macehead
गवेषणा : Exploration
गारा, मसाला : Mortar
गिराना : Felling
गिरिपीठ : Foothill
गुथा हुआ : Braided
गुटिका : Nodule
गेरू : Ochre
गोमेद : Agate
गोलपत्थर : Boulder
गोलिकाकार : Globular
गंडासा : Chopper
ग्रेनाइट : Granite

(घ)

घटक, अंग : Constituent
घर्षित : Ground

(च)

चकमक पत्थर : Flint
चक्की : Quern

चटाई : Mat
चर्ट : Chert
चाप : Crescentic
चित्तीदार : Mottled
चिपकवा Applique
चित्रलेख Pictograph
चूलदार Tanged
चोटीदार, किरीटी Crested

(छ)

छीजा हुआ Weathered
छेनी, रूखानी : Chisel
छेनी Grover

(ज)

जलमार्ग Channel
जलोद Alluvial
जलोदक : Alluviam
जामपान : Goblet
जीनस Genus
जीवाश्म Fossil
जीवाश्मीभवन Fossilization

(त)

तकनीक : Technique
तथ्यशिल्प : Artifact
तराशा गया : Nibbled
तराशा हुआ : Chipped
तह : Bed
तक्षणी : Burin
ताबीज : Amulets
ताबूत : Cist

तालपत्र : Frond
तिरछा फलक वाला : Splay-bladed
तैथिक : Chronological
तंगघाटी : Ravine
तांत्विक : Fabric

(द)

दन्तुर : Serrated
दिल्हा : Panel
दीर्घकालिक : Protracled
दीर्घवृत्ताकार · Elliptical
दुर्बल . Punny
दुर्बोध Obscure
दुमट : Loam
दुरंगा Bichrome
दृढीभूत : Indurated
दृष्टिगोचर Discernible
द्विमुखी Biface

(ध)

धब्बेदार : Stained
धरण, दंड . Beam
धातुपिंड : Ingot
धातुमल : Slag
धूप : Incense
धुंधला · Blurred

(न)

नक्काशी : Carving
नक्काशी : Engraving
नवपाषाणिक : Neolithic
नम्य : Flexed
नाल; धुरा : Shaft

नाशपाती जैसा	:	Pyriform
निकम्मा	:	Scrubby
नियति	:	Destiny
नियामक शल्कल	:	Guide Flake
निरूढ	:	Stylized
निवास	:	Occupation
निहाई	:	Anvil
निक्षारित	:	Etched
नूतनतमकाल	:	Holocene
नेज़ा	:	Javelin
नौतलयुक्त	.	Carinated
(ट)		
टपकना	:	Drip
टीला	:	Mound
टीब्बा		Dune
टेढ़ा	:	Unplumbed
टेढामेढा	·	Zigzag
टैन	:	Tan
ट्रैप	:	Trap
(ठ)		
ठीकरी	:	Sherd
ठोस	:	Substantial
(ड)		
डोरी	:	Cord
डौलमेनायड	:	Dolmenoid
(ढ)		
ढेर	:	Dump
ढोनेवाले	:	Hauliers
(प)		
पकी हुई मिट्टी की मूर्ति	:	Terracota

पच्चड़	:	Wedge
पट्टी	:	Band
पट्टी, फीता	:	Ribbon
पठार	:	Plateaux
पपड़ी	:	Pan
परकोटा	:	Rampart
पारस्परिक	:	Reciprocal
परस्पर संबंध	:	Correlation
परिधि	:	Circumference
परिवृत्ति	:	Circumvallation
परिभ्रामी	:	Wandering
परिष्कृत	:	Polished
परिष्कृत	:	Retouched
पवनोठक	:	Loessic
पहियामाप	:	Wheel-gauge
पादपीठ आधार	:	Pedastal
पारभासी	:	Translucent
पार्श्व	:	Aisle
पार्श्व	:	Lateral
पुरातत्त्व	:	Archaeology
पुरुषविध	:	Anthromorphic
फलक	:	Blade
पाडु	:	Buff
प्रकारविद्या	:	Topology
प्रतिभाविज्ञान	:	Iconography
प्रत्यावर्ती	:	Alternating
प्रमार्जन	:	Lapping
प्रवसन	:	Migration
प्रस्तरयुग	:	Palaeolithic age
प्रारूपिक	:	Typical
प्राश्र्व चित्र	:	Profile
प्रिज्म	:	Prism

पृष्ठक	Faceted
(फ)	
फंदा	Loop
(ब)	
बद्ध	Bounded
बनावट	Composition
बर्फी	Lozenges
बरमा	Drill
बलुआ पत्थर	Sandstone
बसूला	Adze
बहुरंगा	Polychrome
बीकर	Beaker
बिटूमन	Bitumen
बेधक	Borer
बेलनाकार	Cylindrical
बौना	Pygmy
बाध	Dyke
(भ)	
भीतिचित्र	Frescoes
भीड़	Huddle
भूमिवृद्धि	Aggradation
भूविज्ञान	Geology
भेंट	Offering
भंग, छेद	Hiatus
(म)	
मध्यपाषाणिक	Mesolithic
मनका, गुटका	Bead
मल	Silt
मलवा निर्मित	Detriated
मस्टेरी	Monsterian

मस्तगी	:	Mastic
महापाषाणिक	:	Megalithic
मार्गसूची	:	Itinerary
महालिंगी	:	Ithyphallic
मिटा हुआ	:	Obliterated
मिट्टी के बर्तन का टुकडा	:	Pot-sherd
मूठ, हत्था	:	Handle
मूठ लगाया हुआ		Hafted
मेटोप	·	Metope
मेड	.	Ridge
मूसल	:	Pestle
मोर्चा लगा हुआ	·	Patinated
मोमद्रवी विधि	·	Cire-Perdue
मडलक		Disk
(य)		
यथावत		Insitu
(र)		
रद्दीमाल	.	Serap
राल	.	Resin
रेतघडी	.	Hourglass
(ल)		
लग्गा	·	Bill hook
लघुपाषाणिक		Microlithic
लघुमूर्तियां	.	Figurines
लिप्यतरण	.	Transliteration
लीक पकडना	:	Tracking
लिंग	:	Phallus
लूनपार्श्वता	:	Lopsided,
लेवैलायसी	:	Levalloisian
लैटराइट	.	Laterite

लंबी टाकी	.	Barcelt
लाजावर्त		Lapis Lazulı
(व)		
वर्षा संबधी		Pluvıal
वाणाग्र	.	Arrow head
वायुनालिका	:	Airducts
वास्तुविद	.	Archıtects
विपरीत प्रभाव	.	Prejudıce
विभिन्नता	.	Dıversıty
विशिष्ट	.	Characteristıc
विसगति	.	Discrepancy
वेदी	.	Terra
व्यवच्छेद		Anatomy
व्यास	.	Dıameter
(श)		
शल्क, मापक्रम	.	Scale
शल्कल		Flake
शरचिह्न, धनुष	:	Arrow
शवपेटिका; ताबूत	.	Sacophagus
शवाधान	:	Burıal
शाहस्तम्भ	:	Kıng post
शिलालेख	:	Inscrıption
शीर्ष		Cranıal
शुष्क	.	Arid
शुष्क	.	Dry
शखावर्त	:	Volute
श्लक्ष्ण	.	Glossy
(स)		
सतह	:	Surface
सन्निकटमान	:	Approximation

सर्पिल : Spiral
समक्रमिकता : Synchronism
समन्वय : Co-ordination
समलंब : Trapeze
सम्पर्क : contact
सरकंडा : Reed-bundle
सर्वव्यापी : Universal
सर्वेक्षण : Survey
सहअस्तित्व : Co-existance
सहस्त्राब्दि : Millennia
सादा, चौरस : Plain
साहुल : Plumb-ball
साक्ष्य : Testimony
सिग्मा · Sigma
सुनिश्चित करना Ensure
सुस्त Sluggish
सूर्यकान्त · Jasper
सूक्ष्म · Micro
संकेन्द्रीय : Concentric,
संक्रमण : Transition
संगोदर शवाधान Cairn burial
संगृहीत . Deposition
संडित : Truncated
संपतन : Coincide
संलग्न : Ancillary
संश्लिष्ट : Cemented
साचा · Mould
सँकरा रास्ता : Defile
स्तरक्रम : Stratigraph
स्तरीकृत : Stratified
स्थलाकृतिविज्ञान : Topography
स्पष्ट : Pronounced

स्लेटी, शेल	:	Shale
सेह		Porcupine,
(श)		
श्रेणी, क्रम	:	Series
शृंगिका		Antenna
(ह)		
हिमनदी	·	Glacials
हेमाटाइट	.	Haematite
होमोसेपियन		Homosapiens
हौर्नस्टोन		Horn stone
हंसली		Collar
हंसिया		Sickles
ह्यूमस	:	Humus
(क्ष)		
क्षितिज		Horizon
(त्र)		
त्रि-अरीय	·	Chevrony
त्रिपाद		Tripod
त्रिशूल	·	Trident

●

प्लेट I

लैवलायशी प्रकार के शल्कल ब्लेड और नुकीले पत्थर;
आन्ध्र, (भारत); और पश्चिमी पंजाब (पाकिस्तान)

प्लेट II
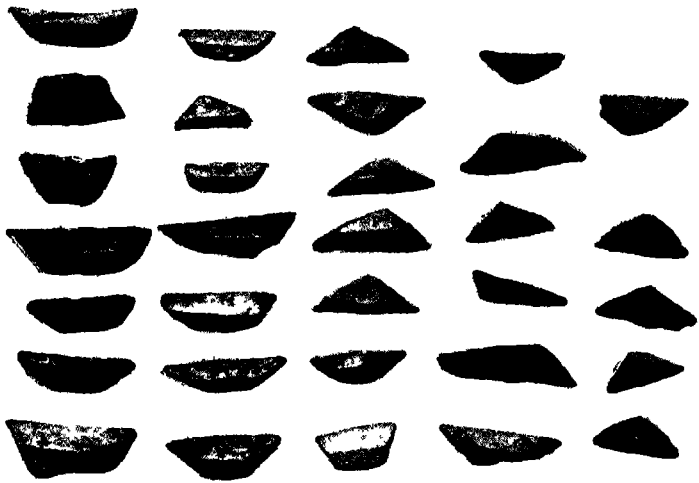
a(अ)

b(ब)

अ. विन्ध्य प्रदेश से प्राप्त लघुपाषाण : त्रिभुज और समलम्ब
ब. विन्ध्य प्रदेश से प्राप्त लघुपाषाण : अर्धचन्द्राकृतियाँ और अर्धचन्द्राकार फलक

प्लेट III
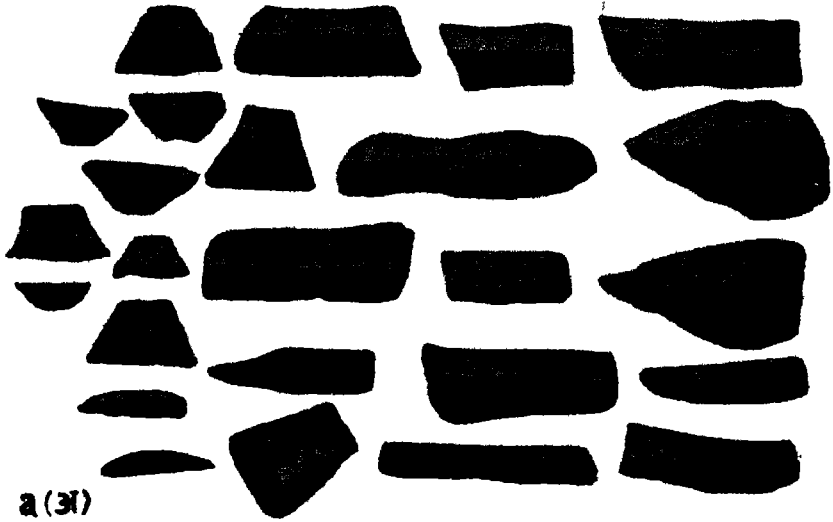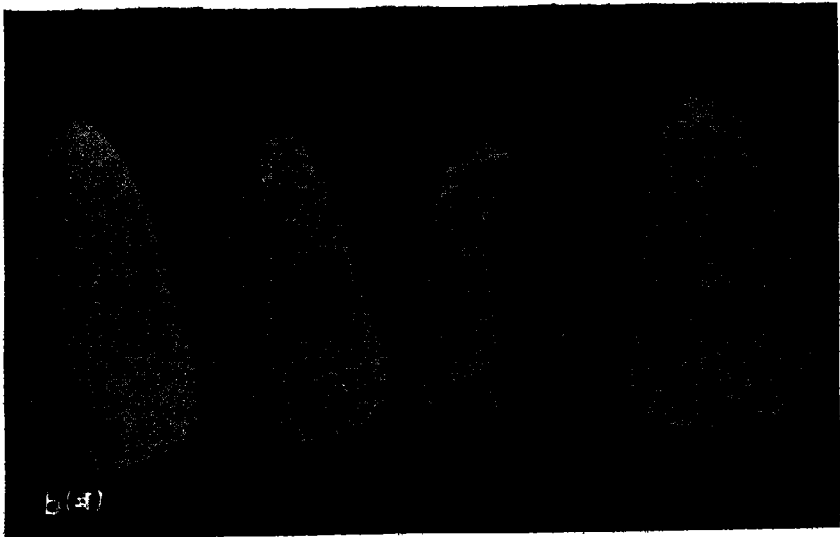
अ. ज्यामितिक आकृतियाँ, शल्कल ब्लेड और एपि-लेवलायशी नुकीले पत्थर; कराची (पाकिस्तान) के निकट ल्यारी नदी

ब. नवप्रस्तरयुगीन कुल्हाड़ियाँ, रायचूर जिला (हैदराबाद)

प्लेट IV
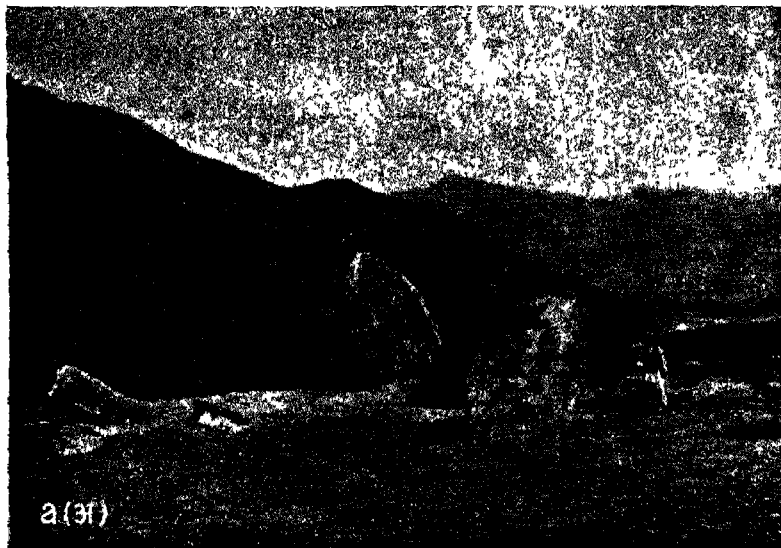
मुजहामा महापाषाण : अ. दक्षिण पश्चिम से प्राप्त,
ब उत्तर पश्चिम से प्राप्त

प्लेट
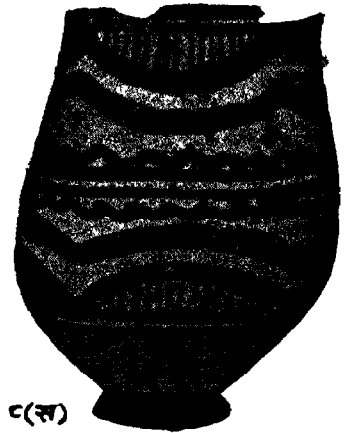
अ. बुल कलश (राणा घुंडाई); ब. और स. पेरियानो III के मृद्भांड, द. कुल्ली शैली के मृद्भांड

प्लेट VI

अ. मछली की आकृतिवाला नाल बर्तन

ब. सपक्ष भीमाकार जन्तु युक्त नाल बर्तन

प्लेट VII

झोब-देवियों की लघुमूर्त्तियाँ और घुटनों के बल बैठी
(बलगढ़ी)

प्लेट VIII
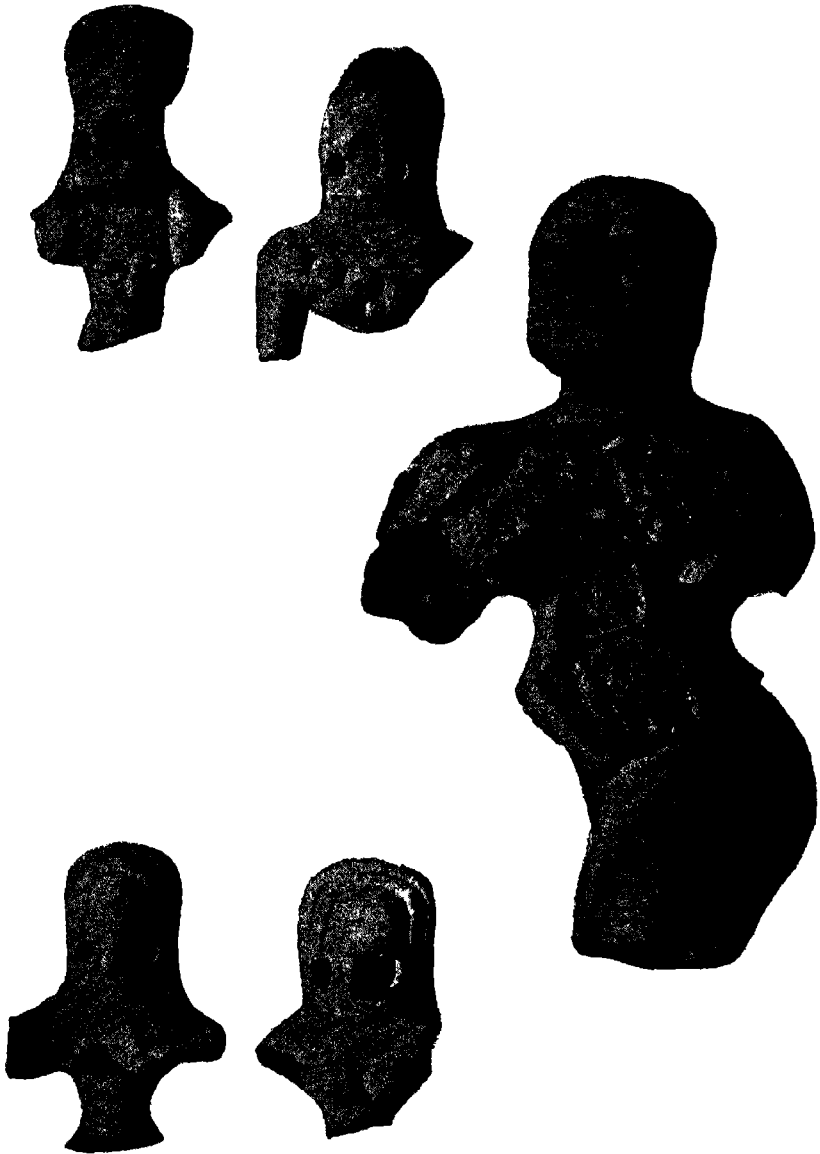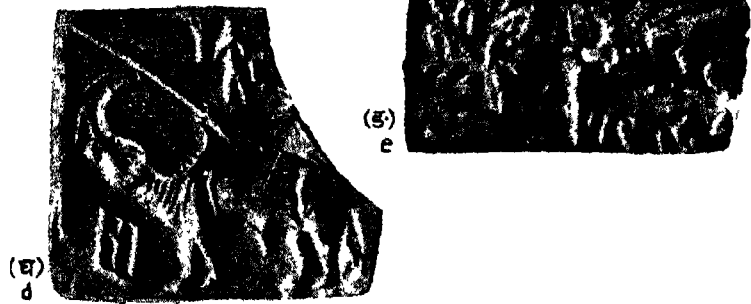
सिंधु-घाटी की मुद्राएँ

क बकरा

ख. शेरों के साथ मनुष्य

ग. मनुष्य को रौंदता हुआ साँढ़

घ भैंसे पर भाले से प्रहार करता हुआ मनुष्य

ङ साँढ़ पर छलाँग लगाता हुआ मनुष्य

च बैल और पूँछवाला आदमी

प्लेट VIII—लगातार

9(छ)

(ज) h

i (झ)

J (ञ)

छ पक्षी
ज पूजा-दृश्य

झ बारहसींगे
ञ. पुरुष को उछालता हुआ भैंसा

प्लेट IX
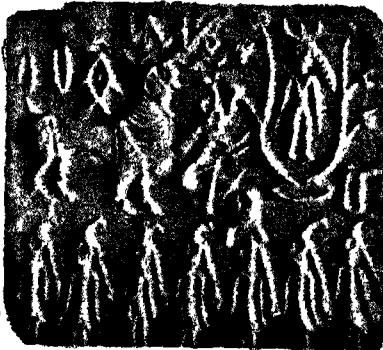
काँसे के बर्तन और जानवर (मोहेजोदड़ो

प्लेट X
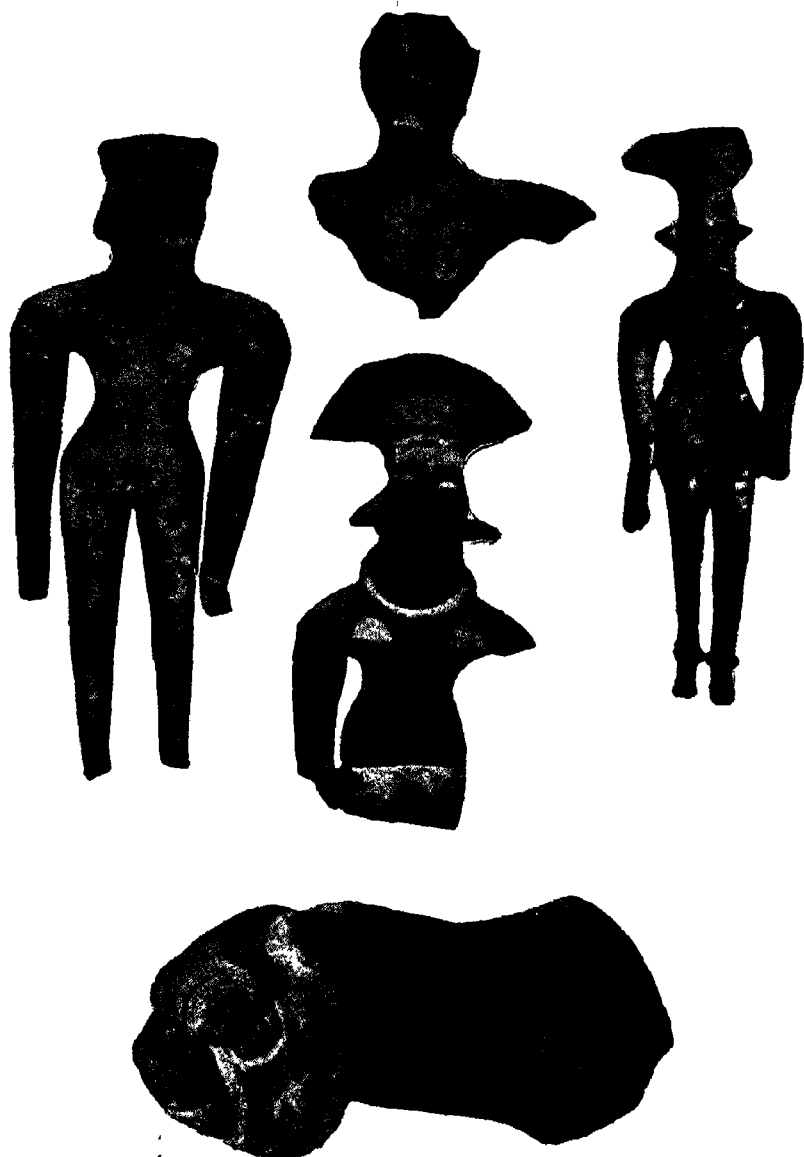
मोहेंजोदड़ो से प्राप्त हड़प्पाकालीन मिट्टी की मूर्तियां

प्लेट XI
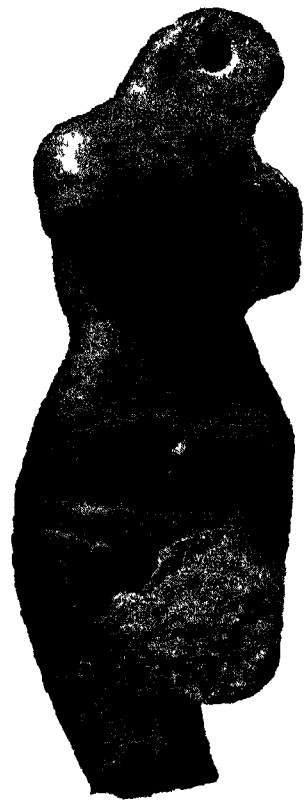
हड़प्पा से प्राप्त चूनापत्थर की लघुमूर्तियां

ताम्र नारी-लघुमूर्त्तियां (मोहेंजोदड़ो)

प्लेट XIII

a(अ)

b(ब)
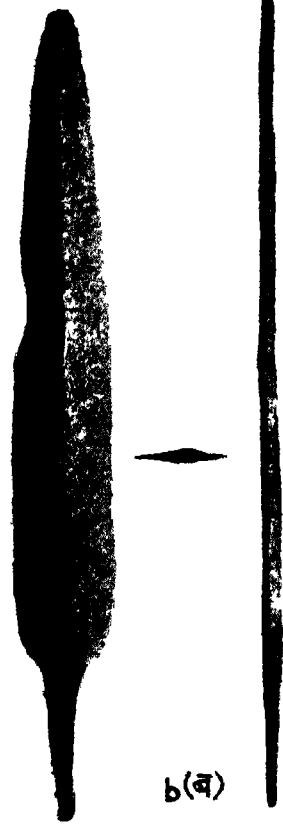
पश्चिमी प्रकार के हथियार : अ खुराब से प्राप्त, ब और स मोहेंजोदड़ो से प्राप्त

कुल्ली संस्कृति की मुद्राएँ और हथियार

प्लेट XV

झुकार मृद्भाण्ड
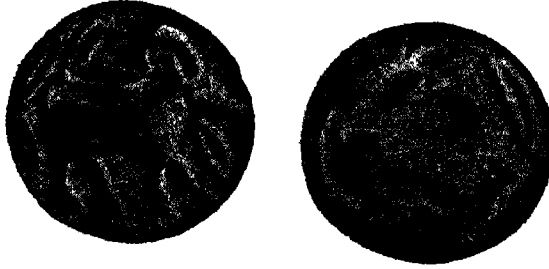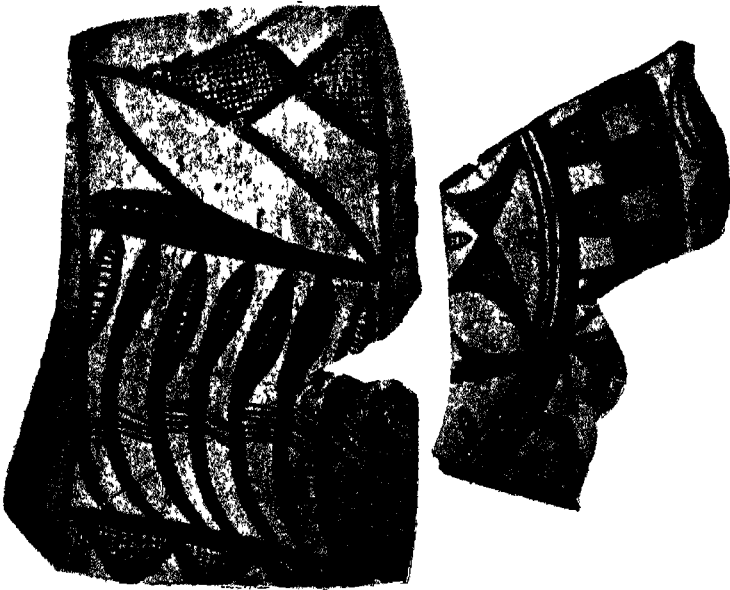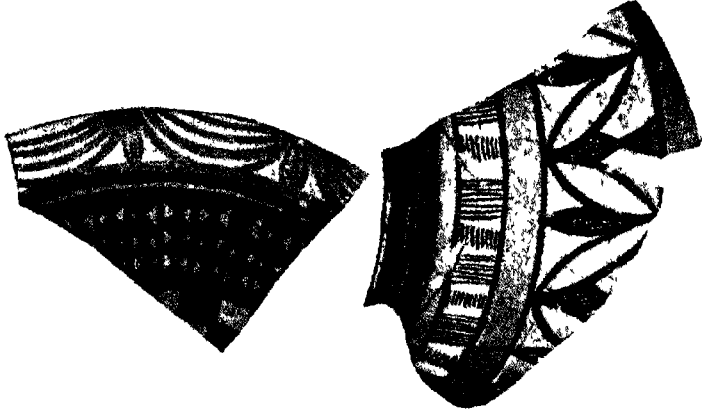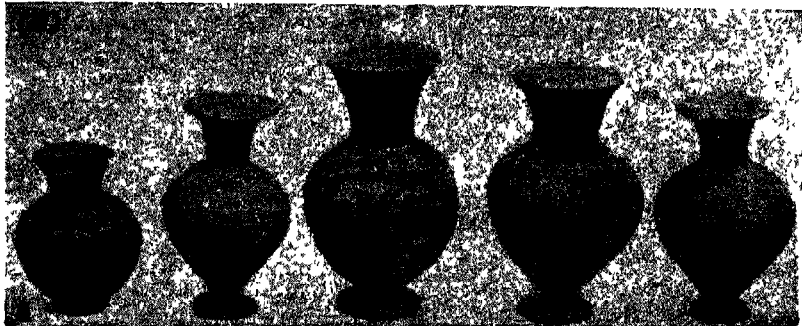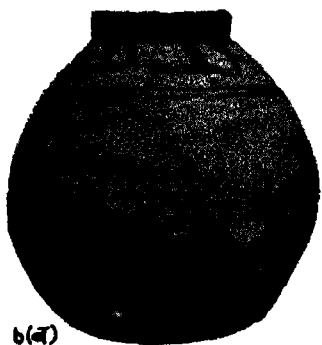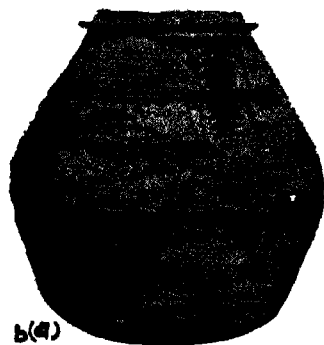
प्लेट XVI

अ रावी I के बर्तन

ब रावी II के शवाधान कलश

प्लेट XVII

उत्कीर्ण शृगार बर्तन

प्लेट XVII—लगातार

चित्रित त्रिहूनी-अर्गन
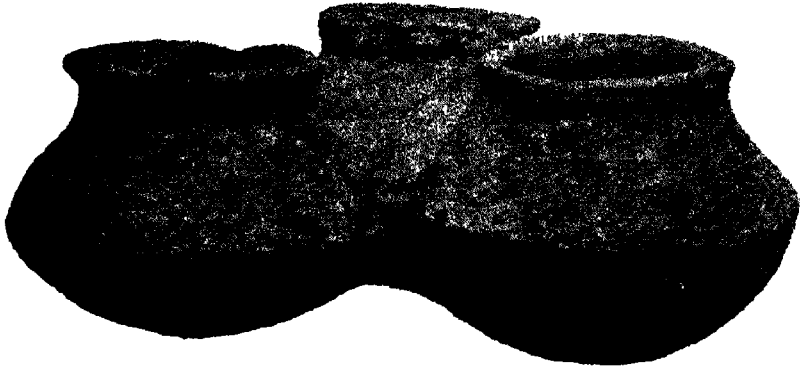
प्लेट XVIII
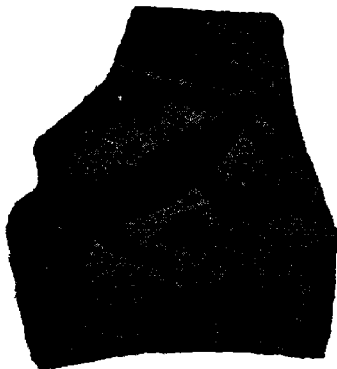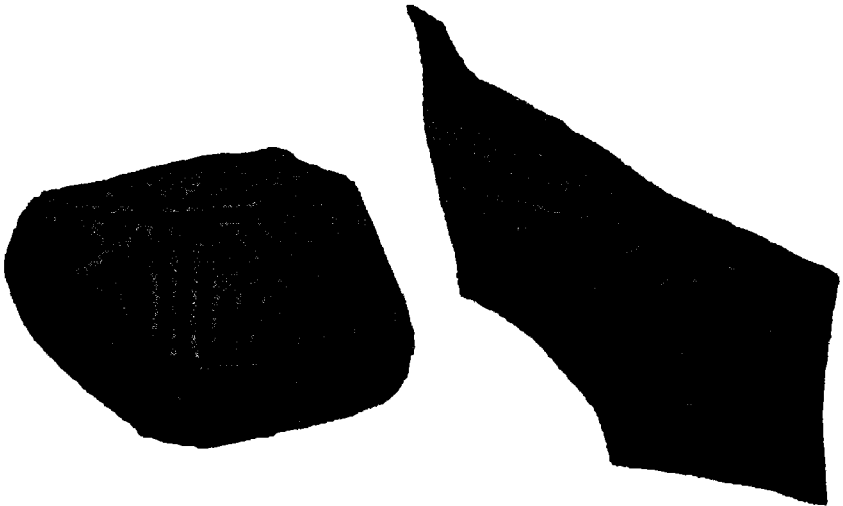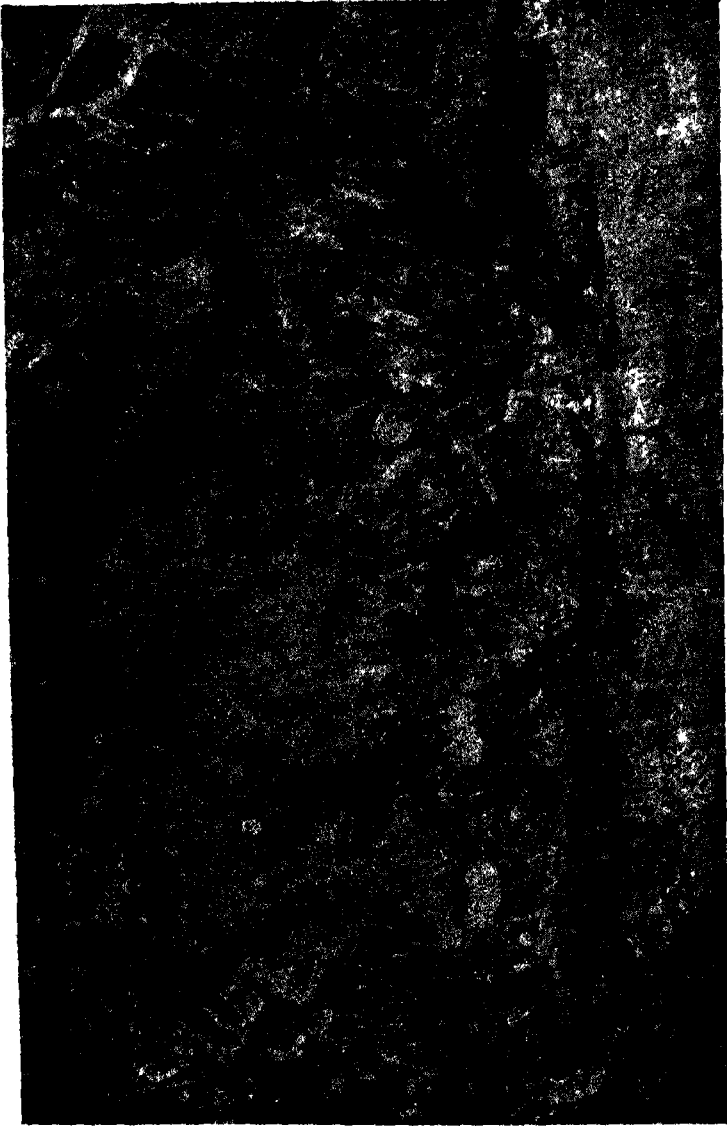
शिला-चित्रकारी प्रदर्शित करने वाला धुँआधार आश्रय (पंचमढ़ी, जिला-होशंगाबाद, मध्यप्रदेश)

प्लेट XIX

अ तलवारधारी मनुष्य, बोरी आश्रय

ब. युद्ध-दृश्य, जंबूद्वीप, आश्रय सं० ३

प्लेट XX
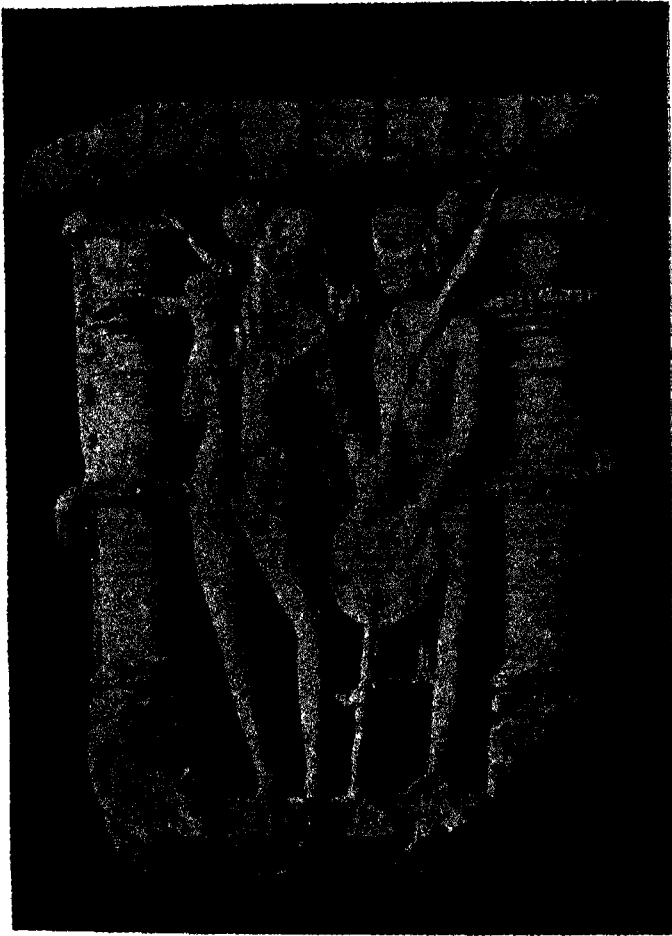
योद्धाओं की प्रतिमा, हरशनाथ
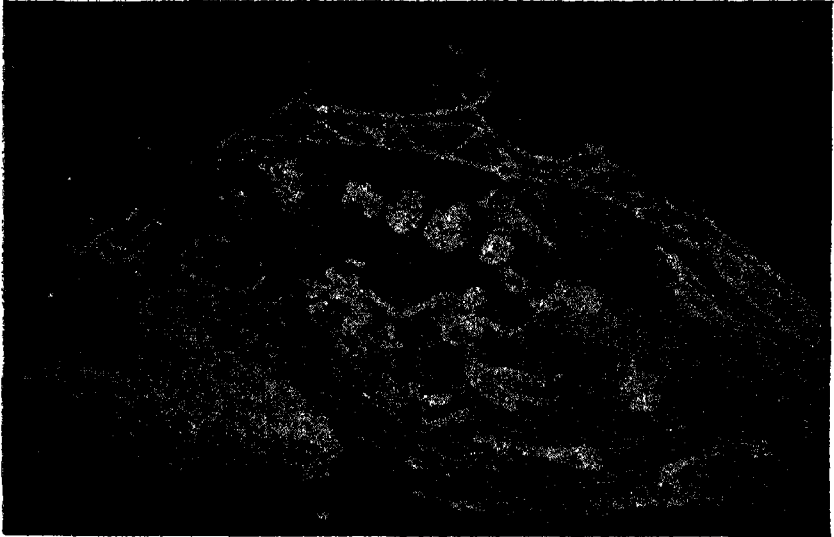
प्लेट XXI

अ झोपड़ी में औरत और बच्चा, मारोदेव
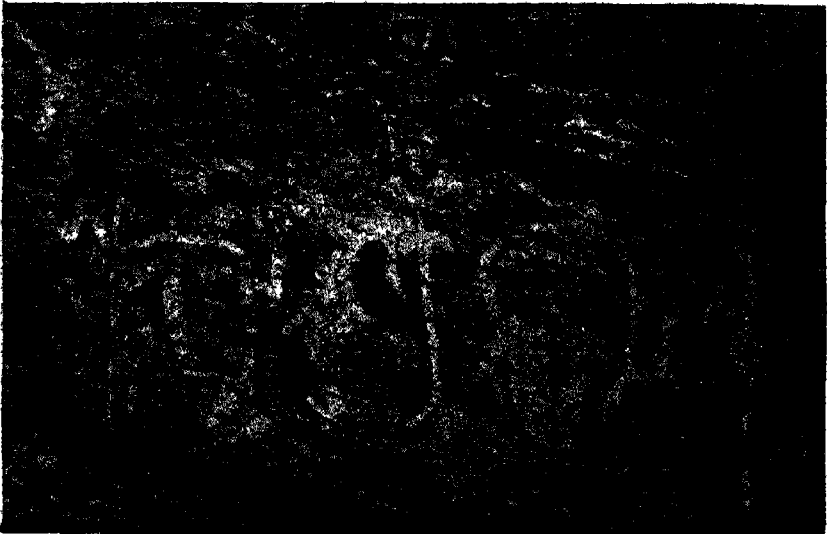
ब चँदवा के नीचे सरदार और उसकी पत्नियाँ; सोनभद्रा गुफा

प्लेट XXII
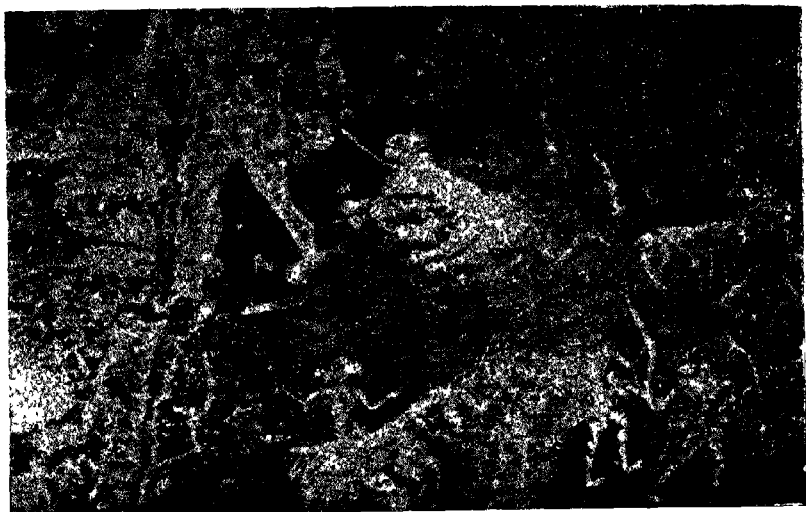
अ बाघ को रस्सी से बाँधकर ले जाता हुआ भीमकाय व्यक्ति, दौरी

जिराफ-समूह, आदमगढ़
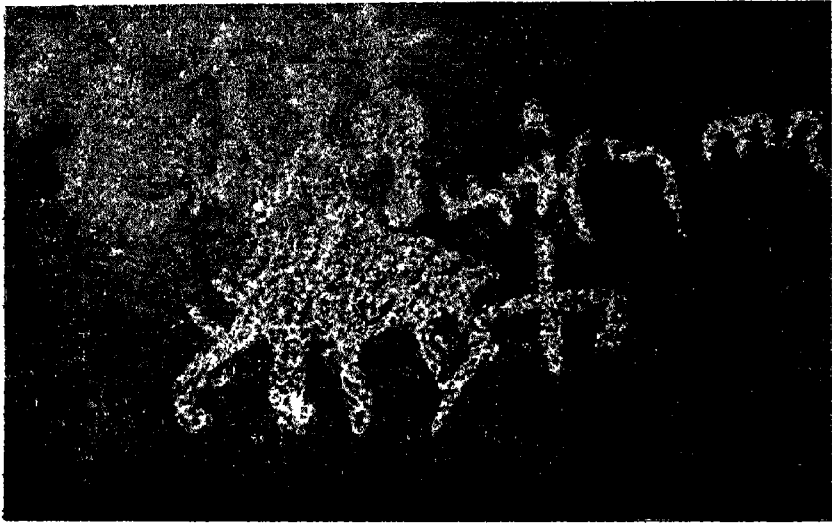
प्लेट XXIII

अ हाथी पर आरूढ़ एक पौराणिक व्यक्ति तथा
खरोष्ठी अभिलेख, मडोरी

ब बैलगाड़ी, मंडोरी

प्लेट XXIV

ब. निकट् मानव और प्रतीक, घड़ियाला

अ. घुड़सवार, घड़ियाला
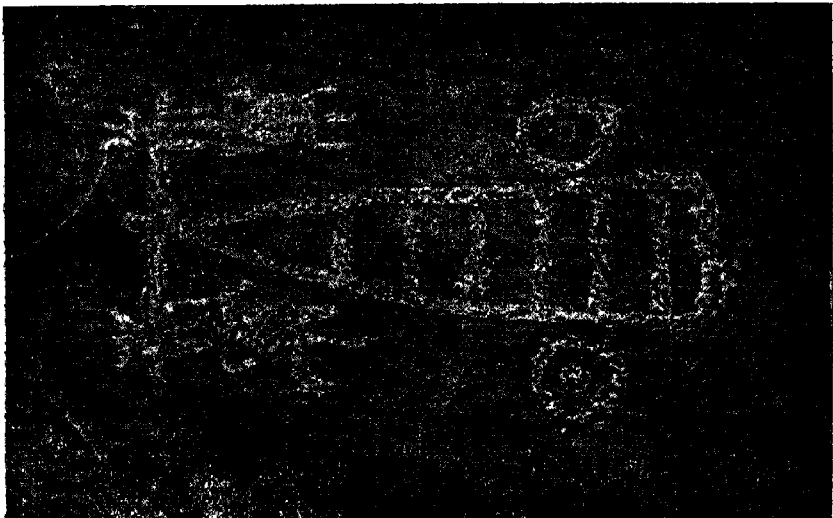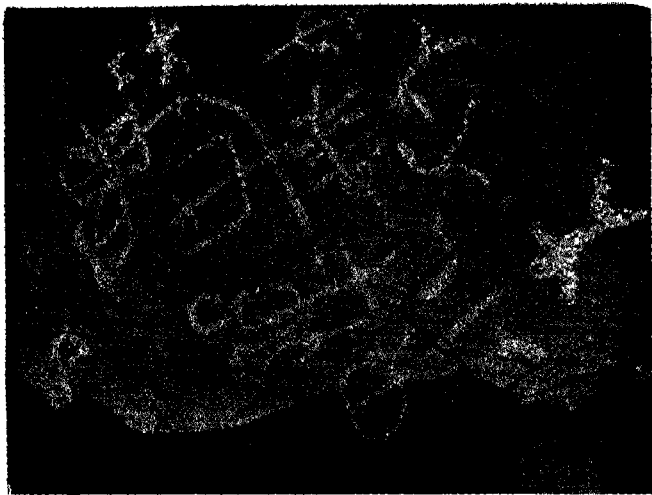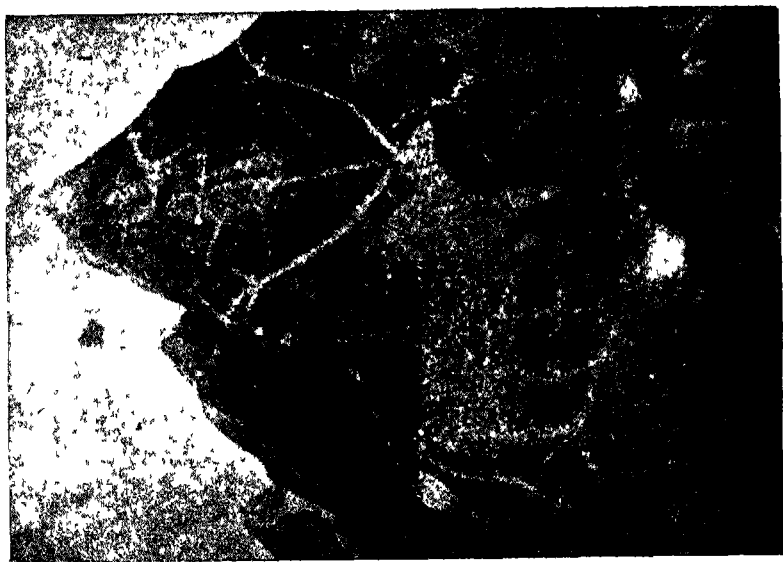
प्लेट XXV

अ. धनुष और सींगों के बीच प्रतीक युक्त बैल, कुपगल्लू

ब. अपहरण-दृश्य, कुपगल्लू

अ अपहरण दृश्य, गंडब

ब चित्रकारियाँ, बेनाकल वन

प्लेट XXVII

अ कांटेदार बर्छी, ब शृंगिका तलवार, फतेहगढ़,
स सींगोंवाला चांदी का मंडलक, गगेरिया

प्लेट XXVIII

अ टोंटीदार बर्त्तन, जोरवे
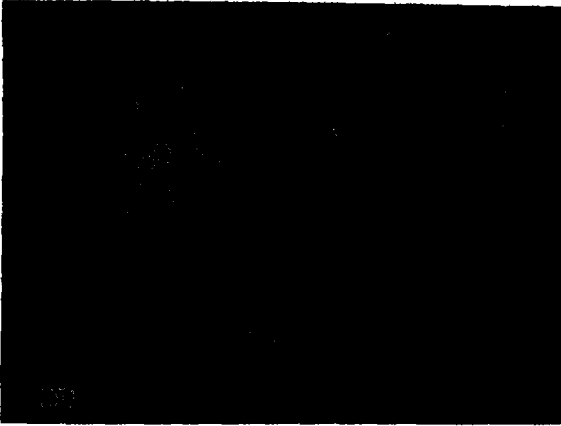
ब टोंटीदार बर्त्तन, नवासा

प्लेट XXIX

चित्रित भूरे बर्तन : अ. सीधे किनारे वाले पात्र (पानीपत)
ब. छिछला कटोरा (अहिच्छत्र)

प्लेट XXX

अ. नाशपाती आकार के शवाधान-कलश (पोरकलाम)
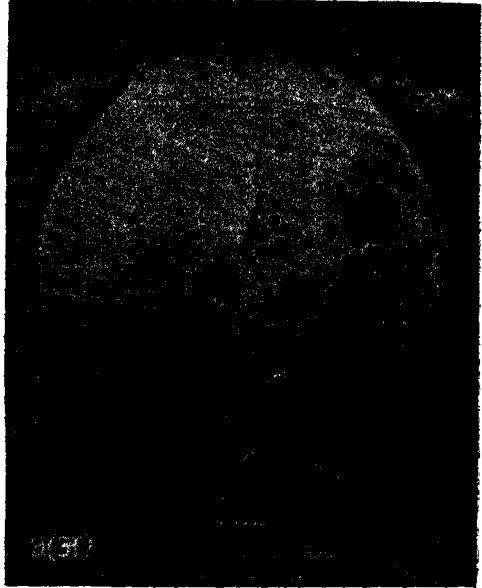
ब टब के आकार के सैक्रोफागो बर्तन (चिंगलपेट)

प्लेट XXXI

अ. मास्की कब्रिस्तान : ब. सैक्रोफेगस शवाधान (मास्की)

प्लेट XXXII
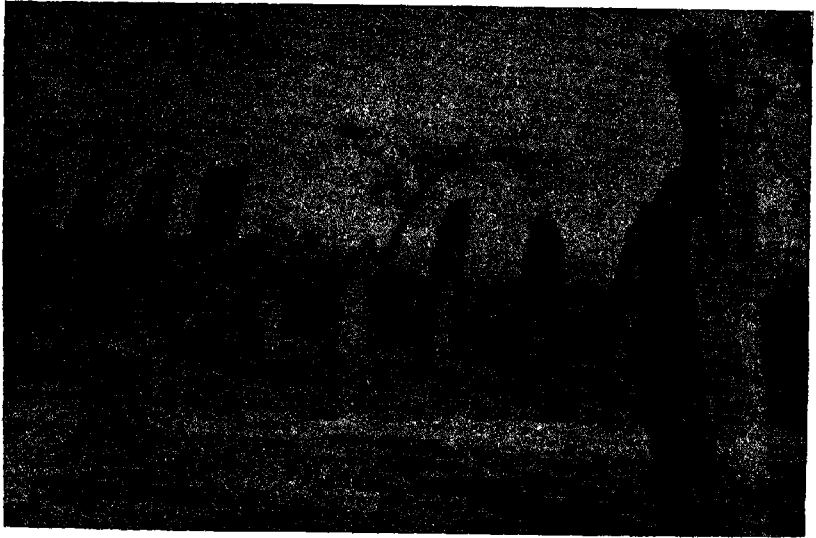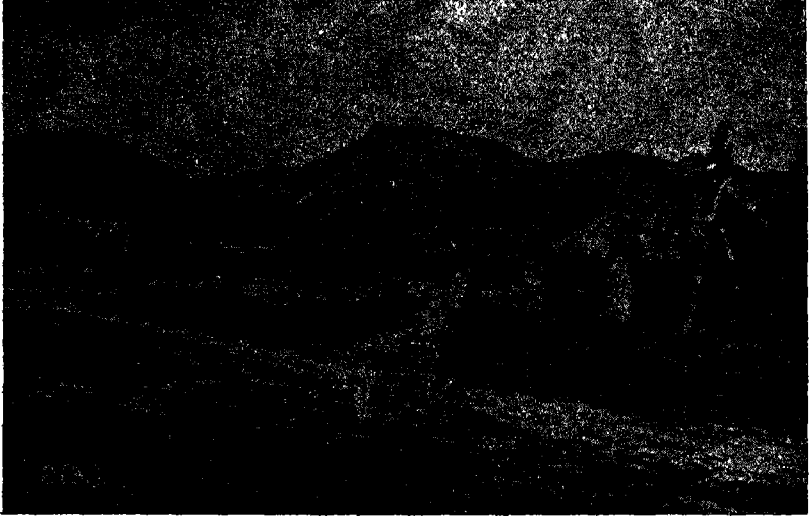
प्रस्तर वृत्त, असोटा : अ पूर्व से प्राप्त, ब. पश्चिम से प्राप्त